- विवेकानन्द
द्विवेदीयुगीन हिन्दी साहित्य

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0 फिल्0 उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध
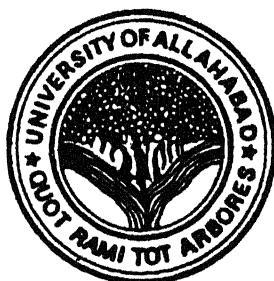
निर्देशिका :
डॉ० (श्रीमती) शैल पाण्डेय
रीडर, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोधकर्त्ता :
गिरिजा प्रसाद मिश्र
शोध छात्र, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
2002

भूमिका

संसारके कोटि-कोटि मनुष्यों के मध्य, समय-सयम पर कुछ ऐसे दैवी सम्पदा से युक्त सत्पुरुषों का आविर्भाव होता है, जिनकी आभा से सम्पूर्ण मानव समाज देदीप्यमान हो उठता है । उनके नाम से ही उस देशकाल परिस्थिति को जाना और पहचाना जाता है। जिस प्रकार रामायण-काल को राम के नाम से एवं महाभारत काल को कृष्ण के नाम से जाना जाता है, उसीप्रकार यदि हम वर्ममान काल-खण्ड को परमहंस रामकृष्ण देव एवं उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द के नाम से अभिहित करें तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। स्वामी विवेकानन्द को विश्व-कल्याण की औदार्यपूर्ण भावना के कारण ही 'युग-नायक', युग - द्रष्टा; 'विश्वबन्धु','विश्व-वरेष्य' आदि उपाधियों से अलंकृत किया गया है । मानव-मात्र के प्रति कल्याण की भावना के कारण ही रामकृष्ष देव एवं स्वामी विवेकानन्द अपने महाप्रयाण के शताधिक वर्षो के बाद भी आज अनेक लोगों की प्रेरण के स्रोत बने हुये हैं ।

मेरा यह परम सौभाग्य रहा है कि मेरा जन्म इन महापुरुषों से प्रभावित एक परिवार में हुआ। मेरे पिताजी मास्टर महेन्द्र कृत रामकृष्ण वचनामृत के तीनों भागों का आद्योपान्त अध्ययन करने के पश्चात उसके मूल - तत्व को सूत्र रूप में अपनी निजी डायरी में लिपिबद्ध किये हैं । रामकृष्ण के धर्म तथा आध्यात्म के गूढ़ तत्वों को छोटी-छोटी कहानियों एवं दृष्टान्तों के द्वारा सरलतम् रूप में व्यक्त करने की क्षमता ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया और समय - समय पर वे उनके उद्धरणों एवं दृष्टातों की चर्चा- परिचर्चा किया करते हैं । रामकृष्ण देव एवं माँ शारदा के त्याग एवं तपोमय जीवन की कहानियाँ पिता जी के द्वारा मैं बचपन से ही सुनता चला आ रहा हूँ, जिससे इन महापुरुषों के व्यक्तित्व का प्रभाव स्वाभाविक रूप से मेरे ऊपर पड़ा ।

प्रयाग क्षेत्र में संगम तट पर, माघ माह में प्रतिवर्ष धार्मिक मेले में, लगने वाला रामकृष्ण मिशन का शिविर मेरे आकर्षण का केन्द्र रहा है । यहाँ आकर रामकृष्ण देव एवं स्वामी विवेकानन्द के चित्रपरक जीवनी देखने, इनके सम्बन्ध में मिशन के संन्यासियों के विचार सुनने एवं इनसे सम्बन्धित सत्साहित्य पढ़ने से मेरा ज्ञान इस सम्बन्ध में और भी बढ़ा । कालान्तर में और भी

बहुत कुछ जानने की इच्छा से मैं इलाहाबाद स्थित 'रामकृष्ण मिशन' में आने - जाने लगा।

रामकृष्ण देव की निष्कपटता, सरलता एवं भावप्रवणता ने मुझे अत्यन्त प्रभावित किया। रामकृष देव के जीवन एवं उनकी भावधारा से अवगत होने के पश्चात, मैने पाया कि गीता में उल्लिखित ज्ञान, भक्ति एवं कर्म की तीनों धारायें, इनमें एकाकार होकर जीवन्त हो उठी हैं। जिस प्रकार गीता में किसी मत, पंथ और सम्प्रदाय की स्थापना का आग्रह अथवा विरोध नहीं किया गया है, उसी प्रकार रामकृष देव ने भी कभी किसी मत पंथ या सम्प्रदाय की स्थापना अथवा विरोध नहीं किया। यही कारण है कि इन्हें हम ज्ञान,भक्ति एवं निष्काम कर्म के जिस भाव से देखते हैं, हम उन्हें उसी रूप में पाते हैं।

स्वामी विवेकानन्द बचपन से ही ध्यानसिद्ध, तीक्ष्ण मेधा - शक्ति से युक्त, तथा दीन - दु:खी के प्रति दया का भाव रखते थे। इनके अन्दर प्रबल तार्किक क्षमता होते के कारण ये किसी भी बात को तर्क की कसौटी पर कसे बिना मानने को तैयार नहीं होते थे। ईश्वर एवं उसके गूढ रहस्यों को प्रति इनके हृदय में तीव्र जिज्ञासा थी। इसी क्रम में विवेकानन्द का मिलन रामकृष देव से होता है। यहाँ आकर उद्धता, तार्किकता ने, सरलता के समक्ष आत्म - समर्पण कर दिया और उन्होंने इन्हें साधना की आग में तपाकर ऐसा कुन्दन बना दिया, जिसकी चमक से सम्पूर्ण विश्व आलोकित हो उठा। विवेकानन्द को हम धार्मिक दृष्टि से देखें तो इनसे बडा कोई धर्मपरायण और धर्मवेत्ता नही है, राष्ट्रीय दृष्टि से देखा जाय तो इनसे बड़ा कोई देशभक्त नहीं है। सामाजिक दृष्टि से देखें तो इनसे बडा कोई समाज सेवक नहीं दीखता और आर्थिक उत्थान एवं उसकी उन्नति के लिये किये गये प्रयासों को देखने पर इनसे बड़ा कोई अर्थशास्त्री भी नही दीखता। गुरू ओर शिष्य की इन भावनाओं का समाज पर स्वाभाविक रूप से व्यापक प्रभाव पड़ा।

साहित्य और समाज का अन्योंन्याश्रित सम्बन्ध है। सामाजिक परिवर्तन साहित्य को, एवं साहित्यिक गतिविधियाँ समाज को पभावित करती हैं। रामकृष्ण देव एवं स्वामी विवेकानन्द की भावधारा से युगीन एवं परवर्ती साहित्य नि:सन्देह व्यापक रूप में प्रभावित हुआ है, किन्तु दु:ख और आश्चर्य का विषय है कि हिन्दी साहित्य में पड़ने वाले इनके प्रभाव का अभी तक

जानने- समझने के लिए बहुत कार्य होना शेष है साहित्य पर पड़ने वाले, इनके प्रभाव का उचित मूल्यांकन न होने के कारण मेरी इच्छा इस सम्बन्ध में कार्य करने के लिये जागृति हुई, परन्तु इतने बड़े महापुरुष के सम्बन्ध में अपनी अल्पज्ञता के कारण लेखनी चलाने का साहस नहीं कर पा रहा था । इस विषय पर कुछ करने की इच्छा से, दिशा - निर्देश प्राप्त करने के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की रीडर डा० (श्रीमती) शैल पाण्डेय से जब मैं मिला तो उन्होंने मुझे इस विषय पर कार्य करने के लिए उत्साहित एवं प्रेरित किया और उन्हीं के परामर्श से शोध-कार्य का विषय- 'द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य' पर केन्द्रित करते हुए उसका नाम'- रामकृष्ण- विवेकानन्द भावधारा का द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य पर प्रभाव' रखते हुए कार्य प्रारम्भ किया ।

रामकृष्ण - विवेकानन्द भावधारा के द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य पर प्रभाव को व्यक्त करने के लिए विषय को पाँच अध्यायों में बाँटा गया है - पथम अध्याय- 'रामकृष्ण- विवेकानन्द जीवन वैशिष्ट्य' को दो उपभागों में विभाजित किया गया है । क- 'रामकृष्ण देव' में रामकृष्ण देव के जीवन के अलौकिक पक्षों को छोडकर, उनका लौकिक दृष्टि से विवेचन किया गया है। इस भाग में उनके बाल्यकाल के मानवीय गुणों से सम्बन्धित पक्षों तथा प्रेम करुणा, दया, सरलता, भावविह्वलता, निश्च्छलता आदि के साथ-साथ ईश्वर - प्राप्ति की उनकी उत्कट अभिलाषा का दिग्दर्शन करते हुये कालान्तर मे उनके द्वारा किये गये विविध धर्मों की साधना आदि का वर्णन किया गया है । भाग ख- 'स्वामी विवेकानन्द' में विवेकानन्द के जीवन के आरम्भिक काल से ही उनमें विद्यमान - साहस, निर्भीकता, दयालुता एवं विद्वता का वर्णन करते हुए, धर्म को तत्व से जानने की उत्कट इच्छा के क्रम में रामकृष्ण देव से उनका मिलन तथा कालान्तर में शिकागो के धर्म महा सम्मेलन में भारतीय धर्म एवं संस्कृति के पक्ष में उनके द्वारा दिया गया ओजस्वी वक्तव्य जिससे पूरी मानव - जाति चमत्कृत हो उठी, आदि घटनाओं का उल्लेख किया गया है ।

द्वितीय अध्याय - 'रामकृष्ण - विवेकानन्द भावधारा' मे रामकृष्ण देव एवं स्वामी विवेकानन्द के भावों तथा विचारों का वर्णन किया गया है । यहाँ पर रामकृष देव एवं विवेकानन्द के विचारों को अलग करके नहीं देखा गया है और यह सम्भव भी नही है, क्यों कि

रामकृष्ण देव के विचारों को ही विवेकानन्द ने अपना स्वर दिया है, वे कहते भी थे-'' मैं जो कुछ बोल रहा हूँ , उसके पीछे मेरे गुरू खड़े हैं ।'' इस तरह कहा जा सकता है कि रामकृष्ण देव यदि मूल हैं तो विवेकानन्द उनके भाष्य । उनके विचारों को मुख्यतः चार भागों में बाँटकर समझा गया है - क- धार्मिक भावधारा - इसमें रामकृष्ण देव का धर्म व दर्शन, स्वामी विवेकानन्द का नव वेदान्त आदि का वर्णन किया गया है। ख- राष्ट्रीय भावधारा- इसमें स्वामी विवेकानन्द की राष्ट्रभक्ति , देश प्रेम , देश की सभ्यता - संस्कृति और उसके अतीत के प्रति गौरव का भाव, स्वाधीनता प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा आदि राष्ट्रीय चेतना से युक्त भावों का वर्णन किया गया है । ग- सामाजिक भावधारा में - रामकृष्ण एवं विवेकानन्द के समाजिक चिन्तन को दर्शाते हुये उनके मानवतावाद दीन - दुःखी के प्रति प्रेम, मानव एवं मानव के प्रति किसी भी प्रकार के भेद-भाव का विरोध, नारी उत्थान की भवना तथा उनके प्रति आदर्शभाव रखना, शिक्षा का महत्व तथा उसकी उन्नति की भवना, किसान एवं मजदूरों के प्रति प्रेम, अन्धविश्वास एसं कुरीतियों का विरोध आदि समाजोत्थान विषयक भावनाओं का वर्णन किया गया है घ- आर्थिक भावधारा में - स्वामी विवेकानन्द के देश की आर्थिक उन्नति के प्रति चिन्तन एवं उनके विचारों को दर्शाया गया है ।

तृतीय अध्याय 'द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य' में द्विवेदी युग की परिस्थितयाँ एवं साहित्य की प्रवृत्तियों का वर्णन करते हुए युगीन साहित्यकार एवं उनकी कृतियों का परिचय कराया गया है ।

चतुर्थ अध्याय 'रामकृष्ण - विवेकानन्द भावधारा का द्विवेदी युगीन काव्य पर प्रभाव' मे इस युग की कविताओं पर रामकृष्ण एवं विवेकानन्द की भावधारा के प्रभाव को चार भागों में बाँटकर दर्शाया गया है अ- धार्मिक प्रभाव, ब - राष्ट्रीय प्रभाव, स - सामाजिक प्रभाव द- आर्थिक प्रभाव ।

पंचम अध्याय 'रामकृष्ण - विवेकानन्द भावधारा का द्विवेदी युगीन गद्य पर प्रभाव' को चार भागों में विभाजित करके अवलोकन किया गया है, क- भावधारा का निबन्ध पर प्रभाव - इसमें रामकृष्ण देव एवं विवेकानन्द के धार्मिक, राष्ट्रीय, सामाजिक एवं आर्थिक प्रभावों का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष, दोनों रूपों में विश्लेषण किया गया है । ख- भावधारा का उपन्यास पर प्रभाव

ग- भावधारा का कहानी पर प्रभाव घ- भावधारा का नाटक परप्रभाव को धार्मिक, राष्ट्रीय, सामाजिक एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य में इनके अवदेययों का मूल्यांकन किया गया है।

इस शोध कार्य को करने में 'रामकृष्णमिशन पुस्तकालय' एवं 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय इलाहाबाद' का अप्रतिम सहयोग मिला। इनके कर्मचारियों का मैं हृदय से आभारी हूँ। जिन लेखकों कवियों की रचनाओं और उनकी पत्र - पत्रिकाओं से मैने तथ्यों का संकलन किया है, उनके प्रति भी अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

शोध निर्देशिका डा० (श्रीमती) शैल पाण्डेय के कुशल निर्देशन एवं पथ प्रदर्शन के अभाव में यह शोध कार्य पूरा न हो पाता। इस सम्बन्ध में मुझे जब भी दिशा - निर्देश की आवश्यकता पड़ी, उन्होंने अत्यधिक व्यस्त होने के बाद भी अपना अमूल्य समय एवं सुझाव देकर उचित समाधान प्रदान किया। इस कार्य के लिए उन्होंने अपनी व्यक्तिगत पुस्तकों को प्रदान करके भी मेरा सहयोग किया। अपने तुच्छ आभार को व्यक्त करके मैं इनके इस महती योगदान से उऋण नही होना चाहता।

इस कार्य को पूर्ण करने में पिता जी (श्री दया शंकर मिश्र) के द्वारा भी बहुमूल्य सुझाव एवं सहयोग, समय-समय पर प्राप्त हुआ, उनके इस योगदान को कम करके नहीं देखा जा सकता।

दिनांक : ३०.१०.२००२

गिरिजाप्रसाद मिश्र

गिरिजा प्रसाद मिश्र

विषयक्रम

रामकृष्ण– विवेकानन्द
का द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य पर प्रभाव

प्रथम अध्याय

राम कृष्ण देव – स्वामी विवेकानन्द : जीवन वैशिष्ट्य

(क) रामकृष्ण देव

(ख) स्वामी विवेकानन्द

(क) देव

आज समस्त मानव जाति जड़वाद और भोगवाद की संस्कृति में लिप्त होकर जीवन के मूल उद्देश्यों से भटक कर दुःख और संत्रास को प्राप्त हो रही है । धर्म जनकल्याण और समन्वय का वाहक न होकर द्वेष व द्वन्द्व का कारण बन गया है । विभिन्न मत के धार्मिक लोग, संकीर्णता की अंधी सुरंग में भटक कर अपनी - अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने के मिथ्या दम्भ में एक दूसरे से जूझ रहे हैं । 'परोपकार' एवं 'मानववाद' की उपेक्षा कर ऐहिक सुखोपयोग हेतु जीवन जीने की शैली से सर्वत्र क्षोभ और अशान्ति व्याप्त हो गया है। ऐसे विघटन और बिखराव के युग में हमारा ध्यान बरबस ही सहज, सरल त्यागी एवं मानववाद की भावना से ओत प्रोत महापुरूष रामकृष्ण देव के जीवन विधान की ओर आकर्षित हो जाता है ।

रामकृष्ण देव का जन्म बंगाल के हुगली जिले के 'कामारपुकुर' नामक ग्राम के एक ब्राम्हण परिवार में १७ फरवरी १८३६ ई० फाल्गुन शुक्ल द्वितीया दिन बुधवार को हुआ था। इनके पिता क्षुदिराम ईश्वर परायण तेजस्वी एवं सत्यवादी व्यक्ति थे । वे अपने सिद्वान्तो और आदर्शों के प्रति अटल रहते थे । माँ चन्द्रमणि देवी सरलता दया और ममता की साकार मूर्ति थी। जमींदार के पक्ष में पिता द्वारा झूठी गवाही देने से इंकार कर देने के कारण इस परिवार को अपना पैतृक गाँव व जमीन छोड़ कर सदैव के लिए निर्वासित होना पड़ा । पिता और पूर्वजों के रक्त में विद्यमान यह सत्यनिष्ठा और दृढ़ता रामकृष्ण को भी बाल्यकाल से ही प्राप्त थी । पिता मानते थे कि यह पुत्र उन्हें भगवान विष्णु के आर्शीवाद से प्राप्त हुआ है इस लिए बालक का नाम गदाधर रखा गया ।

गदाधर जब पाँचवे वर्ष में प्रविष्ट हुये तो पिता ने विद्यारम्भ संस्कार कराकर उन्हे गाँव की पाठशाला में पढ़ने को भेजा । पाठशाला में गदाधर की अच्छी प्रगति होने लगी । थोड़े ही दिनो में बालक ने पढ़ना लिखना सीख लिया । नित्य नयी रचनात्मकता, अनुकरणशीलता, देवी देवताओं की मूर्ति गढ़ने व चित्र बनाने में गदाधर ने विशेष प्रतिभा का परिचय दिया । वे श्रुतिधर व स्मृतिधर भी थे । एक बार वे जो देख या सुन लेते किसी भी प्रकार नही भूलते थे । गाँव में

नाटक व गान आदि तो सदा होते ही रहते थे। गदाधर ने इनसे सुन - सुन कर बहुत से गीत , भजन, पौराणिक आख्यान व नाटकों के संवाद याद कर लिये थे । क्षुदिराम ने लक्ष्य किया कि बालक पूर्णरूप से निष्कपट और निर्भीक है । वह अपनी गलतियों को कभी नही छिपाता। कितना भी डर क्यों न हो वह झूठ कभी नही बोलता था। बालक के इन सद्‌गुणो से पिता को यह आभास हो गया कि भविष्य में यह कुल का नाम उज्जवल करेगा ।

यह कहना कठिन है कि श्री रामकृष्ण के जीवन में दिव्य भाब का विकास सर्वप्रथम कब हुआ था, पर उसका स्वरूप शैशव काल में ही प्रकट होने लगा था । उस समय उनकी आयु केवल छह साल की थी । जिस आयु में संसार के सभी बच्चें खेल कूद में मस्त रहते हैं उसी आयु में उन्हें बिना किसी साधन के ही प्रथम भावावेश हुआ । परर्वती काल में दक्षिणेश्वर में उन्होंने इस घटना का जो वर्णन किया वह उन्हीं की भाषा में वर्णित है - ''ज्येष्ठ या असाढ़ का महीना था तब मेरी आयु छह या सात वर्ष की रही होगी एक दिन सवेरे मैं छोटी से डलिया में मुरमुरा लेकर चबाता हुआ मैदान के बीच की पगडंडी पर चला जा रहा था । आकाश में सुन्दर सजल बादल मंडरा रहे थे । मै उसी पर दृष्टि जमाये मुरमुरा खा रहा था । देखते ही देखते काली घटा ने सारे आकाश को ढक लिया । ठीक उसी समय दूध के समान सफेद बगुलों की पंक्ति उन काले बादलों के बीच से उड़ती हुयी निकली । कैसी अनूठी शोभा ! उसे देखते देखते मैं एक अननुभूत भाव में तन्मय हो गया । मेरी ऐसी अवस्था हो गयी कि बाहर का कुछ भी होश नही रहा । मै गिर पड़ा । सारा मुरमुरा जमीन पर विखर गया । मै नही जानता कि उस हालत में कितनी देर पड़ा रहा । लोगों ने देखा तो उठा कर मुझे घर ले आये यही पहला अवसर था जब मैं भाव में होश खो बैठा था ।''[१] इस घटना से गदाधर के माता पिता बहुत चिन्तित हो गये । यद्यपि गदाधर ने बार बार कहा कि वह बेहोश नही हुआ था और उसे कोई बिमारी नही हुयी थी । मन प्राण के एक अपूर्व आनन्दपूर्ण भाव मे विलीन हो जाने के कारण ही उसे उस आनन्दमय अवस्था की प्राप्ति हुयी थी । फिर भी वे गदाधर के लिए शान्ति स्वस्त्ययन,झाड़ फूक और चिकित्सा की व्यवस्था करके ही सन्तुष्ट हुए ।

सात वर्ष की आयु में ही पिता के अकस्मात निधन के फलस्वरूप बालक को बहुत धक्का लगा । उसका पाठशाला जाना बन्द हो गया और उसके विवेकशील मन में संसार का सच्चा

१. श्री रामकृष्णः संक्षिप्त जीवनी तथा उपीदेश - स्वामी अपूर्वानन्द पृ० ६

व यथार्थ स्वरूप भाषित हो उठा। जिस प्रकार बुढ़ापा रोग और मृत्यु देखकर गौतम बुद्ध ने जीवन की अनित्यता की उपलब्धि कर संन्यास ग्रहण किया था, ठीक उसी प्रकार पितृवियोग की इस एक घटना ने गदाधर के हृदय में संसार के प्रति तीब्र वितृष्णा पैदा कर दी। बालक के जीवन में जो गीत नृत्य अभिनय विनोद और रंगरसप्रियता थी उसका स्थान गंभीर भाव तन्मयता ने ले लिया। अब उसका अधिकांश समय 'भूतिर खाल' नामक श्मशान में या मणिक राजा की अमराई में चिन्तन करते हुये व्यतीत होने लगा। अन्य समय वह माँ के काम काज में हाथ बटाता। इन्हीं दिनो से गदाधर का आकर्षण साधु संन्यासियों की ओर बढ़ने लगा। संन्यासी भी इस सुन्दर बालक को भजन सिखाते शास्त्र आदि पढ़ाते और हृदय से आर्शिवाद देते।

गदाधर अपनी माँ से अतिशय प्रेम रखते थे। वे छाया की भाँति सदैव माँ के साथ रहते एवं उनके हर एक कार्य में हाथ बटाते। इस तरह कुल देवता रघुवीर और शोकातुर जननी की सेवा में उनका समय व्यतीत होने लगा। गदाधर की आयु नौ वर्ष की होने पर माँचन्द्रमणि देवी ने बड़े पुत्र रामकुमार से उनके उपनयन की तैयारी करने को कहा। निःसन्तान बाल - विधवा धनी लुहारिन को गदाधर माँ कहकर पुकरते थे। एक दिन धनी ने आँखों में आँसू भर कर गदाधर से अनुरोध किया कि वह उसे यज्ञोपवीत के समय भिक्षा माता बनाये। गदाधर ने धनी की अभिलाषा पूरी करने का वचन दे दिया।

उपनयन के अवसर पर गदाधर ने अपने बड़े भाई से अपने दिये हुए बचन की बात कही तो सुनते ही राम कुमार दृढ़ स्वरमें बोले ''ऐसा कैसे हो सकता है ? धनी का जन्म नीच कुल मे हुआ है। हमारे वंश में न तो कभी ऐसा हुआ है और न कभी ऐसा होगा।'' पर गदाधर अपनी सत्य रक्षा के लिए अड़े रहे और जिद करते हुए बोले ''सत्य भ्रष्ट, मिथ्यावादी व्यक्ति को ब्राह्मणोचित यज्ञोपवीत धारण करने का कदापि अधिकार नही है।''[१] रामकुमार व्याकरण काव्य और स्मृति शास्त्र के पंडित थे। वे नौ वर्ष की आयु वाले इस अपरिपक्व बुद्धि बालक के मुख से ऐसी बाते सुन कर चकित हो गये। अन्त में उनके पिता के मित्र 'धर्मदास लाहा' ने मध्यस्थता की और गदाधर की बात मान ली गयी। सत्य की विजय हुई। परवर्ती काल में रामकृष्ण देंव ने इस घटना के परिप्रेक्ष्य में कहा भी था कि ''सत्य वचन कलिकाल की तपस्या है।'' आजीवन मन वाणी

१-श्री रामकृष्ण : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश - स्वामी अपूर्वानन्द, पृ० ८

और कर्म से सत्य पालन, श्रीरामकृष्ण देव के जीवन का एक महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य है।

गाँव के कथा वाचक पंडित जब पुराणादि का पाठ करते उस समय गदाधर एकाग्रचित्त हो सुनते रहते। उन्होंने रामायण महाभारत और भागवत् आदि की बहुत सी कथाएँ कंठस्थ कर ली थीं। अपने संतुलित कंठ से धर्म ग्रन्थों का पाठ व व्याख्या करके वे सभी को मुग्ध कर देते थे। वे बिना किसी भेद भाव के सभी के घर जाकर भजन कीर्तन किया करते थे। इससे कामारपुकुर एवं आस पास के गाँव नित्य उत्सवमय हो गये। गाँव के सभी लोग उनके प्रति देवता के समान श्रद्धा एवं भक्ति रखते थे। कोई - कोई तो उन्हें अवतार मान कर उनकी पूजा भी करते थे। गदाधर अब न तो पाठशाला जाते और न पढ़ाई - लिखाई करते। दिन प्रति दिन उनकी ईश्वर तन्मयता बढ़ती जा रही थी। उनका बहुत सा समय ध्यान और भजन में ही बीतता था।

रामकुमार ने कलकत्ते के झामापुकुर मुहल्ले में एक संस्कृत पाठशाला खोल रखी थी। पूजा पाठ करने में वहाँ उनकी अच्छी ख्याति फैल गयी थी। बीच में घर आने पर यह देख कर की गदाधर पाठशाला जाना बन्द कर दिया है उन्हें अपने इस पितृहीन छोटे भाई के भविष्य के बारे में विशेष चिन्ता हुयी। घर में रह कर उसकी पढ़ाई लिखाई नही होगी यह सोच कर अपनी माता से परामर्श लेकर गदाधर को अपनी पाठशाला में पढ़ने के लिए कलकत्ता ले आये। वहाँ वे जिन घरों में पूजा किया करते थे उनमें गदाधर को लगा दिया। थोड़े ही दिनों में इस सुन्दर किशोर के भाव-पूर्ण गायन भक्तिपूर्ण पूजन और मधुर व्यवहार ने यजमान परिवारों में उन्हें बहुत लोक-प्रिय बना दिया। पढ़ने लिखने में वे अब भी उदासीन ही रहे। महीनों तक उनकी गति-विधि का निरीक्षण करने के बाद एक दिन रामकुमार ने थोड़ा कड़ा रुख अपनाया और कुछ रूखे स्वर में उनसे कहा - "क्या बात है ? देखता हूँ कि पढ़ना लिखना तो तुमने बिल्कुल ही छोड़ दिया है, तुम्हारा काम कैसे चलेगा ?" थोड़ी देर चुप रहने के बाद गदाधर ने सहज भाव से कहा - "यह दाल चावल इकट्ठा करने वाली विद्या सीखने की मेरी कोई इच्छा नही है। मैं तो ऐसी विद्या सीखना चाहता हूँ जिससे सच्चा ज्ञान मिले।"[१] उत्तर सुन कर रामकुमार अवाक रह गये और सोचने लगे कि यह कैसी बात कर रहा है, पढ़ाई को कहता है दाल चावल समेटने की विद्या ! बाद में सुविधा अनुसार उसे समझा

---

१. श्री रामकृष्ण : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश, पृ० ११

लेंगे यह सोच कर रामकुमार उस समय चुप लगा रह गये । उन्हें अपने भाई की भाव प्रवणता एवं ईश्वर-तन्मयता का बोध नही था ।

इसी समय कलकत्ते की जान बाजार निवासिनी रानी रासमणि ने दक्षिणेश्वर में गंगातट पर ६० बीघा जमीन खरीद कर लाखों रुपये व्यय करके विशाल काली मंदिर, सभा मण्डप, बारह शिव मंदिर, राधाकान्त जी का मन्दिर, चाँदनी, सामने पक्का घाट, भंडार, अतिथिशाला, भोगघर तथा नौबत-खाना आदि का निर्माण करवाया था । ३१ मई १८५५ ई० को विराट समारोह के साथ इस नवनिर्मित रत्न-भूषित मन्दिर में भवतारिणी काली माता की प्रतिष्ठा हुई। काली मन्दिर में प्रधान पुजारी के रूप मे शास्त्र एवं कर्मकाण्ड में निष्णात रामकृष्ण के अग्रज पंडित रामकुमार नियुक्त किये गये । रामकृष्ण भी झामापुकुर से कभी - कभी इस मंदिर में आया जाया करते थे । कालान्तर में वे इसी मंदिर के पूजा कार्य में नियुक्त कर दिये गये । उस समय उनकी आयु इक्कीस या बाईस वर्ष की थी ।

कुछ दिनों तक काली मंन्दिर में पूजा करने के उपरान्त रामकृष्ण के भावुक मन में यह प्रश्न उठने लगा - "मैं जो पूजा कर रहा हूँ वह किसकी कर रहा हूँ ? मृण्मयी माँ की या चिन्मयी माँ की ? माँ यदि चिन्मयी है तो मेरे इतने रोने पीटने के बाद भी दर्शन क्यों नहीं देती ?" जगन्माता के दर्शनार्थ रामकृष्ण की व्याकुलता दिन पर दिन बढ़ती गयी । मंन्दिर में माँ की पूजा करने तथा उन्हें पुष्प चन्दनादि से जी भर कर सजाने आदि में ही उनका अधिकांश समय व्यतीत होने लगा । देवी के श्री अंग का स्पर्श करने पर उन्हें कोमलता की अनुभूति होती तो वे सोचते कि माँ पाषाणमई नही चिन्मई है ।

दिनों दिन रामकृष्ण की तन्मयता बढ़ती ही जा रही थी । उनका असामान्य व्यवहार दिव्यभावावेश तथा दृढ़ अनुराग मन्दिर के अन्य पुजारी एवं कर्मचारियों के समझ के परे था । वे आपस में कानाफूसी करते, रामकृष्ण का सिर फिर गया है । कोई कहता उन्हें भूत ने पकड़ रखा है । इन सब विचारों से परे उनका मन और प्राण दिन प्रतिदिन जगन्माता के भाव समुद्र में डूबता ही जा रहा था । पूजा समाप्त हो जाने के बाद भी वे जगन्माता के पास बैठ कर मार्मिक प्रार्थना व मधुर भजनों के द्वारा अपने हृदय की तीव्र व्याकुलता व्यक्त करते थे । भाव में इतने विह्वल हो जाते कि

अपनी सुध - बुध ही भुला बैठते थे। न भोजन की इच्छा होती, न निद्रा में रूचि । धीरे धीरे व्याकुलता और भाव तन्मयता इतनी बढ़ गयी कि उनके लिए वैधी पूजा करना असम्भव सा हो गया । दिव्य उन्माद में व्याकुल होकर वे रो - रोकर कहते थे- ''माँ एक दिन और बीत गया पर अभी तक तेरे दर्शन नही हुए । एक - एक दिन कर सारी आयु बीतती जा रही है पर अभी तक तेरी दया नही हुई । अभी तक तूने मुझे अपनाया नही ।''[१] काली की मूर्ति के सामने छाती पीट-पीट कर ऐसा रुदन करते की पत्थर भी पसीज कर पानी पानी हो जाए ।

प्रारम्भ के वर्षों में विविध भावों से जगन्माता में प्रतिष्ठित होने के उपरान्त ही रामकृष्ण के जीवन की गति अवरुद्ध नही हुई । वह तीव्र वेगवती नदी के समान अनन्त भाव समुद्र की ओर बहती चली जा रही थी ।

कामारपुकुर में माँ चन्द्रमणि देवी तथा अन्य संबधियों के पास यह खबर पहुँची कि गदाधर को उन्माद हो गया है और वह मन्दिर में पूजा आदि करने में असमर्थ है तो माँ के प्राण अधीर हो गये । उन्होंने पत्र आदि लिख कर अपने पुत्र को घर बुलवाया । विभिन्न प्रकार के तंत्र मंत्र औषधि आदि की व्यवस्था की गयी, पर फल कुछ न हुआ । रामकृष्ण सदा माँ, माँ कहते हुये और 'भूतिर खाल' तथा 'बुधुई मोड़ल' नामक श्मशानों में जाकर अकेले तरह - तरह की साधनाएँ करने में अपना अधिकांश समय व्यतीत करते थे । अपने पुत्र को बाहर से कुछ शान्त देख कर चन्द्रमणि देवी अन्य सगे सम्बन्धियों से विचार-विमर्श करके गुप्त रूप से उनके विवाह आयोजन का प्रयास करने लगीं । भय था कि जान जाने पर वे उसमें बाधा उत्पन्न करेंगे । उन दिनों लड़की जितनी कुशल और सुन्दर होती विवाह के लिए पैसे भी उतने अधिक देने पड़ते । धनाभाव के कारण माँ अधिक पैसा देने में असमर्थ थी जिससे विवाह में अड़चन पड़ रही थी । कुछ दिनों की खोज के उपरान्त संयोग से जयरामवाटी के रामचन्द्र मुखोपाध्याय की कन्या को विवाह हेतु पसन्द कर लिया गया । सब तो ठीक था किन्तु कन्या की उम्र बहुत कम थी फिर भी होनहार जान कर माँ ने कन्या (माँ शारदा) के साथ पुत्र का विवाह सम्पन्न कर दिया ।

विवाह के उपरान्त कुछ दिनो तक कामारपुकुर में रहने के उपरान्त रामकृष्ण अपने साधना

---

१. श्री रामकृष्ण : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश, पृ० १३

पीठ दक्षिणेश्वर लौट आये । यहाँपहुँच कर उन्होंने पूजा के दायित्व को पुनः सम्भाल लिया । नाना प्रकार की साधनाएँ भी साथ ही साथ चलती रही । थोड़े ही दिनों में उनका वही पुराना उन्माद तीव्र रूप में उमड़ पड़ा । फिर वही गात्रदाह फिर वही अस्थिरता,छाती सदा लाल रहती,अपलक दृष्टि से निरन्तर माँ - माँ का करुण क्रन्दन करते हुए रोते रहते थे ।

काली मन्दिर की प्रतिष्ठात्री रानी रासमणि उनके दामाद मथुर बाबू और मन्दिर के कर्मचारियों की रामकृष्ण की यह दशा देख कर विस्मय की सीमा न रही । विवाह के बाद तो मन शान्त हो जाने की बात थी पर यहाँ तो उल्टा ही हो गया । रामकृष्ण के प्रति मथुर बाबू के अतिशय श्रद्धा व भक्ति रखने के कारण कलकत्ते के सर्वोत्तम वैद्य गंगाप्रसाद सेन की चिकित्सा का प्रबन्ध किया गया । नाना प्रकार की चिकित्सा चली परन्तु कोई लाभ नही हुआ । रोग के लक्षणों को समझने के बाद वैद्य ने देखा कि यह तो दिव्योन्माद की अवस्था प्रतीत होती है । यह योगज़ विकार है जो योग साधना के फलस्वरूप उत्पन्न होता है । यह चिकित्सा से ठीक नही होगा और हुआ भी वैसा ही । वीमारी दूर होने की बात तो दूर रही उसमे क्रमशः वृद्धि ही होती गयी ।

वेदों की वाणी है 'मातृ देवो भव' 'पितृ देवो भव' रामकृष्ण की मातृभक्ति असाधारण थी । वे अपनी गर्भधारिणी माँ चन्द्रमणि देवी की देवी बोध से सेवा किया करते थे । दक्षिणेश्वर मे रहते समय प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर वे सर्वप्रथम नौबत खाने में जाकर अपनी माता को प्रणाम करते, तत्पश्चात कुशल प्रश्न पूछ कर थोड़ी देर तक उनके पास बैठते, फिर मन्दिर में भवतारिणी काली का दर्शन करने जाते । मझले भाई रामेश्वर के देहावसान के बाद वे अपनी शोक सन्तप्त माँ को कामारपुकुर से दक्षिणेश्वर ले आये थे और तब से आजीवन उन्हें अपने पास ही रखा था । माँ के मन को आघात न पहुँचे इस लिए उन्होंने छिपकर संन्यास ग्रहण किया था । वृन्दावन में साधिका गंगा माता के विशेष अनुरोध पर वे वहाँ यह सोच कर अधिक दिन तक नही रह सके कि दक्षिणेश्वर में उनकी माँ को उनकी अनुपस्थिति में कष्ट होगा । माया मोह से परे विज्ञानी की अवस्था में प्रतिष्ठित होते हुए भी वे माँ के दिवंगत होने पर अधीर होकर रोये थे । वे शास्त्र विधि के अनुसार संन्यास लेकर संन्यासी हो गये थे और संन्यासी को माता - पिता की अन्त्येष्टि क्रिया में अधिकार नही होता है । अतः उन्होंने गंगा जी में खड़े होकर अश्रुनीर से माता का तर्पण करते हुए

पुत्र के कर्तव्य का पालन किया था। इस तरह हम देखते हैं कि रामकृष्ण ने आत्मनिष्ठ संन्यासी होते हुए भी सामाजिक मूल्यों की उपेक्षा नही की।

ममतामयी माँ की मृत्यु के पश्चात रामकृष्ण देव अन्य अनेक कठोर साधनाओं में निरत हो गये। 'समलोष्टाश्म कांचन'[१] मिट्टी पत्थर और स्वर्ण समान है, इस ज्ञान में प्रतिष्ठित होने के लिए उन्होंने रुपया और मिट्टी हाँथ में लेकर समत्वबुद्धि से 'रुपया मिट्टी है' 'मिट्टी रुपया है।' कहते हुए उन्हें गंगा जी में छोड़ दिया। जिसके फलस्वरूप धन के प्रति उनकी आसक्ति सदा के लिये चली गयी।

अब तक श्री रामकृष्ण देव ने किसी गुरू की सहायता नही ली थी। एकमात्र अपने मन रूपी गुरू के निर्देशानुसार ही चल कर उन्होंने सभी उपलब्धियाँ प्राप्त की थी। शास्त्र के द्वारा प्रतिपादित साधना मार्ग की सत्यता सिद्ध करना अभी शेष था। सम्भवतः इसी की पूर्ति के लिए शास्त्रों में पारंगत निष्णात साधिका योगश्वरी भैरवी ब्राह्मणी का दक्षिणेश्वर में आगमन हुआ। भैरवी ने रामकृष्ण से कहा - 'मैं तुमसे तंत्र मत की साधना कराऊँगी। धर्म के गूढ़ रहस्यों के जिज्ञासु रामकृष्ण भैरवी के निर्देशन में तंत्र साधना में रत हुए। शास्त्र विधि के अनुसार पंचवटी में विल्व वृक्ष के नीचे वे साधना में इतने तल्लीन हो गये कि उन्हे दिन और रात का भी ध्यान नही रहा। छः मास के अन्दर चौसठ तंत्रो की सभी साधनाओं का सिद्धिलाभ कर लेने से भैरवी विस्मित रह गयी। वह आनन्द से विभोर होकर बोली, ''अब तुम दिव्य भाव में प्रतिष्ठीत हो गये।''

इसके पश्चात रामकृष्ण ने वैष्णव तंत्र के अनुसार पंच भावों की साधना की। सर्व प्रथम वे जटाधारी नामक सिद्ध 'रामायत पंथी' साधु से राम मंत्र की दीक्षा लेकर वात्सल्य भाव की साधना में लग गये। साधना करते हुए श्री रामकृष्ण स्वंय को माँ कौशल्या मानते थे। वात्सल्य भाव में सिद्धि प्राप्त करने के पश्चात उनके मन में मधुर भाव की साधना करने की इच्छा बलवती हो गयी। वैष्णव शास्त्रों में मधुर भावों को पंचभावों का सार और पराकाष्ठा कहा गया है। इस भाव की साधना में उन्होंने नारी वेश धारण किया। इस अवस्था में वे स्वंय को श्रीराधा का अंश मानने लगे।हिन्दू धर्म की सभी द्वैत साधनाओं में चरम सिद्ध प्राप्त करने के उपरान्त श्री रामकृष्ण के मन में

---

१. श्रीमद्भगवद्गीता - अध्याय - ६, श्लोक - ८

'एक मेवाद्वितीयम्' ब्रह्म की उपासना ब्रह्म साधना, अद्वैत साधना करने की प्रबल इच्छा हुई। संयोग से इसी समय ब्रह्मदर्शी जटा-जूटधारी नागा संन्यासी तोतापुरी अप्रत्याशित रूप से दक्षिणेश्वर आ पहुँचे। सुदीर्घ कठोर साधना से उनका मन ब्रह्म ज्ञान में प्रतिष्ठित हो चुका था। रामकृष्ण को देख कर उन्होंने पहचान लिया कि वे वेदान्त साधना के उत्तम अधिकारी हैं। उन्हें अपने शिष्य के रूप में स्वीकार करके अद्वैत की साधना प्रारम्भ करा दी।

साधना प्रारम्भ करने के पूर्व रामकृष्ण को शास्त्र विधि के अनुसार श्राद्ध आदि कराके संन्यास ग्रहण कराया। तत्पश्चात् उन्होंने शिष्य को दंड, कौपीन, काषाय वस्त्र आदि से विभूषित कर ब्रह्मोपदेश देना प्रारम्भ किया। ब्रह्मज्ञ तोतापुरी ने शिष्य को महावाक्य का उपदेश देने के बाद नित्य शुद्ध - बुद्ध, मुक्त स्वरूप, निर्गुण ब्रह्म के ध्यान मे मग्न हो जाने का आदेश दिया। इस प्रसंग का वर्णन बाद में रामकृष्ण ने स्वयं करते हुए कहा - "संन्यास दीक्षा देने के उपरान्त नागा (तोतापुरी) ने अनेक सिद्धान्त वाक्यों का उपदेश देकर कहा कि मैं मन को पूर्ण रूप से विषय रहित कर, आत्मा के ध्यान में डूब जाऊँ, पर ध्यान में बैठ कर बारम्बार प्रयास करने के बाद भी मैं अपने मन को नाम रूप की सीमा के बाहर न ले जा सका। मन में जगदम्बा की मूर्ति आकर खड़ी हो जाती है। बारम्बार इस प्रयास में असफल होने पर मैं निर्विकल्प समाधि के बारे में निराश हो गया। आँखें खोलते हुए मैंने नागा से कहा मन को पूर्ण रूप से निर्विकल्प नही कर सका। नागा अत्यन्त उत्तेजित होकर बोले - होगा क्यों नहीं ? यह कह कर वे काँच का एक टुकड़ा उठा लाये और उसके नुकीले भाग को मेरी दोनों भौंहों के मध्य भाग में चुभाते हुए बोले - भौंहों के बीच इस बिन्दु पर अपने मन को समेट लाओ। तब दृढ़ संकल्प के साथ मैं फिर समाधि में बैठा। पहले के समान ही जगदम्बा की मूर्ति पुनः प्रकट हुयी, मैने ज्ञान खड्ग की कल्पना से उस मूर्ति के दो टुकड़े कर डाले फिर मेरे मन में कोई विकल्प नही बचा और वह तीव्र गति से ऊपर उठता हुआ गम्भीर समाधि में लीन हो गया।"[१] इस तरह सिद्ध होकर छः महीने तक निर्विकल्प समाधि का आनन्द लेने के उपरान्त जगत की कल्याण साधना के लिए पुनः देव भाव में आ गये। श्री रामकृष्ण अपने मन को जीव कल्याण की वासना के सहारे जागतिक भूमि पर उतार लाये।

इस प्रकार बारह वर्ष तक निरन्तर साधना करने के पश्चात् रामकृष्ण देव ने हिन्दू मतों की

---

१. श्री रामकृष्ण : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश, पृ० २९

सभी साधना में सिद्धि प्राप्त कर ली । इस बात को वे स्वयं कहते हैं कि मुझे सभी धर्मों को एक - एक बार स्वीकार करना पड़ा है । हिन्दू मुसलमान ईसाई वैष्णव और वेदान्त इन सभी मार्गों से होकर आने पर मैंने देखा की ईश्वर एक ही है । विभिन्न मार्गों से सब उन्हीं के पास चले आ रहे हैं ।'' इस स्वीकारोक्ति के सम्बन्ध में यह द्रष्टव्य है कि वे न केवल हिन्दू धर्म की विभिन्न साधना में निष्णात् हुए अपितु समय समय पर फकीर बन कर इस्लाम धर्म का एवं गिरजाघर मे जाकर ईसाई धर्म का भी अनुशीलन किया था । इसीलिए तो त्यागीश्वर शिव, वराभयदायिनी काली, सत्यमूर्ति श्रीराम, परम प्रेम स्वरूप श्रीकृष्ण,क्षमाधृतिविग्रह ईसा, विश्वभ्रातृत्व के ऋषि मोहम्मद तथा चाण्डाल तक को प्रेम बाँटने वाले चैतन्य महाप्रभु इन सभी की आध्यात्मिक शक्ति एकीभूत होकर महाशक्तिशाली आध्यात्मिक आलोक पुंज बन कर रामकृष्ण देव में प्रकट हुई । सम्पूर्ण विश्व में नवीन आध्यात्मिक - शक्ति का विस्तार करने वाले महाशक्तिशाली प्रकाश - यही है रामकृष्ण का सच्चा स्वरूप ।

रामकृष्ण देव उस ऊँचाई के मनुष्य थे जहाँ से सभी धर्म सत्य और सभी मत समान दिखते हैं । जहा विवाद और शास्त्रार्थ की आवाज नही पहुँचती । जहाँ धर्म अपनी सामाजिक और राजनैतिक रूढ़ियों को तोड़कर मुक्त रूप से अवस्थित रहता है । आजीवन वे बालकों के समान सरल और निश्च्छल रहे । वे सदैव उस मस्ती में डूबे रहे जिसके दो - एक छीटों से ही जन्म - जन्म की तृषा शान्त हो जाती है । आनन्द उनका धर्म,मानवता उनकी पूजा और सरलता ही उनका जीवन था ।

अनेक धर्मों की विविध साधना से उच्चभाव में अवस्थित होने के बाद भी रामकृष्ण समाज से पूर्णतः जुड़े रहे । सामान्य जन की पीड़ा और दुःख उन्हे उद्विग्न कर देती थी । दीन दुःखियो की वेदना से वे द्रवित हो जाते थे । प्रत्येक जीव उनकी दृष्टि में 'जागृत ईश्वर' है । जन - जन की सेवा ही ईश्वर की सेवा है । तभी वे अपने शिष्य विवेकानन्द को समाधि सुख की इच्छा पर लज्जित करते हुए विशाल वट वृक्ष बनने को प्रेरित करते हैं, जिसकी छाया में संसार के सभी दीन दुःखी आनन्द और शान्ति की प्राप्ति कर सकें । मानव सेवा के इसी रोपित बीज को ही कालान्तर में विवेकानन्द ने अपने प्रखर भावधारा से अभिसिन्चित कर विशाल वट वृक्ष में रूपान्तरित कर दिया ।

श्री रामकृष्ण के जीवन में जो दिव्यत्व और मानवीय संवेदनाओं का अपूर्व सम्मिश्रण पाया जाता है वह सचमुच ही अत्यन्त अलौकिक और माधुर्य-पूर्ण है । इनके जीवन में एक ओर जहाँ सर्वोच्च ब्रह्मानुभूति और ब्रह्म दृष्टि लक्षित होती है वहीं दूसरी ओर साधारण मानव के समान सुख-दुःख की अनुभूति तथा अन्य जीवों के क्लेश एवं पीड़ा में असीम सहानुभूति भी दृष्टिगोचर होता है । दोनो अवस्थाओं के बीच उनका सहज आवागमन होता रहता है । कभी तो हम देखते हैं कि वे जीव जगतसे अतीत परातल में अवस्थित हैं और दूसरे ही क्षण देखते हैं कि वे दीन द:ुखियों की वेदना से व्यथित - द्रवित हो अश्रुपात कर रहे हैं ।

एक बार मथुर बाबू श्रीरामकृष्ण को साथ लेकर अपनी जमींदारी देखने गये । राणाघाट के पास कलाईघाट पहुँचते ही वहाँ रामकृष्ण ने बहुत से ग्रामवासियों को धनाभाव से पीड़ित बुरी हालत में देखा । उनके जीर्ण - शीर्ण वस्त्र उनका काठ के समान सूखा शरीर देख कर वे रो पड़े । उन्होंने मथुर बाबू से कहा ''माँ आनन्दमयी के राज्य में इतना कष्ट, इतना दुःख, इन्हें भर पेट भोजन कराओ, एक - एक नयी धोती और सिर में लगाने के लिए तेल दो तथा इनका लगान माफ करो ।'' रामकृष्ण के सामने इन्हें झुकना पड़ा । उनकी इच्छा के अनुसार सभी को भोजन और वस्त्रादि देकर सन्तुष्ट किया एवं उनका लगान भी माफ कर दिया । गरीब प्रजा को खुशी से नाचते देख कर रामकृष्ण का मन आनन्दित हो गया ।

रामकृष्ण अधिकांश समय निर्विकल्प समाधि मे मग्न रहते थे । बचपन से ही भगवान के साथ उनका अखण्ड लीला - विलास चला आ रहा था । भगवान के अतिरिक्त वे कुछ भी नही जानते थे फिर भी वे मनुष्य को बिसार नही दिये थे । बिसारते भी भला कैसे ? मनुष्य भगवान का प्रतिरूप जो है । इसीलिए तो उन्होंने नारायण ज्ञान से, दुःखी मानव की सेवा को भगवान की सर्वश्रेष्ठ उपासना माना है । 'जीव ही शिव है ।' प्रत्येक मानव उन्हीं की प्रतिमा है । मनुष्य का रूप ही ईश्वर की सर्वोत्तम रचना है । इस प्रकार रामकृष्ण देव अपने मूल स्वरूप का विस्मरण कर चुकी मानव जाति को उसके दिव्यत्व का बोध कराकर उन्हें दुःख और पीड़ा से बाहर निकालने की सतत् चेष्टा करते रहे ।

एक समय था धर्म-भूमि भारत में गृहस्थ आश्रम त्याग के आदर्श पर प्रतिष्ठित था।

काल की गति से हम वह आदर्श छोड़ कर बहुत दूर चले आये हैं। आज अधिकांश लोग यह भूल गये हैं कि गृहस्थ का लक्ष्य भी उसी भूमानन्द में प्रतिष्ठापित होना है। गृहस्थ आश्रमियों को अमृत का लाभ हो, वे सत्य पथ पर चलें, इसके लिए रामकृष्ण ने अपने जीवन के द्वारा गृहस्थ धर्म का सर्वोच्च आदर्श प्रस्तुत किया जो सभी सीमाओं के परे केवल भारत वर्ष के लिए अनुकरणीय व अनुसरणीय है। गृहस्थों के लिए उन्होने त्याग का आदर्श दिखाकर मध्यम वर्ग का विधान करते हुए निर्देश दिया - ''दो - एक सन्तान होने के बाद दोनों ही (पति-पत्नी) ईश्वरीय प्रंसग लेकर रहते हुए भाई बहन की तरह जीवन बितायें।''

रामकृष्ण देव नें अपनी पत्नी माँ शारदा की पूजा भी की थी। यह पूजा पाश्चात्य देशों में प्रचलित सम्मान का दिखावा मात्र न था। यह आत्मा की पूजा थी। मातृत्व और देवीत्व की पूजा थी। समानता और समता के पक्षधर रामकृष्ण देह त्याग के पहले तक जीव त्राण और जीव कल्याण के ब्रत का निर्वहन करते रहे। इस ब्रत में धनी - निर्धन, पंडित - मूर्ख, ब्राम्हण - चाण्डाल, सुजन - दुर्जन, यहाँ तक की देश काल और जाति धर्म का भी कोई भेद भाव नहीं था। जो कोई उनके द्वार पर आया उसे बिना किसी सोच विचार के गोद में उठा लिये और उसका त्राण किये। रामकृष्ण देव में विकसित इसी विश्वभाव ने ही तो पूरे विश्व को सम्मोहित कर लिया है।

ईश्वर भाव ही मानव जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य है। मनुष्य ही इस ब्रह्माण्ड का सर्वोत्तम जीव है। इसका कारण यह है कि एक मात्र नरधारी जीव में ही पूर्णता प्राप्त करने की क्षमता है। यहाँ तक की देवताओं और उच्चतर लोकों के निवासीयों को भी पूर्णता प्राप्ति के लिए इस मृत्युलोक में मनुष्य योनि में जन्म लेना पड़ता है। लाखों योनियों में भ्रमण करने के पश्चात मानव देह मिलती है, अपनी चेतना सत्ता का जैसा अनुभव मनुष्य योनि में होता है, वैसा अन्य किसी योनि में संम्भव नही है, इसीलिए मानव जीवन दुर्लभ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रामकृष्ण देव ने अपने जीवनादर्श के द्वारा दो बातों को विशेष महत्व प्रदान किया, प्रथम यह कि ईश्वर लाभ ही जीवन का उद्देश्य है, दूसरा इसी जीवन में ईश्वर लाभ करना होगा, एक और नयी बात जो रामकृष्ण ने अपने जीवन के द्वारा बतलायी - वह यह कि ईश्वरोपलब्धि के लिए पहाड़-पर्वत, गुफा तीर्थ, गुरूगृह या किसी अन्य दुर्गम स्थलों में जाने की आवश्यकता नहीं है। जो जहाँ है जिस धर्म में पैदा हुआ है वहीं से अपने जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त कर सकता है।

दिन पर दिन आध्यात्मिक मार्ग दर्शन के लिए उनके पास भक्तों की भीड़ बढ़ने लगी। वे फिर भी बिना थके सभी के लिए उपदेश देते रहे तथा किसी को भी कभी निराश नहीं किया। एक दिन उनके गले में दर्द महसूस हुआ। दर्द बढ़ता ही गया और इलाज से कोई लाभ नही हुआ। डाक्टरों ने कहा - यह गले का कैंसर है। उस समय चिकित्सा की जितनी सुविधाएँ उपलब्ध थीं सब की गयीं, परन्तु कोई लाभ न हुआ। रामकृष्ण जानते थे कि उनका शरीर अब ज्यादा दिन अब नहीं चलेगा इसलिए वे उत्सुक थे कि उनके शिष्य भावी संघ के लिए तैयार हो जायें। उन्होंने प्रत्येक शिष्य को अलग - अलग ढ़ंग से उपदेश दिया। जिससे उनके जाने के बाद भी वे अपनी साधना करते रहे। नरेन्द्र को वे अपनी भावी संन्यासी संघ के नेतृत्व के लिए गढ़ कर तैयार कर रहे थे। इस लिए नरेन्द्र को अपना आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा था - "नरेन्द्र आज सब कुछ तुम्हें देकर मैं भिखारी बन गया हूँ, मैंने तुम्हे जो शक्ति दी है उसके द्वारा तुम संसार का महान कल्याण करोगे।"

अब देह त्याग के बस दो ही दिन बचे थे, श्री रामकृष्ण असाध्य रोग यंत्रणा से पीड़ित थे। उनके रोग को लेकर सभी बहुत व्यग्र थे। नरेन्द्र उनके विस्तर के पास मुँह नीचा किये बैठे थे, अचानक उनके मन में यह विचार आया कि इस भीषण शारीरिक कष्ट के बीच भी वे यदि स्वयं को अवतार कहें तभी मुझे विश्वास होगा अन्यथा नहीं। और आश्चर्य !! नरेन्द्र के मन में यह विचार उठते ही श्री रामकृष्ण उनकी ओर मुँह करके बोल उठे - "अभी तक अविश्वास! जो राम बने, जो कृष्ण बने, वे ही इस बार रामकृष्ण बने हैं। पर हाँ ! तेरे वेदान्त की दृष्टि से नहीं।" इस देव वाणी को सुन कर नरेन्द्र लज्जित हो अपराधी की तरह सिर नीचा किये बैठे रहे।

सांसारिक नियमों के अनुसार एक दिन धीरे - धीरे रामकृष्ण की महासमाधि का समय भी निकट आ पहुँचा। १६ अगस्त १८८६ ई०, दिन रविवार को रामकृष्ण देह पिंजर को छोड़कर अनन्त आकाश में विलीन हो गये परन्तु पूरे विश्व की उन्नति व विकास के लिए एक ऐसा सूत्र छोड़ गये जिसकी व्याख्या कर समूचा जनमानस आज भी उससे लाभान्वित हो रहा है। '

वसुधैव - कुटुम्बकम्' की भावना करके तदनुकूल व्यवहार करना, सांसारिक बंधनो

को तोड़कर दूसरों के हित में जीवन जीने का साहस करना, 'करतलभिक्षा - तरुतरवास करके अपने मंगल को सभी के मंगल में समाहित कर देने की भावना सभी में नहीं होती । रामकृष्ण देव ने अपने जीवन के द्वारा इन भावनाओं को साकार रूप दिया है । विराग को अपना सहचर, शक्ति को पत्नी, उपकार को व्रत और मनोनिग्रह को सत्य साधना मानने वाले ऐसे दिव्य गुणों से युक्त सत्पुरुष रामकृष्ण देव अपने विचारों के द्वारा आज भी जन - जन के मानस पटल में विद्यमान हैं ।

(ख) स्वामी विवेकानन्द

अपने ओजस्वी विचारों के द्वारा पूरे विश्व में भारतीय धर्म एवं संस्कृति की पताका फहराने वाले विश्ववरेण्य विवेकानन्द; युगद्रष्टा रामकृष्ण देव के अंतरंग लीला सहचर एवं उनके युग धर्म संस्थापन कार्य करने के प्रमुख सहायक थे । उन्होंने सनातन वैदिक धर्म पुनरुज्जीवित कर समस्त विश्व में उसका चैतन्य भर दिया । आध्यात्मिक एवं मानवीय चेतना से परिपूर्ण उनका समग्र जीवन अत्यन्त प्रेरणा दायी है । उनके तेजस्वी विचारों में किसी भी व्यक्ति में संजीवन का संचार करने की सामर्थ्य निहित है । आज हमारे राष्ट्रीय जीवन में ऐसी कोई समस्या नहीं है जिसका हल हमें उनकी शिक्षाओं में न मिल जाय । इसी सन्दर्भ में उनके जीवन-चरित् पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है ।

विवेकानन्द का जन्म १२ जनवरी १८६३ ई० में पौष कृष्ण सप्तमी तिथि के दिन कलकत्ते के शिमला मुहल्ले में विश्वनाथ दत्त और भुवनेश्वरी देवी के प्रथम पुत्र के रूप में हुआ । पिता विश्वनाथ दत्त कलकत्ता हाईकोर्ट के प्रसिद्ध एटार्नी थे । वे अंग्रेजी तथा फारसी भाषा के विद्वान थे । उदार हृदय के कारण वे अपने सगे सम्बन्धियों के प्रतिपालक थे । माता भुवनेश्वरी देवी का भी चरित अनुपम था । वे रमणी कुल की दया व दान स्वरूपा थी । माता की भक्ति व सरलता एवं पिता की उदारता व दानशीलता का पुत्र पर गहरा प्रभाव पड़ा । बालक का नाम नरेन्द्र रखा गया ।

शैशव से ही नरेन्द्र में असामान्य प्रतिभा एवं अदम्य शक्ति के चिह्न दृष्टिगोचर

होने लगे थे। आरम्भ से ही वे बड़े मेधावी बुद्धिमान निर्भीक साहसी और मित्र प्रिय थे। रोज रात को सोने के पहले किसी वृद्ध आत्मीय के मुख से 'मुक्तबोध' व्याकरण के सूत्र सुन - सुनकर ही उन्हें वह प्रायः पूरा कंठस्थ हो गया था। माता के मुख से रामायण एवं महाभारत के कई अंश सुनकर बालक उसे बड़े सुन्दर ढंग से दुहरा लेता था। वे श्रुतिधर एवं स्मृतिधर थे। स्मृतिधर होने के कारण एक बार जो पढ़ते व सुनते वह सदा के लिये उनके स्मृति पटल पर अंकित हो जाता। अद्भुत् क्षमता सम्पन्न राम भक्त हनुमान बालक के आदर्श प्रतीक थे। इसी लिये बल वीर्य साहस एवं पवित्रता के आदर्श को उन्होंने अपने जीवन में उतारा ।

नरेन्द्र के नटखटपन की कोई सीमा नहीं थी। डराने - धमकाने, डाटने - फटकारने के बावजूद भी उन्हें रोकना मुश्किल हो जाता था। तब बालक को गोंद में लेकर माता कहती - "काफी सिर धुनकर शिवजी से एक पुत्र माँगा था, पर उन्होंने भेज दिया एक भूत" कालान्तर में विवेकानन्द की पाश्चात्य शिष्याओं के समक्ष उनकी जननी ने पुत्र के बचपन के शरारत का वर्णन करते हुए कहा था - "अरे ! तुम्हें क्या बताऊँ उसे सम्भालने के लिए दो महरियाँ आठों पहर उसके पीछे - पीछे घूमा करती थीं।"

ध्यानपरायणता के लक्षण नरेन्द्र में बचपन से ही दृष्टिगोचर होने लगे थे। एक दिन वे साथियों के साथ खेल - खेल में मकान के तिमंजिले पर शिवजी के मूर्ति के समक्ष ध्यान करने बैठे, थोड़ी देर बाद एक बालक साँप - साँप कह कर चिल्ला उठा। साथ के सभी बालक दरवाजा खोल कर निकल भागे किन्तु नरेन्द्र ध्यान मग्न बैठे रहे .... कुछ समय बाद साँप अपना फन समेट कर चला गया, बहुत ढूढ़ने पर भी उसका सुराग नही मिला। बाद में यह बात सुन कर नरेन्द्र ने कहा –"मुझे तो कुछ पता ही नही चला।"

छह वर्ष की आयु होने पर नरेन्द्र को पढ़ने के लिए पाठशाला भेजा गया किन्तु थोड़े ही दिनो में पिता ने पाठशाला जाना बन्द करा कर घर पर ही शिक्षक नियुक्त कर उनकी शिक्षा की व्यवस्था कर दी। कुछ वर्षो बाद उन्हे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर द्वारा स्थापित मेट्रोपोलिटन इंस्टिट्यूशन में पढ़ने हेतु लाया गया। यहाँ वे अंग्रेजी पढ़ने के लिए किसी भी प्रकार तैयार नही हुए। उनका कहना था - "वह तो विदेशी भाषा है, उसे क्यो पढ़ूँ? उससे तो अपनी भाषा सीखना

ज्यादा अच्छा है ।'' बाद में बालक के मन में परिर्वतन आया फिर वह बड़े उत्साह से अंग्रेजी सीखने लगा ।

स्कूल का पाठ तैयार करने में नरेन्द्र को अधिक समय नही लगता था । मास्टर साहब पढ़ते जाते और नरेन्द्र आँख मूँदे लेटे - लेटे सुनते रहते, इसी से उन्हे सब याद हो जाता था । अब बचा हुआ समय कैसे बिताया जाये ? अतः वे मुहल्ले के बालकों के साथ व्यायाम, नाटक आदि कितने ही चीजों में भाग लेने लगे और खेल - कूद, तैराकी आदि में सबसे आगे रहते थे । जन्म से ही उनमें नेता के गुण विद्यमान थे । समय के साथ उनका शरीर सुदृढ़ और बलिष्ठ हो गया । अब एक ओर वे अश्वारोहरण में निपुण और व्यायाम कुशल हो गये थे तो दूसरी ओर दर्शनादि विभिन्न शास्त्रों में विद्वान, नृत्य, गीत एवं विविध वाद्यों के वादन में निपुण तथा हास्य विनोद प्रिय बन गये थे । गंभीर चिन्तनशील पवित्रचित्त, ध्यानपरायण, अध्ययनशील एवं बहुविध गुणो से विभूषित होने के कारण वे सर्वप्रिय हो गये थे ।

परीक्षा में उर्त्तीण होना नरेन्द के लिए एक साधारण सी बात थी । वे परीक्षा से एक दो महीने पहले ही पाठ्य पुस्तकों को हाथ लगाते थे किन्तु अपनी असामान्य मेधा के फलस्वरूप वे सदैव सम्मान के साथ उत्तीर्ण होते थे । पाठ्य पुस्तकों की क्षुद्र सीमा में बँध कर इनकी ज्ञान स्पृहा तृप्त नही होती थी । प्रवेशिका परीक्षा के पूर्व ही उन्होंने भारत के इतिहास पर लिखे प्रायः सभी ग्रन्थों एवं प्रसिद्ध लेखकों द्वारा रचित साहित्य आदि का अध्ययन कर विभिन्न विषयों से सम्बन्धित अपने ज्ञान भण्डार को समृद्ध बना लिया था ।

बचपन से ही दीन - दुःखियो का कष्ट एवं उनकी वेदना देखकर नरेन्द्र के प्रॉंण रो उठते थे और उन्हे देने के लिए पास में कुछ नही होने पर वे अपने अंग के वस्त्र ही दे डालते थे । निर्धनों को कुछ देकर उन्हे परम सन्तोष का अनुभव होता था । दीन - दुखियो की पीड़ा व कष्ट का वे अंतः करण से अनुभव करते थे और उनके दुःख दूर करने का उपाय सोचने में उनका चित्त व्यग्र हो उठता था । दीन - दलित एवं उपेक्षितों के प्रति कल्याण की भावना बचपन से ही उनमें व्याप्त थी, यही भावना आगे चल कर उनके महान जीवन ब्रत के रूप में परिणीत हो गयी । इस सम्बन्ध में उन्होने कहा भी था - ''जो लाख लाख उपेक्षित नर नारी दिन - प्रति दिन दुःख के अन्धेरे गर्त में

अधिकाधिक डूबते जा रहे हैं, जिन्हें सहायता देने वाला या जिनके बारे में सोचने वाला कोई नही, जो दीन - हीन व पीड़ित है उनके द्वार तक सुख - स्वछन्दता, धर्म - नीति एवं शिक्षा ढोकर पहुँचा देना होगा । यही मेरी आकांक्षा और यही मेरा व्रत है । मैं उसे पूरा करूँगा या मृत्यु का वरण करूँगा ।'' भारत की हतसर्वस्व जनता के उद्धार का संकल्प लेकर उन्होंने विश्व कल्याण की भावना में अपना जीवन समर्पित कर दिया । वे दीनों के त्राता थे । यही उनके जीवन का महत्तम पहलू था । समाज सेवा के इसी महान कार्य के लिए ही उन्होंने देह धारण किया था ।

तरुण होने के साथ ही वे साधन, भजन, कठोर तप और अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन में मग्न रहने लगे । कितनी ही रातें वे बिना सोये, ध्यान में बिता देते । अन्तर्मन में उठने वाले अनेकों प्रश्नों के समाधान हेतु उन्होंने ब्रह्मसमाज में आना जाना प्रारम्भ कर दिया और समाज की प्रार्थना आदि में सम्मिलित होकर आनंद का अनुभव करने लगे । सुकंठ गायक नरेन्द्रनाथ ब्रह्मसमाज की रविवासरीय उपासना के समय मधुर भजन गाकर सबको आनन्दित कर देते थे । थोड़े ही समय में वे अपने विशेष गुणों के कारण केशवचन्द्र सेन आदि नेताओं के प्रिय भाजन बन गये । ब्रह्म समाज के सदस्य बन कर निराकार, निर्गुण ब्रह्म की उपासना एवं हिन्दू धर्म की रूढ़ियों तथा रीति - रिवाजों की निंदा के साथ स्त्री शिक्षा एवं नारी स्वाधीनता आदि के कार्यों में रत रहने लगे ।

धर्म के वाह्य क्रिया - कलापों के साथ ही अब उनका मन धर्म के मूल उद्देश्य 'ईश्वर लाभ' की पूर्ति के लिए अधीर हो उठा । उस चिरन्तन सुख की खोज में उनका प्राण आकुल हो गया और इसी व्याकुलता के कारण वे कलकत्ते के भिन्न - भिन्न धर्म प्रचारकों के पास आने - जाने लगे । इसी क्रम में एक दिन वे महर्षि देवेन्द्रनाथ के पास जा पहुँचे । उपासना एवं ध्यान चिंतन की सुविधा के लिए महर्षि, उस समय गंगा तट पर एक नाव में विद्यमान थे । नरेन्द्र पागलों की तरह उस नाव में प्रवेश कर सहसा पूँछा — ''महाशय क्या आपने ईश्वर को देखा है ?'' महर्षि ऐसे प्रश्न के लिए तैयार नही थे और युवक की ओर ताकते रह गये । नरेन्द्र बड़ी आशा से इनके पास आये थे परन्तु कुछ न पाकर वापस लौट आये । उनके मन की अशान्ति और भी बढ़ गयी । अब तो उनके हृदय में यही विचार आने लगा - ''ऐसे तत्वदर्शी महापुरुष कहाँ मिलेंगे जो भूमानन्द की प्राप्ति का मार्ग दिखा सके ?''

इसी बीच कालेज के अध्यापक 'हेस्टी महाशय' ने 'शेली' की एक कविता पढ़ाते समय उसमें भावाविष्ट हो भाव जगत में खोने की बात आने पर अपने छात्रों से कहा कि - "तुम दक्षिणेश्वर जाकर देख सकते हो कि व्यक्ति कैसे भावाविष्ट हो जाता है।" केशवचन्द्र सेन के भाषण तथा उनके द्वारा संचालित पत्रिका आदि में रामकृष्ण के सम्बन्ध में बातें होती रहती थीं। हेस्टी महाशय एवं केशवसेन की बाते सुन कर नरेन्द्र का मन रामकृष्ण से मिलने को उत्सुक हो उठा।

अठ्ठारह वर्ष की आयु होने तक वे एफ० ए० परीक्षा की तैयारी के साथ पूर्वी एवं पश्चिमी दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन कर संदेहवाद तथा नास्तिकवाद से परिचित हो गये। वे सगुण ब्रह्म के उपासक थे। मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं करते थे। इस विश्व, संसार का कोई नियामक है भी या नहीं ? यदि है, तो कौन है ? क्या उसे देखा जा सकता है? दयामय ईश्वर के राज्य में इतना दुःख, इतनी विफलता, इतना अन्याय क्यों है ? .... इन प्रश्नों का समाधान उन्हें खोजने से भी नहीं मिलता, संसार में इतनी विषमता, धनी एवं निर्धन के बीच ऐसी गहरी खाई किसने बनाई ? जब सभी एक ही ईश्वर की सन्तान हैं, तब ब्राह्मण और चाण्डाल के बीच दुर्लंघनीय अंतराल का सृजन कैसे हुआ ? इस प्रकार के सैकड़ों विचार उनके तरुण हृदय को मथ रहे थे।

कलकत्ता के सिमुलिया मुहल्ले के निवासी सुरेन्द्रनाथ मित्र ने एकदिन अपने मकान में श्रीरामकृष्ण एवं इनके भक्तों को सादर आमंत्रित किया। भजन गाने के लिए अच्छे गायक की आवश्यकता थी। सुरेन्द्रनाथ अपने पड़ोसी विश्वनाथ के पुत्र सुकंठ नरेन्द्रनाथ को बुला लाये। नरेन्द्र ने हृदय खोलकर भजन गाया जिसे सुन रामकृष्ण देव मग्न हो भावाविष्ट हो गये। भजन समाप्ति के बाद रामकृष्ण ने नरेन्द्र से दक्षिणेश्वर आने का आग्रह किया। शिष्टाचारवश नरेन्द्र ने आने का वचन दे दिया।

इस घटना के कुछ सप्ताह बाद नरेन्द्र को एक अग्नि - परीक्षा का सामना करना पड़ा। पिता ने किसी सम्पन्न परिवार की कन्या के साथ उनका विवाह निश्चित कर दिया। प्रस्ताव सुनते ही नरेन्द्र ने इसका विरोध किया और दृढ़ता पूर्वक कहा -- ...., "मै किसी भी दशा में विवाह नही

करूँगा ।'' इस घटना से नरेन्द्र के वैराग्य - प्रवण मन में ईश्वर की अभिलाषा और भी तीव्र हो गयी । उनका ब्रह्म समाज में आना - जाना और बढ़ गया ।

एक दिन पड़ोसी सुरेन्द्रनाथ ने उन्हे दक्षिणेश्वर चलने का निमंत्रण दिया । रामकृष्ण को दिये वचन को याद कर वे सुरेन्द्रनाथ की गाड़ी में बैठ, दक्षिणेश्वर चल दिये । वहाँ ज्ञानी, गुणी आत्मविश्वासी और युक्तिवादी 'नरेन्द्र' का मिलन निर्धन, निरक्षर, ब्राह्मण पुजारी रामकृष्ण से हुआ, जो दक्षिणेश्वर में भवतारिणी काली माता की पूजा में रत थे । जीवन में उन्होंने भगवान के सिवाय दूसरा कुछ भी नहीं चाहा था । न कभी भाषण दिये, न कभी प्रचार किये, फिर भी केशव चन्द्रसेन, विजयकृष्ण गोस्वामी, शिवनाथ शास्त्री आदि ब्रह्मसमाज के शीर्ष नेतागण इस निरक्षर अद्भुत् पुरुष के चरणों तले स्तब्ध होकर घन्टों बैठे रहते, मंत्र मुग्ध होकर उनके श्री मुख से भगवत् प्रसंग सुनते रहते । उनकी भाव समाधि देखकर वे विस्मित हो जाते । सोंचते, शास्त्र आदि कुछ भी न पढ़ कर भी ऐसी सुन्दर बाते, जो हमें भी नही मालूम है ? ये कैसे बताते हैं ! दिखने में पागलों की तरह इन्हें अपने वस्त्रों का ख्याल भी नही रहता किन्तु माता का नाम व गुणगान करने लगते तो सुनने वालों के हृदय में तीर की तरह जा विंधता ।

रामकृष्ण के पास आकर नरेन्द ने अपना वही पुराना प्रश्न दुहराया - भगवान को कभी देखा जा सकता है या नही ? इस प्रश्न के उत्तर में श्री रामकृष्ण ने आशा भरे शब्दों में कहा - ''हाँ जी, उन्हें देखा जा सकता है । मैं जैसे तुम्हे देख रहा हूँ, तुमसे बात चीत कर रहा हूँ ठीक वैसे ही बल्कि उससे भी अधिक स्पष्ट रूप से ईश्वर को देखा जा सकता है । किन्तु भला उन्हें चाहता कौन है ? लोग स्त्री पुरुष के शोक में घड़ो आँसू बहाते हैं । सम्पत्ति, धन, दौलत के लिए कितना रोते हैं; पर भला बताओ तो भगवान लाभ नहीं हुआ इसलिए कौन रोता है? उनकी प्राप्ति नही हुयी इस दुख से यदि कोई रो - रो कर उन्हें पुकारे तो उसे वे निश्चित रूप से दर्शन देते हैं ।''[१] श्री रामकृष्ण के शब्दों ने नरेन्द्र के अन्तःकरण को छू लिया । वे स्तब्ध होकर सोचने लगे -- ''पागल जैसे होने पर भी ये परम पवित्र हैं, महात्यागी हैं । इन्होंने ईश्वर के दर्शन किये हैं । ये सभी मानवों की हार्दिक श्रद्धा पूजा और सम्मान पाने के अधिकारी हैं ।''[२]

---

१. स्वामी विवेकानन्द : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश - स्वामी अपूर्वानन्द, पृ० १६
२. वही

दक्षिणेश्वर से घर लौट कर नरेन्द्र ने पढ़ाई लिखाई में मन लगाने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु वे किसी तरह रामकृष्ण को भुला नहीं पा रहे थे। दिन - रात रामकृष्ण का ही विचार उन्हें बेचैन किये रहता। अंत में चिंता से व्याकुल हो एक दिन वे अकेले ही दक्षिणेश्वर की ओर चल पड़े। वहाँ रामकृष्ण नरेन्द्र को देख कर खिलाने - पिलाने एवं उनकी आव - भगत करने को व्यग्र हो उठे और तरह तरह से नरेन्द्र के प्रति प्रेम प्रकट करने लगे। संध्या होने पर नरेन्द्र जब विदा लेने लगे तो रामकृष्ण ने हठपूर्वक कहा - ''बोलो फिर शीघ्र ही आओगे ना।'' उन्हे वैसा ही वचन देकर नरेन्द्र कलकत्ता लौट आये।

श्री रामकृष्ण के जीवनादर्श से अनुप्राणित नरेन्द्रनाथ के लिए चरम एवं परम सत्य स्वरूप भगवान को प्राप्त करना ही जीवन का एक मात्र लक्ष्य बना। सब प्रकार के सुख चैन का विसर्जन करते हुये उन्होंने कठोर ब्रह्मचारी का व्रत ग्रहण किया। वे पढ़ाई - लिखाई में लापरवाही तो नही करते किन्तु रात्रि में व्याकुल हृदय से ईश्वर चिन्तन करने में उनका बहुत सा समय बीत जाता था।

बी० ए० की परीक्षा के बाद जब नरेन्द्र बी० एल० पढ़ रहे थे तब (१८८४ ई० के प्रारम्भ में) एक दिन अचानक उनके पिता का देहान्त हो गया। उनके पिता की आय काफी थी किन्तु अपरिमित व्यय एवं दान के कारण वे कुछ भी छोड़ कर नहीं जा सके बल्कि कुछ ऋण ही छोड़ गये थे। उनके देहान्त के एक दो महीने के भीतर ही नरेन्द्र के पारिवारिक जीवन में एक महान संकट मय परिस्थिति आ खड़ी हुयी। पहला प्रश्न था माता, भाई - बहन आदि छः सात लोगों के अन्न वस्त्र की व्यवस्था कैसे हो ? समय देख कर, लेनदार भी आ धमके। नरेन्द्रनाथ के जीवन में निर्धनता के साथ यह पहला ही सामना था। पिता के निधन का पूरा सूतक होने के पहले ही वे नंगे पैर नौकरी की खोज में घूमने लगे। माता का व्यथित मुख उनके प्राँणो को आकुल किये देता था। छोटे - भाई बहनों का जीर्ण शरीर देख कर उनका चित्त व्यग्र हो उठता और वे नीरव आँसू बहाते। सबेरे उठ कर पहले ही भण्डारघर की स्थिति का पता लगा लेते और कठिनाई देखने पर स्नान करके ''मुझे निमंत्रण है'' कह कर निकल जाते फिर नौकरी की तलाश में भटकते हुए सारा दिन भूँखे बिता कर रात को घर लौटते। अवसर देख कर रिश्तेदारों ने मकान पर जबरदस्ती कब्जा जमा लिया। माता और भाई - बहनों को लेकर नरेन्द्र ने नानी के घर में आश्रय लिया। उच्चन्यायालय में

मामला दायर किया गया। निःसम्बल, निराश्रय परिस्थिति में पड़े नरेन्द्र के चारों ओर अँन्धेरा ही अँन्धेरा दिखाई देने लगा ।

सैकड़ों प्रयत्न करने पर भी जब सांसारिक दुःख, कष्टों से छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं मिला, तब नरेन्द्रनाथ के मन में आया कि श्री रामकृष्ण से मिलकर कोई उपाय निकालने के लिए कहते हैं। रामकृष्ण से यह बात कहने पर उन्होंने कहा - "अच्छा जा, माँ से कहूँगा कि तुझे सादे अन्न वस्त्र का कभी अभाव न हो।" समय के साथ धीरे - धीरे उनका सांसारिक अभाव दूर होने लगा। साथ ही अब वे साधना के द्वारा एक नवीन दृष्टि भी प्राप्त कर रहे थे।

एक दिन ईश्वरीय वार्ता के प्रसंग में रामकृष्ण देव कह रहे थे - "जीव पर दया नही शिव ज्ञान से जीव की सेवा" इस कथन को सुना तो बहुत से लोगों ने, लेकिन इसमें निहित गहरे सत्य का अनुभव केवल नरेन्द्र ने ही किया। जैसा कि उन्होंने कमरे से बाहर आने पर कहा - "आज ठाकुर (रामकृष्णदेव) की बातों में कैसा अपूर्व प्रकाश दिखायी दिया ! उन्होंने भावावस्था में जो कहा उसके द्वारा, वन के वेदान्त को जीवन में लाया जा सकता है। मनुष्य अपने जीवन में प्रतिक्षण जिसके सम्पर्क में आ रहा है, जिनके प्रति श्रद्धा सम्मान निवेदित कर रहा है, वे सभी ईश्वर के अंश हैं; स्वंय ईश्वर ही हैं। भगवान ने यदि कभी अवसर दिया तो आज जो सत्य सुना उसे संसार में सर्वत्र प्रचारित करूँगा। पण्डित - मूर्ख, धनी - निर्धन, ब्राम्हण - चाण्डाल सभी को इसे सुनाकर मोहित करूँगा।"[१] और समय आने पर उन्होंने वैसा ही किया भी। मानव जाति के सम्मुख उन्होंने धर्मराज का एक नया क्षितिज उद्‌घाटित किया। मनुष्य के जीवन में धर्म साधना का एक नया मार्ग प्रशस्त कर दिया। शिवज्ञान से जीव - सेवा इस महामंत्र में व्यष्टि मुक्ति का मार्ग निहित है। साम्य-मैत्री, विश्वबधुत्व का बीज इसी में छिपा हुआ है। स्पृश्य - अस्पृश्य एवं समाज के विभिन्न जाति उपजातियों के बीच विभिन्न धर्मो या एक ही धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों अथवा मतवादों के बीच ऐक्य स्थापित करने का एक मात्र सहज उपाय है - मनुष्य मात्र की ईश्वर बुद्धि से सेवा। जीव ही शिव है, नर ही नारायण है, मानव में ही भगवान का श्रेष्ठतम प्रकाश है। मानव की सेवा ही भगवान की श्रेष्ठतम पूजा है। विवेकानन्द मानव जाति के चिरन्तन कल्याण के लिए संसार में इस सन्देश

---

१. स्वामी विवेकानन्द : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश - स्वामी अपूर्वानन्द, पृ० २३

का प्रचार करते हैं । इसके यथार्थ प्रयोग के फलस्वरूप विश्वशान्ति एवं मानव जाति का कल्याण अवश्य सम्भव होगा । उनकी 'सखा के प्रति' कविता में यह भाव बड़े सुन्दर रूप में व्यक्त हुआ है --

"ब्रह्म और परमाणु कीट तक, सब भूतों का है आधार,
एक प्रेममय प्रिय, इन सब के चरणो में दो तन - मन वार ।
बहुरूपों में खड़े तुम्हारे आगे, और कहाँ है ईश !
व्यर्थ खोज ! यह जीव प्रेम की ही सेवा पाते जगदीश ॥"[१]

रामकृष्ण देव अब अपनी नरलीला का संवरण करने के लिए तैयार हो रहे थे । नरेन्द्र को अब वे बिल्कुल दूर नही जाने देते थे । उनको सदा पास बैठा कर जीव कल्याण रूपी कार्य के सम्बन्ध में गूढ़ आदेश उपदेश देते और एकान्त में उनकी चर्चाएँ करते । अब नरेन्द्र पर वे अपने असामान्य कार्यों का बोझ सौंपने जा रहे थे । एक दिन रामकृष्ण ने एक कागज के टुकड़े पर लिखा - नरेन्द्र लोक शिक्षा देगा । नरेन्द्र को इस प्रकार उन्होंने अधिकार प्रदान किया । नरेन्द्र ने थोड़ा हिचकते हुए कहा -"मुझसे वह सब नही होगा ।" रामकृष्ण ने तत्क्षण दृढ़ स्वर में उत्तर दिया - "तेरी हड्डियो से होगा ।' इस तरह रामकृष्ण ने नरेन्द्र के अन्तर्मन में 'बहुजन हित की शुभकामना जागृत कर उनके विचारों को जीव भूमि पर उतार दिया । इस तरह मानों वे उनकी गर्दन पकड़ कर जबरन यह कार्य करा लेना चाहते थे । विश्वास - अविश्वास नाना प्रकार के दुःख - कष्ट और संघातों के भीतर से ले जाते हुए रामकृष्ण ने अपने हाँथो से नरेन्द्र को गढ़ा था । विवेकानन्द तो केवल रामकृष्ण की अमोघ इच्छा शक्ति के यंत्र स्वरूप थे । इसीलिए तो विवेकानन्द ने पूरे विश्व में रामकृष्ण के सन्देशों का प्रचार एवं प्रसार किया ।

रामकृष्ण किसी विशिष्ट देश जाति धर्म के लिये नही बने थे । वे सनातन वैदिक धर्म के नवीनतम अभिव्यक्ति के रूप में परम सत्य को संसार के समक्ष प्रकट करना चाहते थे । लोक कल्याण की भावना का महान उपदेश देकर १६ अगस्त १८८६ को रामकृष्ण देव का शरीर महासमाधि में विलीन हो गया । रामकृष्ण की महासमाधि के पश्चात नरेन्द्रनाथ ने अपने गुरुभ्राता

---

१. मूल बंगला कविता 'सखार प्रति' का हिन्दी अनुवाद

तारकनाथ की सहायता से कलकत्ता के निकट वाराह नगर के एक भूतहे मकान में मठ की स्थापना की । यथा क्रम वहाँ रामकृष्ण की व्यवहृत वस्तुएँ एवं भस्मास्थि लाई गयी और कुछ त्यागी भक्त वहाँ आकर रहने लगे । नित्य पूजा - पाठ, ध्यान, भजन - कीर्तन, शास्त्रअध्ययन आदि चलने लगा । यहाँ गृही भक्त भी आने जाने लगे । इस तरह रामकृष्ण के निर्देशानुसार ही 'वाराह नगर' का मठ स्थापित हुआ । जनवरी १८८७ ई० में नरेन्द्र ने अनुष्ठानिक रीति से विधवत् विरजा होम करके संन्यास ग्रहण किया । नरेन्द्रनाथ ने उस समय विदिषानन्द अथवा सच्चिदानन्द नाम ग्रँहण किया था । अमेरिका जाते समय उन्होंने विवेकानन्द नाम ग्रँहण किया । त्याग तपस्या एवं कठोरता से पूर्ण वाराह नगर मठ का जीवन रामकृष्ण संघ के इतिहास का एक उज्ज्जवल इतिहास है । उस समय वहाँ भोजन आदि की कोई स्थायी व्यवस्था न थी । उन जैसे नवयुवकों को कोई आसानी से भिक्षा भी नही देता था । इसलिए हर दिन भर पेट भोजन भी नही मिल पाता था । आगें चल कर स्वामी विवेकानन्द किस्सा सुनाते हुए कहते हैं – "वाराह नगर में ऐसे दिन बीते हैं जब खाने के लिए कुछ भी नही रहता, ... कुछ दिन तक नमक और भात ही चलता । पर उस ओर किसी का ध्यान भी नही था । उस समय जब हम ध्यानादि के प्रबल प्रवाह मे उतरा रहे थे । अहा ! कैसे विलक्षण दिन थे वे,वह कठोरता देखने पर भूत भी भाग जाते-- मनुष्य की तो बात ही क्या !!"[१]

वराह नगर मठ को क्रमशः एक स्थायी रूप लेते देख कर स्वामी जी ने कुछ निश्चिन्तता की साँस ली । उनके गुरुभाई अब तीर्थ - पर्यटन को जाने लगे । स्वामी जी को भी अपने अन्तर से विवेक का आवाहन सुनाई दे रहा था । वे जान गये थे कि समस्त विश्व में उथल - पुथल मचा देने वाली एक विराट घटना उनकी प्रतीक्षा कर रही है । श्री रामकृष्ण ने उन्हें जिस कार्य का निर्देश दिया था उसके सार्थक रूपायन के लिए वे गम्भीर रूप से विचार करने में मग्न हो गये ।

अब स्वमीजी भारतके विभिन्न स्थलों का भ्रमण करने निकले । विभिन्न स्थानों में जाने के बाद सर्वत्र जनसाधारण की निर्धन और असहाय दशा देख कर स्वामी जी का मन वेदना से भर उठा । देश के मेरुदण्डस्वरूप राष्ट्र के प्राणस्वरूप भारत के भविष्यरूप इन दीन - जन नारायणो की शोचनीय परिस्थिति को सुधारने की दशा में वे राजाओं एवं राज्यकर्मचारियों को

---

१. स्वामी विवेकानन्द : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश - स्वामी अपूर्वानन्द, पृ० ३०

प्रोत्साहित करने लगे । मानव पीड़ा और व्यथा को केन्द्रित करके उन्होंने अपनी समस्त शक्ति व चेष्टा, नर - नारायण की सेवा में लगा दी । उन्होंने कहा था - ''मै एक ऐसा धर्म चाहता हूँ, जो हममें आत्मविश्वास एवं राष्ट्रीय स्वाभिमान का बोध जगा दे तथा हममें दीन - दुःखियो को अन्न व शिक्षा देने की तथा हमारे चारो ओर फैले, दुःख और कष्ट को दूर करने की शक्ति भर दे । यदि ईश्वर लाभ करना चाहते हो तो पहले मनुष्य की सेवा करो ।'' स्वामी जी के उपदेशों से अनुप्राणित होकर खेतड़ी नरेश ने अपने राज्य में जनता की उन्नयन के लिए विविध प्रकार की व्यवस्था की । मद्रास के प्रमुख नागरिक स्वामी विवेकानन्द को शिकागो धर्ममहासभा में हिन्दू धर्म का प्रतिनिधि बना कर भेजना चाहते थे; इसके लिए वहाँ के लोगों ने बड़े उत्साह के साथ धन संग्रह का कार्य किया । यात्रा की तैयारी पूरी हो रही थी कि खेतड़ी नरेश के विशेष अनुरोध पर (दो वर्ष पहले स्वामीजी ने खेतड़ी के सन्तान हीन राजा को पुत्र होने का आशीर्वाद दिया था । राजा को पुत्र लाभ हुआ था ।) राजपुत्र को आशीष देने उन्हे खेतड़ी जाना पड़ा । आर्शीवाद देने के बाद विवेकानन्द जहाज पकड़ने बम्बई गये । वहाँ उनके प्रिय शिष्य आलासिंगापेरुमल व मुंशी जगमोहन लाल भी साथ गये थे । ३१ मई १८९३ ई० को जहाज पर बैठने पर मातृभूमि के लगाव से उनका हृदय व्यथित हा गया । डेक पर खड़े होकर वे अपलक भारत की तट भूमि को निहारते रहे — मेरा महिमामय भारतवर्ष ! हाय ! पराधीन, पद - दलित भारत भूमि ! भारत की सैकड़ों चिन्ताएँ उनके मानस पटल पर छा गयी थीं ।

अनेक प्रचंड बाधाओं के होते हुए भी वे शिकागो के धर्मसम्मेलन में सम्मिलित हुए । उनके विदेश गमन के कई उद्देश्य थे; एक तो वे भारतवासियों के इस अंधविश्वास को तोड़ना चाहते थे कि समुद्रयात्रा पाप है तथा विदेशियों के हाँथ से अन्न - जल ग्रँहण करने से जात चली जाती है, दूसरे भारत के अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों को वे दिखलाना चाहते थे कि भारतवासी अपनी आदर स्वयं भले न करे परन्तु पश्चिम के लोग भारत से प्रभावित हो सकते हैं । रामकृष्ण के विश्व के सभी धर्मो की एकता के भाव को मूर्त रूप देने के लिए भी विवेकानन्द इस धार्मिक सम्मेलन में सम्मिलित हुए । इस सम्बन्ध में भारत से विदा होने के पूर्व उन्होंने अपने गुरुभाई स्वामी तूरीयानन्द से कहा था -- ''हरि भाई धर्म महासभा इसी (अपनी ओर इंगित करते हुए) के लिए हो रही है । मेरा मन ऐसा ही कह रहा है .... शीघ्र तुम्हे इसका प्रमाण देखने को मिलेगा।''

११ सितम्बर १८९३ ई० का दिन धर्म जगत के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा, इसी दिन समग्र जगत मे विश्वबन्धुत्व का सूत्रपात हुआ था । भारत के वेदान्त धर्मके प्रतिनिधि स्वामी विवेकानन्द ने महान धर्म सम्मेलन में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया । शिकागो सम्मेलन में स्वामी जी ने जिस ज्ञान, उदारता, विवेक और वाग्मिता का परिचय दिया उससे वहा के लोग मंत्र मुग्ध हो उनके भक्त हो गये । प्रथम दिन तो विवेकानन्द को सबसे अंत में बोलने का अवसर दिया गया किन्तु उसके बाद सम्मेलन में उनके जो भी दस बारह भाषण हुए वे भाषण सभा के अन्त में ही दिये गये क्यों कि सारी जनता उन्ही का भाषण सुनने के लिए अन्त तक बैठी रहती थी । उनके भाषण पर टिप्पणी करते हुए 'द न्युयार्क हेराल्ड' ने लिखा था – ''धर्मो की पर्लियामेन्ट में सबसे महान विवेकानन्द हैं । उनका भाषण सुन लेने पर अनायास यह प्रश्न उठ खड़ा होता है, ऐसे ज्ञानी देश के लिए धर्म प्रचारक भेजने की बात कितनी बेवकूफी है ।'' इसी सम्बन्ध में भगिनी निवेदिता लिखतीं हैं - '' शिकागो धर्ममहासभा में जब स्वामी जी ने अपना भाषण आरम्भ किया तो उनका विषय था - 'हिन्दूओं के प्राचीन धार्मिक विचार' पर जब उनका भाषण समाप्त हुआ तो आधुनिक हिन्दू धर्म की सृष्टि हो चुकी थी । ..... भारत की धर्म चेतना ने उनके द्वारा पश्चिम में अपने आप को प्रकाशित किया ।''[१]

इस प्रकार हिन्दुत्व को लीलने के लिए अंग्रेजी भाषा, ईसाई धर्म और यूरोपीय बुद्धिवाद के रूप में जो तूफान उठा था वह विवेकानन्द के हिमालय जैसे विशाल वक्ष से टकराकर वापस लौट गया । हिन्दू धर्म उनके इस प्रदेय पर उनकी याद उसी श्रद्धा से करेगी जिस श्रद्धा से वह 'व्यास' और'वाल्मिकि'को याद करती है ।

विवेकानन्द की इस विजय पर सारे भारत में उल्लास की लहर फैल गयी । दीनता और लाँछना से दबी भारत भूमि में मानो आनन्द की सरिता प्रवाहित होने लगी । स्वामी जी की इस सफलता का प्रभाव हमारे प्रत्येक राष्ट्रीय उद्यम और कर्म पर पड़ा । केवल धर्म और आध्यात्म के क्षेत्र में ही नही वरन् आर्थिक और सामाजिक जीवन पर भी उसका प्रभाव बड़ा ही व्यापक हुआ था और उसी दिन से हमारा राष्ट्र सर्वतोमुखी विकास के पथ पर आगे बढ़ चला ।

---

१. स्वामी विवेकानन्द : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश - स्वामी अपूर्वानन्द, पृ० ४९

रोमॉरोला ने इस जागरण की ओर इंगित करते हुए लिखा है – ''सर्वप्रथम यहीं से भारत की उन्नति शुरू हुयी । उसी दिन से दीर्घकाय कुम्भकर्ण की नीद टूटने लगी ।..... विवेकानन्द के निधन के तीन साल बाद नयी पीढ़ी ने, जो बंगाल का विप्लव तथा तिलक एवं गाँधी का आन्दोलन शुरू होते देखा, वह तथा वर्तमान भारत के संगठित जन आन्दोलन, विवेकानन्द के ही सशक्त आवाहन के फल हैं ।''[१] स्वामी विवेकानन्द भारतीय जन जागरण के ऋत्विक हैं – स्वाधीनता संग्राम के अग्रदूत हैं ।

शिकागो विश्वसम्मेलन के कारण अज्ञात और अख्यात स्वामी विवेकानन्द विश्वबन्द्य हुए । जिस हिन्दूधर्म को मूर्तिपूजक कहा गया था, जिसे विश्व धर्म सम्मेलन में निमंत्रण भी नही भेजा गया था, उसी हिन्दू धर्म के बिन बुलाये प्रतिनिधि के रूप में धर्म सम्मेलन में उपस्थित हो विवेकानन्द ने सनातन वैदिक धर्म के लिए सबसे उच्च सिंहासन प्रदान कराया । इसीलिए इन्हें 'साइक्लोनिक हिन्दू मांक'(तूफानी हिन्दू संन्यासी) और 'लाइटनिंग ओरेटर' (विद्युत वक्ता) आदि उपाधि दिये गये ।

उनके भारत आगमन की बात सुनकर पूरा राष्ट्र उनकी प्रतीक्षा अधीरता से कर रहा था । सारे देश में पूज्य विवेकानन्द के स्वागत की तैयारियाँ होने लगी । मार्ग मे कई जगह रुकने और व्याख्यान देने के बाद वे कोलम्बो होते हुए मद्रास पहुँचे और अपने उद्बोधन में उन्होंने कहा - ''दीन - दुःखियों और पीड़ितों, आर्तों के भीतर शिव की पूजा करो ।'' इसके बाद रामनाद के राजा और अन्य उत्साही जन स्वामी जी की गाड़ी के घोड़े खोल कर उसमे स्वयं जुत गये । उमड़ते जनसमूह का प्रेम देखकर वे अभिभूत हो गये ।चारो ओर जय - जयकार और हर्ष ध्वनि के कारण वे भाषण नहीं दे सके ।

मद्रास से कलकत्ता पहुँचने पर वहाँ के नागरिकों ने विवेकानन्द की विराट अभ्यर्थना की जिसके उत्तर में उन्होंने कहा - श्री रामकृष्ण के चरणों में बैठ कर शिक्षा ग्रँहण करने पर ही भारत का पुनर्जागरण होगा । उनके आवाहन ने सबका हृदय छू लिया । लगातार वेदान्त प्रचार और जनसेवा के कार्यों में उन्होंने अपनी सारी शक्ति व्यय कर दी, फलतः उनका स्वास्थ्य टूटता गया ।

---

१. स्वामी विवेकानन्द : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश - स्वामी अपूर्वानन्द, पृ० ५१

चिकित्सकों के परामर्श पर स्वास्थ्य सुधार के लिए उन्हे दार्जिलिंग जाना पड़ा । पर वे ज्यादा दिन वहाँ नही रुके । इसका कारण बताते हुए उन्होंने कहा - एक ही चिन्ता मेरे हृदय में आग की तरह धधक रही है, वह यह है कि भारत के जनसाधारण की उन्नति कैसे हो ?'' इस चिन्ता ने मानो उन्हें अशांत कर डाला । आलम बाजार मठ लौटकर वे फिर संघटन के कार्य में लग गये ।

संगठन के बिना किसी भी कार्य को स्थायी रूप नही दिया जा सकता । इसलिए उन्होंने धर्म प्रचार और जनसेवा कार्य का विस्तार करने के लिए संन्यासी और गृहस्थ को साथ लेकर रामकृष्ण मिशन नाम से एक संघ का गठन किया । इस संघ का उद्देश्य और आर्दश था - ''आत्मनो मोक्षार्थ जगद्धिताय च'' जन साधारण की सेवा और अपना कल्याण साधना । नर नारायण की सेवा का उद्देश्य लेकर स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित की गयी यह संस्था बेलुड़मठ के संन्यासीयों द्वारा संचालित होकर आज रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के रूप में अतीव विस्तार को प्राप्त हो रही है ।

पर्याप्त सावधानी के बाद भी स्वामी जी का स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा था । डाक्टरों की सलाह पर वे पुनः दार्जिलिंग गये । कुछ दिनों बाद ही उन्हें कलकत्ते में प्लेग फैलने का समाचार मिला । वे कलकत्ता लौट कर प्लेग निवारण के कार्य में जुट गये । शीघ्र ही उनके द्वारा स्वयं सेवक दल का गठन, स्वास्थ्य रक्षा की नियमावली और बस्तियों की सफाई का कार्य शुरू हो गया ।

निरन्तर स्वास्थ्य बिगड़ने के कारण वे अचानक बेलुड़मठ आ पहुँचे । वे समझने लगे कि मेरी लीला अब समाप्त होने वाली है, इसलिए वे धैर्य के साथ मृत्यु का साक्षात्कार करने को तैयार हो गये । उस समय उनके मन मे एक अद्भुत भाव प्रकट हो रहा था । वे सोच रहे थे - 'यदि एक और विवेकानन्द होता तो समझ पाता कि विवेकानन्द क्या कर गया है ।' मात्र उन्तालीस वर्ष की अवस्था में, ४ जुलाई १९०२ ई० को उनके छोटे किन्तु उद्देश्य पूर्ण जीवन का अन्त काल भी असमय आ पहुँचा । उनकी आत्मा, देह पिंजर से मुक्त होकर असीम में विलीन हो गयी । पर वे जगत के लिए छोड़ गये - 'उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य, वरान्निबोधत' का अमर सन्देश, आत्मा के अमरत्व व विश्वबधुत्व का महान विचार, 'जीव ही शिव है' की विराट संकल्पना; जो भारत के ही नही अपितु पूरी मानवता के उत्थान के लिए आज भी अपनी उपादेयता सिद्ध कर रही है । इस कार्य के लिए युग - युग तक उनका स्मरण किया जाता रहेगा ।

द्वितीय अध्याय

रामकृष्ण – विवेकानन्द भावधारा

(क) धार्मिक भावधारा

(ख) राष्ट्रीय भावधारा

(ग) सामाजिक भावधारा

(घ) आर्थिक भावधारा

रामकृष्ण – विवेकानन्द

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के भारतीय परिवेश में व्याप्त धार्मिक वितण्डावाद, राजनैतिक उठापटक, सामाजिक विखण्डन एवं वैचारिक विखराव के कारण आम जनता दिग्भ्रमित हो रही थी। ऐसी गहन हताशा, दुःख एवं घोर अवसाद के क्षणों में एक ऐसे सत्पुरुष का आविर्भाव हुआ जिनमें अनुभव का स्पष्ट और विस्तृत सागर, अनूभूति की गहन तीब्रता एवं चिन्तन का नूतन स्वरूप विद्यमान था, जिन्हे 'रामकृष्ण देव' के नाम से जाना जाता है।

तात्कालिक परिस्थितियों में धर्म का राजनीतिक एवं साम्प्रदायिक हथियार के रूप में विकृत प्रयोग किया जाने लगा था। प्रत्येक व्यक्ति एवं सम्प्रदाय अपने धर्म को श्रेष्ठ एवं अन्य को छोटा सिद्ध करने में तत्पर था । धर्म एवं ईश्वर विषयक अवधारणा मूल तत्वों से भटक कर वाह्य आडम्बरों एवं विविध क्रियाकलापो में उलझी हुई थी। ईश्वर है या नही है ...., सगुण साकार है या निर्गुण निराकार है, मूर्तिपूजा श्रेष्ठ है या भावपूजा श्रेष्ठ है ...... आदि वाद विवादों में जनमानस दिग्भ्रमित था। धार्मिक संक्रमण के इस काल में श्री रामकृष्ण ने धर्म को जटिल एवं दुरूह मान्यताओं से बाहर निकाल कर अत्यन्त सरल रूप में जन - जन तक प्रसारित कर दिया ।

रामकृष्ण देव के मन में किसी धर्म और सम्प्रदाय के प्रति द्वेष नही था । इनका किसी भी आन्दोलन तथा खण्डन - मण्डन से कोई सरोकार नही था । ये किसी नये धर्म की स्थापना के इच्छुक नही थे । अपनी बात प्रचारित करने के लिए न तो कभी आश्रम से बाहर गये और न ही कोई भाषण दिया । युग के अन्य धर्मनेताओ की तरह इन्होंने धार्मिकों के मन मे कभी भी यह डर नही पैदा किया कि - तुम्हारा धर्म खतरे में है । इस युग में चारो तरफ परिर्वतन, परिष्कार तथा नये प्रयोगों के द्वारा नये आविष्कार हो रहे थे । धर्म में मूर्तिपूजा के विरोध की लहर सी चल गयी थी । पुरानी पम्परायें तोड़ी जा रही थीं और नये विचारों को अपनाया जा रहा था । परिर्वतन के ऐसे वातावरण में रामकृष्ण वही पुरानी सरल - सहज पूजा पद्धति (मूर्ति पूजा) की स्थापना करते हुए दीखते हैं ।

रामकृष्ण देव ने सभी धर्मों के मूल तत्व को अपने जीवन में साकार करके यह अनुभव किया कि अलग-अलग धर्म व मत तो ईश्वर तक पहुँचने के अलग अलग रास्ते हैं, जिन

पर चल कर अन्तिम लक्ष्य (मुक्ति) पर पहुँचा जा सकता है। धर्म के रास्ते अलग अलग होने पर भी वे एक ही उद्देश्य की पूर्ति कराते हैं। इस बात की पुष्टि के लिए उन्होंने समय समय पर विभिन्न धार्मिक मतों व पद्धतियों की साधना के क्रम में कुछ काल तक ईसाई मत का अभ्यास किया........ और कुछ काल तक सच्चे मुसलमान की तरह इस्लाम की साधना में रत रहे। इसके पूर्व हिन्दू धर्म की विभिन्न पद्धतियों का भी अवलम्बन करके, जिसमें कभी राधा (स्त्री) बनकर कृष्ण को रिझाते रहे, तो कभी निर्गुण निराकार में एकाकार हो गये। रामकृष्ण नें यह सिद्ध किया कि धर्मो के बाहरी रूप भले ही अलग अलग हों परन्तु उनका मूल तत्व एक ही है, इसमे से मनुष्य किसी एक को चुन सकता है और आध्यात्मिक ऊँचाई को प्राप्त कर सकता है। जब तुम अनुभूति की ऊँचाई पर हो, तब यह सोचना व्यर्थ है कि तुम हिन्दू हो या मुसलमान। इस तरह रामकृष्ण देव धार्मिक विखण्डन की भावभूमि पर सर्व धर्मसमभाव की अजस्रधारा प्रवाहित करते हैं।

ईश्वर के सम्बन्ध में उनका सरल एवं स्पष्ट विचार था कि,- "ईश्वर है और जीव का चरम लक्ष्य ईश्वरकी प्राप्ति है।"इन्होंने जटिल, दुरूह आडम्बर युक्त व हिंसात्मक उपासना पद्धति का सदैव विरोध किया और केवल शुद्ध समर्पण भाव के द्वारा ही ईश्वर को पाने का सरल एवं सहज उपाय जन-जन को बतलाया। रामकृष्ण देव कहते हैं कि पुस्तक एवं शास्त्र ईश्वर के पास पहुँचने का मार्ग बताते हैं। इसे समझ लेने पर, तब स्वयं अपना कार्य करना चाहिए। बहुत से श्लोक एवं शास्त्र समझने मात्र से ही क्या होगा, जिसकी आसक्ति संसार और कांचन - कामिनी में है उसका शास्त्र व श्लोक सब ब्यर्थ है। जैसे पंचांग में खूब वर्षा लिखी है परन्तु उसे निचोड़ने से एक बूंद भी पानी नहीं निकलेगा। पण्डित लोग बातें तो बहुत ऊँची-ऊँची करते हैं परन्तु उनकी दृष्टि कांचन - कामिनी, देह - सुख एवं रूपये - पैसे पर टिकी रहती हैं। जैसे गीध तो बहूत ऊँचे उड़ते हैं, परन्तु उनकी नजर मरघट पर और सड़े मुर्दे पर ही रहती है। इस तरह हम देखते हैं कि वे धार्मिक उपलब्धि के लिये वाह्य पदार्थो की उपेक्षा करके सरल एवं समर्पण भाव से साधना करने पर बल देते हैं।

रामकृष्ण देव अपने वेदान्त दर्शन के द्वारा ब्रहम्, जीव, जगत एवं माया सभी की सत्ता स्वीकार करते हैं एवं सभी के उचित संयोजन की आवश्यकता पर बल देते हैं। 'बेल' का

उदाहरण देते हुए वे बतलाते हैं कि जैसे एक बेल के वजन को जानने के लिए उसके खोपड़े, बीज,गूदे तीनो को तौलना होगा । खोपड़े और बीज को निकालकर लोग गूदे को ही असल चीज समझते हैं परन्तु विचार करके देखा जाये तो जिस पदार्थ का गूदा है उसी का खोपड़ा भी और उसी का बीज भी है । पहले नेति-नेति करके समझना पड़ेगा जीव नेति, जगत नेति इस तरह का विचार करना पड़ेगा कि ब्रह्म ही वस्तु है और सब अवस्तु...........तब अनुभव होगा कि जिसका गूदा है, खोपड़ा और बीज भी उसी का है अर्थात जिसे ब्रह्म कहते हैं उसी से जीव और जगत की भी सत्ता है । जिसकी नित्यता है, लीला भी उसी की है । इसे ही 'विशिष्टाद्वैतवाद' कहते हैं । अपनी इष्ट देवी 'काली' के सम्बन्ध में वे कहते हैं कि ''जो ब्रह्म है वही काली है । 'काली' आद्या शक्ति हैं, जब वे निष्क्रिय रहती हैं, तब उन्हें ब्रह्म कहते हैं और जब वे सृष्टि, स्थिति और प्रलय करती हैं तब उन्हें शक्ति कहते हैं, काली कहते हैं । ब्रहम और काली अभेद हैं, जैसे अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति अग्नि को सोचते ही उसकी दाहिका शक्ति, अग्नि को सोचते ही उसकी दाहिका शक्ति की चिन्ता की जाती है। काली को मानने पर ब्रह्म को मानना पड़ता है और ब्रह्म को मानने पर काली को । ब्रह्म और शक्ति अभेद है, मैं उन्हें ही 'शक्ति'- 'काली' कहता हूँ ।

ईश्वर के वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध में उनका कहना था कि जो आदमी सदा ही ईश्वर का चिन्तन करता है वही समझ सकता है कि ईश्वर का स्वरूप क्या है ? वही जानता है कि ईश्वर अनेक रूपों में दर्शन देता है । वे सगुण भी है और निर्गुण भी। उस बहुरूपिये के अनेक रंग है और कभी कोई रंग नहीं रहता, दूसरे आदमी तर्क - वितर्क करके केवल कष्ट ही उठाते हैं ।

साधना से समाधि के उच्च्य शिखर पर पहुँच कर अपने स्व में स्थित होने के बाद भी रामकृष्णदेव समाज का बहिष्कार कर एकांन्तवासी या हिमालयगामी नहीं हुये । ब्रह्मनिष्ठ होने के बाद भी उन्होंने समाज एवं मानवीय मूल्यों की उपेक्षा नही की । सामान्य ज्ञानियों की तरह इन्होंने माँ, पत्नी एवं परिवार की कभी भी उपेक्षा नहीं की । साधारण जन की पीड़ा एवं वेदना उन्हें उद्विग्न कर देती थी । जनमानस के दुःख से वे द्रवित हो उठते थे । ऐसे विलक्षण संत थे कि दुर्लभ ब्रहम ज्ञान को प्राप्त करने के बाद भी 'जीव' एवं 'जीवन' के प्रति गहरी सम्वेदना रखते थे ।

'जीव ही शिव है', 'नर ही नारायण है' की विराट चेतना से युक्त होकर वे जन-जन

में ईश्वर का दर्शन करते थे। उनका मानना था कि दीन - हीन एवं गरीब की उपेक्षा करके ईश्वर की प्राप्ति नही की जा सकती। इसकी पुष्टि करते हुये वे कहते हैं,- "गरीब पीड़ित एवं असहाय की सेवा ही ईश्वर की सेवा है। ईश्वर इनके रूप में प्रत्यक्ष विद्यमान है। तुम इसकी सेवा क्यों नहीं करते ?"

संसार के असहायों एवं गरीबों के प्रति रामकृष्ण के मन में जो अगाध प्रेम था उसे इस उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। एक बार वे मथुर बाबू (रानी रासमणि के दामाद जो रामकृष्ण के प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे) के साथ तीर्थ भ्रमण के लिए जा रहे थे। गाड़ी से उतर कर सभी एक गाँव के रास्ते से हो कर वैद्यनाथ शिव के दर्शन करने चले जा रहे थे। रास्ते के दोनों ओर बसे गरीब आदिवासी स्त्री पुरूषों की दशा देख कर श्री रामकृष्ण का मन करुणा से द्रवित हो उठा और उनकी आँखें सजल हो गयीं। वे उन्हीं रूखे बालों, धसे आंखें और दुर्बल नंगी देह वाले निर्धन आदिवसियों के बीच खड़े हो गये और मथुर बाबू से कहा "तुम तो माँ के दीवान हो। माँ के दुखी सन्तानो की दशा देख रहे हो ? पहले तुम इन्हें सिर में लगाने के लिए तेल, एक - एक नयी धोती और भर पेट भोजन का बन्दोबस्त करो।"[१] उन लोगों की संख्या सैकड़ों में थी। अतः पहले तो मथुर बाबू ने कुछ आपत्ति करते हुए कहा - "बाबा ! तीर्थों में बहुत खर्च करना पड़ेगा और यहाँ लोगों की संख्या काफी दिखती है। इन सभी को खिलाने पहनाने के लिए तो बहुत से धन की आवश्यकता होगी। अतः आगे चल कर रुपयों की कमी पड़ सकती है।"[२] इस पर श्री रामकृष्ण ने सजल आँखों से मथुर बाबू को झिड़की देते हुए कहा - "दूर हो जा मूर्ख ! मुझे तेरे काशीधाम नही जाना है। मैं इन्ही लोगों के साथ रहूँगा ! इनका कोई भी नही है। मैं इन्हें छोड़ कर कहीं नहीं जाऊँगा।"[३] और वे दीन संथालों के बीच जा बैठे। हार मान कर मथुर बाबू ने अन्न वस्त्रादि के द्वारा दरिद्र नारायणों की सेवा की व्यवस्था की। भूँखे नंगे लोगो को संतुष्ट और आनन्दित देखने के बाद ही श्री रामकृष्ण वैद्यनाथ से काशीधाम चलने के लिए आगे बढ़े।

रामकृष्ण ने मानव सेवा के इसी उदात्त भाव की ओर अपने शिष्य विवेकानन्द को

---

१. श्री रामकृष्ण : संक्षिप्त जीवनी व उपदेश, पृ० ३९
२. वही,
३. वही,

प्रेरित करते हैं । समाज सेवा का कैसा अनुराग है और कैसे गुरू हैं जो ब्रह्म स्थित रहने की इच्छा रखने वाले शिष्य को धिक्कारते हुए सामाजिक मूल्यों की रक्षा के लिए प्रेरित करते हैं । संसार में सर्वत्र व्याप्त दुःख और क्लेश को देख कर विवेकानन्द का मन वैरागी हो गया । उन्होंने रामकृष्ण देव से कहा- 'गुरुदेव ! मैं शुकदेव की तरह कई - कई दिन तक समाधि में रहना चाहता हू । केवल शरीर रक्षा के लिए कुछ देर नीचे आकर पुनः उसी भाव में चला जाना चाहता हूँ।'' शिष्य के इस स्वकेन्द्रित विचार पर रामकृष्ण ने उन्हें लज्जित करते हुए कहा कि,- ''छिः छिः तू इतना बड़ा आधार है, तेरे मुँह से यह बात! मैने कहाँ सोचा था कि तूँ विशाल वटवृक्ष की भाँति होगा, जिसकी छाँव में हजारों लोग आश्रय पायंगे। पर तू केवल अपनी मुक्ति की बात करता है।''[१] गुरू के मुख से ऐसी ओज पूर्ण वाणी सुनकर विवेकानन्द का मन ग्लानि से भर उठा और उसी क्षण उन्होने जीवन पर्यन्त मानव सेवा का कठोर व्रत धारण कर लिया तथा मृत्यु पर्यन्त इस व्रत का निर्वहन करते रहे। इस तरह रामकृष्ण देव पूर्णतया समाज से जुड़े सन्त थे एवं समाज सेवा को ईश्वर की पूजा के बराबर मानते थे ।

रामकृष्ण देव सभी मनुष्यों में देवत्व की भावना रखते थे । वे किसी भी स्तर पर एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य के बीच भेदभाव को स्वीकार नही करते थे । ऊँच-नीच, भेद-भाव, जाति-पाति एवं छुआ-छूत के वे सर्वथा विरोधी थे । नीच जाति की स्त्री को भिक्षा माता बनाकर उन्होंने व्यावहारिक रूप से इसे जनमानस के समक्ष प्रस्तुत भी किया । रामकृष्ण के जन्म के समय धनी नामक लुहारिन ने प्रसूति गृह में सहायता के बदले उनसे अपनी भिक्षा माता बनाने का अनुरोध किया था । समय आने पर बड़े भाई ने इसका विरोध किया, इस पर रामकृष्ण ने गंभीरता पूर्वक कहा,-''मैं इसे वचन दे चुका हूँ और अपने वचन की रक्षा करूँगा, क्यो कि सत्यभ्रष्ट, मिथ्यावादी व्यक्ति को ब्रह्मणोचित यज्ञोपवीत धारण करने का कोई अधिकार नही है ।''[२] यहाँ हम देखते है कि बचपन से ही उनमे सत्य और नैतिकता का उदात्त भाव विद्यमान था तथा वे जाति व वर्ण व्यवस्था के बन्धनों को नहीं मानते थे ।

बचपन में वे निम्न जाति वालों के घर जाकर बिना किसी भेद भाव के प्रह्लाद

---

१. श्री रामकृष्ण : संक्षिप्त जीवनी व उपदेश, पृ० ७७

२. वही, पृ० ८

चरित', 'ध्रुव चरित' तथा रामायण आदि का पाठ एवं भजन कीर्तन किया करते थे, जिससे सभी जाति व वर्ण के लोग उनके प्रति अगाध प्रेम व सम्मान का भाव रखते थे। छोटी जाति के लोगो के घर ये बिना रोक - टोक के आया जाया करते थे। वे उनके साथ घुल मिल गये थे।

नारी जाति एवं स्त्री समाज के प्रति रामकृष्ण के मन में अगाध प्रेम एवं श्रद्धा का भाव था। उन्होंने कभी भी नारी जाति को हेय व कमजोर दृष्टि से नहीं देखा। अन्य धर्माचार्यों की तरह ये नारी को न तो पतन एवं पाप का कारण मानते हैं और न ही उन्नति एवं प्रगति में बाधक। सभी नारियों में वे जगन्माता का रूप देखते थे। गृहत्याग कर ब्रह्मस्थ होने के बाद भी ये अपनी माँ एवं पत्नी के प्रति अत्यन्त उच्च विचार रखते थे। एक बार रामकृष्ण ने अपनी पत्नी माँ सारदा से कहा था ''तुम्हारे अन्दर मैं सच - मुच सर्वत्र विद्यमान आनन्दमयी माँ के रूप का दर्शन करता हूँ।''

नारी होने परभी 'भैरवी ब्राह्मणी' के प्रति पूरी श्रद्धा रखते हुए उनके अधीन रह कर कई दिनों तक वे साधना में रत रहे एवं उनके अन्दर गुरू भाव का दर्शन करते थे। यह एवं धनी लुहारिन को अपनी भिक्षा माता बनाना नारी जाति के प्रति इनकी अगाध श्रद्धा एवं सम्मान को व्यक्त करना है।

रामकृष्ण देव 'कंचन' (भौतिक पदार्थ) एवं 'कामिनी'(कामना बढ़ाने वाली) को जीवन के उत्थान में, पतन का कारण मानते थे। ये ऐसे दुर्गुण हैं जिससे व्यक्ति अधोगति को प्राप्त होता है। धन - दौलत, यश - वैभव तथा अन्य संसार के पदार्थों में उनका किंचित मात्र भी राग न था। संसार में रह कर भी वे पाँकाल मछली"[१] की तरह सांसारिक कीचड़ से पूर्णतः मुक्त थे। परमार्थ एवं परोपकार उनका संकल्प था। उनका मानना था कि ''मनुष्य के जीवन का ध्येय, धन नहीं होना चाहिए। धन से क्या मिलेगा ? भोजन........वस्त्र और मकान मगर इससे ऊपर की वस्तु धन से नहीं खरीदी जा सकती। इसलिए जीवन का उद्देश्य धन नहीं हो सकता। केवल धन और भौतिकता से मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता।''

रामकृष्ण का मन बचपन से ही सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति के प्रति विरक्त था।

---

१. पाँकाल मछली - 'कीचड़ में रहकर भी कीचड़ के प्रभाव से मुक्त मछली

बाल्यकाल में पढ़ाई में मन न लगाने पर बड़े भाई रामकुमार के रुष्ट होने पर प्रत्युत्तर में रामकृष्ण ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा - ''यह दाल चावल इकठ्ठा करने वाली विद्या सीखने की मेरी कोई इच्छा नहीं है । मैं तो ऐसी विद्या सीखना चाहता हूं जिससे सच्चा ज्ञान मिल सके ।''[१] छोटे भाई के मुँह से ऐसी बातें सुन कर रामकुमार आवाक रह गये विद्या सीखने को यह तो दाल चावल इकट्ठा करने का साधन बतलाता है । समय आने पर इसे समझा लूँगा । ऐसा सोंच कर वे उस समय शांत रह गये । भला उनकी साधारण बुद्धि यह कैसे देख सकती थी कि भविष्य के गर्भ में क्या है ।

विभिन्न धर्मों के साधना के क्रम में रामकृष्ण देव ने अपने शरीर को प्रयोगशाला बना दिया । साधनाओं की अनुभूति परक परीक्षण एवं निरीक्षण के द्वारा जिस नास्तिक ज्ञान को उन्होंने प्राप्त किया उसे सरल सुबोध तथा स्पष्ट भाषा में जन जन को प्रदान करना चाहते थे । किन्तु अनवरत साधना और कठोर तपस्या के कारण उनका शरीर जर्जर हो चुका था जिससे वे अपने ज्ञान का प्रसार करने में अक्षम थे । इसके लिए उन्हें एक योग्य और कर्मठ शिष्य की आवश्यकता थी। कालांतर में इसकी पूर्ति विवेकानन्द के रूप में होने से उनके ज्ञान एवं अनुभव से पूरा विश्व परिचित होकर लाभन्वित हुआ।

रामकृष्ण के विचारों की नीव पर खड़े होकर विवेकानन्द ने सामाजिक एवं धार्मिक मूल्यों की एक ऐसी गगनचुम्बी इमारत बनायी जो पूरे जनमानस की आस्था एवं विश्वास का केन्द्र बन गया । रामकृष्ण के सिद्धांतों की महत्ता भारत में ही नहीं अपितु विदेशो में भी स्थापित करने में विवेकानंद पूर्णतः सफल रहे ।

रामकृष्ण और विवेकानंद की विचारधारा को अलग अलग करके नहीं देखा जा सकता। विवेकानंद के दर्शन और सिद्धांत के मूल में रामकृष्ण देव का ही दर्शन और सिद्धांत विद्यमान है कहीं - कहीं वाह्य कलेवर अवश्य बदल गया है, परन्तु बीज वही है । कहा जाता है कि रामकृष्ण सूत्र हैं तो विवेकानंद उनके भाष्य 'रामकृष्ण गंगोत्री हैं तो विवेकानंद गंगा' विवेकानंद

---

१. श्री रामकृष्ण : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश पृ० ११

रामकृष्ण रूपी गंगा का भागीरथ बन कर उनके विचारों को पूरी अवनि में प्रवाहित करने का पुनीत कार्य किया । 'रामकृण देव एवं 'स्वामी विवेकानंद शरीर से दो होते हुये भी विचार से एक ही हैं। रामकृष्ण की साधना से प्राप्त अनुभूतियों से व्यावहारिक सिद्धांत निकालकर विवेकानंद ने मूलतः अपने गुरू के ही विचारों को अपनी वाणी प्रदान की है । अस्तु हम रामकृष्ण एवं विवेकानंद की भाव धारा को अलग करके नही समझ सकते। आगे हम रामकृष्ण एवं विवेकानंद के विचारों को एक ही भावधारा के रूप में अवलोकन करेंगे ।

भारत एवं विदेशों में अपनी साधुता, स्वदेश भक्ति सम्पूर्ण मानव जाति के आध्यात्मिक उत्थान एवं प्राच्य तथा पाश्चात्य के मध्य भात्रृभाव के सार्वभौमिक सन्देश के लिए विख्यात स्वामी विवेकानंद मूलतः एक ओजस्वी पुरुष थे,जिन्होंने सर्वोच्च सत्य का ज्ञान प्राप्त किया था । यह उनके व्यक्तित्व का एक असाधारण पक्ष था । इसके अतिरिक्त वह एक देशभक्त (साधारण देश भक्तों से भिन्न) संन्यासी थे वे परम्परा से हटकर सक्षम समाज सुधारक भी थे ।

आधुनिक युग के विश्वव्यापी विघटनशील वातावरण में हिन्दू धर्म को आवश्यकता थी एक ऐसे चट्टान की जहाँ वह लंगर डाल सके, आवश्यकता थी एक ऐसी प्रामाणिक वाणी की जिसमें व्यक्ति स्वयं को पहचान सके, विवेकानंद के शब्दों व कार्यों में हिन्दू धर्म को यह वरदान उपलब्ध हो गया।

अपने गुरू श्री रामकृष्ण की अनुभूतियों के परिप्रेक्ष्य में धर्म दर्शन व वेदांत के भव्य सन्देश का प्रचार करना उनके जीवन का उद्देश्य था आगे हम रामकृष्णदेव स्वामी विवेकानंद की भाव धारा का धार्मिक,राष्ट्रीय सामाजिक एवं आर्थिक भागों में बाँट कर अवलोकन करेंगें ।

(क) धार्मिक भाव धाराः—

1. धर्म

विवेकानंद की दृष्टि से धर्म केवल वाह्य आडम्बर, क्रिया कलाप मत व सम्प्रदाय नहीं है अपितु उत्थान, विकास एवं जीवन निर्माण की कुंजी है । वे धर्म को आत्म

साक्षत्कार से जोड़ कर देखते हैं । तद्‌युगीन समाज अपने - अपने धर्म की स्थापना के लिए बल प्रयोग करने से भी नहीं चूक रहा था । प्रत्येक धर्म का अवलम्बी अपने धर्म को श्रेष्ठ एवं दूसरे के धर्म को छोटा सिद्ध करने में लगा था । हिन्दू मुसलमान व ईसाई एक दूसरे पर अपने धर्म को थोपने के नये - नये तरीके ढूँढ़ रहे थे । भारत में भी धार्मिक भाव अनेक मतों एवं पंथों में विखर गया था, जहाँ पाश्चात्य प्रभावित नयी पीढ़ी भारतीय धर्म एवं मूर्ति पूजा के विरोध को ही अपना वौद्धिक विस्तार समझती थी । दूसरी तरफ ईश्वर में विश्वास न करने वाले नास्तिकों की भी एक बड़ी फौज तैयार हो रही थी । इस युग का धार्मिक स्वरूप- सगुण, निर्गुण, द्वैत, अद्वैत आदि विचारों में उलझा हुआ था।

विवेकानन्द समय की आवश्यकता को देखते हुए धर्म की नयी व्याख्या करते हैं, जिसमें नयी पढ़ी लिखी पीढ़ी पुराने बुजुर्ग एवं सभी मत पंथ एवं सम्प्रदाय के लोग अपनी आस्था व्यक्त कर सकें । इस क्रम में उन्होंने सर्वप्रथम अपने गुरू रामकृष्ण की धार्मिक भावधारा को आधार बना कर सभी धर्मों में समन्वय स्थापित करने पर बल दिया । रामकृष्ण ने सभी धर्मों के तत्व को एक बताते हुए कहा था कि,.......''अलग-अलग धर्म व मत तो ईश्वर तक पहुँचने के अलग-अलग रास्ते हैं, जिन पर चल कर अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है ।'' उक्त विचार को विवेकानन्द ने अपने शब्दों में व्यक्त करते हुए कहा कि,- ''मै हिन्दू हूँ । मै अपने क्षुद्र कुएँ में बैठा यही समझता हूँ कि मेरा कुँआ ही सम्पूर्ण संसार है । ईसाई भी अपने क्षद्र कुएं में बैठे हुए यही यमझता है कि सारा संसार उसी के कुएँ में है और मुसलमान भी अपने क्षुद्र कुएं में बैठा हुआ उसी को सारा बह्माण्ड मानता है ।''[१]

पश्चिम की महती सभा में बोलते हुयें उन्होंने कहा कि,- ''यदि एक धर्म सच्चा है, तब निश्चय ही अन्य सभी धर्म सच्चे हैं। अतएवं हिन्दू धर्म उतना ही आपका है जितना मेरा । हम हिन्दू केवल सहिष्णु ही नहीं हैं, हम अन्य धर्मों के साथ- मुसलमानो की मस्जिद में नमाज पढ़कर, पारसियों की अग्नि की उपासना करके तथा ईसाइयों के क्रूस के सम्मुख नतमस्तक होकर उनसे एकात्म हो जाते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि निम्नतम जड़ पूजावाद से लेकर उच्चतम निर्गुण

---

१. विवेकानन्द साहित्य - १ पृ० ६

अद्वैतवाद तक सारे धर्म समान रूप से असीम को समझने और उसका साक्षात्कार करने के निमित्त मानवीय आत्मा के विविध प्रयास हैं।''[१] विवेकानन्द सभी धर्मो में समानता व एकरूपता का दर्शन करते हुए कहते हैं कि,-''यदि कोई ऐसा स्वप्न देखे कि अन्यान्य सारे धर्म नष्ट हो जायेंगे और केवल उसका धर्म ही जीवित रहेगा तो उस पर मै अपने हृदय के अन्तस्थल से दया करता हूँ और उसे स्पष्ट बता देता हूँ कि शीघ्र ही सारे प्रतिरोधों के बावजूद प्रत्येक धर्म की पताका पर यह लिखा रहेगा- 'सहायता करो, लड़ो मत'। 'पर-भाव ग्रहण, न कि पर भाव विनाश', 'समन्वय और शान्ति, न कि मतभेद और कलह।''[२] धर्म के सम्बन्ध में उनकी शिक्षा यह है कि सब के पीछे वही एक है, उसे गॉड, प्रेम, आत्मा, अल्लाह, जिहोवा- चाहे जो कहियें, वह है वही एक जो निम्नतम जन्तु से लेकर उच्चतम् मनुष्य तक सब जीवों को प्राणवान बनाता है।[३]

संसार के सभी धर्मों में एकता व समरसता अतीत से ही चिन्तन का विषय रहा है। सभी धर्म के लोगों ने अपने-अपने धर्मों का व्यापक प्रचार प्रसार किया। शिकागों में जो विश्व धर्म सम्मेलन हुआ था; उसका भी आशय था कि संसार में सर्वोत्तम धर्म कौन सा है? किन्तु उस सम्मेलन में स्वामी जी ने जो विचार रखा उससे सब चमत्कृत हो उठे।

उन्होंने कहा कि - '' धार्मिक एकता कैसे हो इस बात की यहाँ काफी चर्चा हुयी है, परन्तु इस सम्बन्ध में मेरा अपना मत है कि न तो ईसाई को हिन्दू बनना है और न ही हिन्दू को ईसाई। प्रत्येक धर्मावलम्बी का कर्त्तव्य है कि वह अन्य धर्मो का सार अपने भीतर पचा ले और अपनी वैयक्तिकता की पूर्णरूप से रक्षा करते हुए उन नियमों के अनुसार अपना विकास खोजे, जो उसके अपने नियम रहे है। आत्मा की भाषा एक है किन्तु जातियो की भाषा अनेक होती है। धर्म आत्मा की वाणी है। वही वाणी अनेक जातियों की विविध भाषाओं तथा रीति-रिवाजों में अभिव्यक्त हो रही है।''[४] अपने गुरू रामकृष्ण की तरह विवेकानन्द भी धार्मिक एकता व समता के पोषक थे। इस कारण ईसाई व इस्लाम धर्म के प्रति भी उनका दृष्टिकोण उदार था। उन्होंने कहा कि,- ''यह तो कर्म का फल था कि भारत को दूसरी जातियों ने गुलाम बनाया, किन्तु भारत ने भी अपने विजेताओं

---

१. विवेकानन्द साहित्य - १ भूमिका से
२. वही, पृ० २७
३. वही - ४ पृ० २३३
४. युगनायक विवेकानन्द - २

में से प्रत्येक पर सांस्कृतिक विजय प्राप्त की । मुसलमान भी इस प्रक्रिया के अपवाद नहीं हैं ।'' हिन्दू और इस्लाम के समन्वय पर स्वामी विवेकानन्द कहते है - ''हमारी जन्मभूमि का कल्याण तो इसमें है कि इसके दो धर्म, हिन्दुत्व और इस्लाम मिलकर एक हो जायें । वेदान्ती मस्तिष्क और इस्लामी शरीर के संयोग से जो धर्म खड़ा होगा वही भारत की आशा है।''[१] विवेकानन्द का धर्म मानवता का धर्म है। वे कहते हैं ''मै उस धर्म और ईश्वर में विश्वास नही करता जो विधवा के आँसू पोछने या अनाथ को रोटी देने में असमर्थ हो ।'' यहाँ हम देखते है कि उनका धर्म सामाजिक है । समाज की सभी गतिविधियों व विचारधाराओं को वे अपने धर्म मे समाहित कर लेते हैं । इनका धार्मिक बुनावट करोड़ो व्यक्ति के उद्धार, विकास व उन्नति के साँचे में ढला है । वे कहते हैं कि खाली पेट धर्म नही हो सकता, पहले भूखों को रोटी दो, धर्म की बात बाद में होगी ।

शुद्ध बनना व दूसरों की भलाई करना, सभी उपासना पद्धतियों का सार है । जो गरीब, निर्बल और पीड़ित में 'शिव' को देखता है, वही वास्तव में शिव का उपासक है, पर यदि वह केवल मूर्ति में शिव को देखता है तो यह उसकी उपासना का आरम्भ मात्र है । निर्बल व गरीब की सेवा ही विवेकानन्द शिव की पूजा समझते थे । वे मानते थे कि निःस्वार्थता ही धर्म है । एक मनुष्य चाहे रत्नजड़ित सिंहासन पर आसीन हो और सोने के महल में रहता हो परन्तु वह पूर्णरूप से निःस्वार्थ है तो वह ब्रह्म में स्थित है और दूसरा मनुष्य चाहे झोपड़ी में ही रहता हो, चीथड़े ही पहनता हो पर यदि वह स्वार्थी है तो हम कहेंगे कि वह संसार में घोर रूप से लिप्त है । निःस्वार्थता ही धर्म है, परोपकार व सेवा ही धर्म है। जो जितना अधिक निःस्वार्थ है वह उतना ही अधिक आध्यात्मिक, धार्मिक और शिव के समीप है...... और यदि वह स्वार्थी है तो चाहे वह सभी मंदिरो के दर्शन कर लिए हो, चाहे सभी तीर्थो का भ्रमण कर लिया हो............. फिर भी वह धर्म व शिव से बहुत दूर है ।[२]

विवेकानन्द धर्म को शक्ति का मूल समझते थे। उनकी दृष्टि में धर्म की सार बात है ''शक्ति'' । कायर व शक्तिहीन का कोई धर्म नही होता। जो धर्म हृदय में शक्ति संचार न कर दे,

---

१. युगनायक विवेकानन्द - ३
२. विवेक ज्योति, वर्ष - ३१ ,अंक - ३

चाहे वह उपनिषद हो या गीता अथवा भागवत, मै उसे धर्म नही मानता ।[१] सभी धर्मों में विश्वास रखते हुए वे भारत के धर्म को विश्व के सभी धर्मों से श्रेष्ठ मानते है । एक ईसाई के प्रश्न पर कि क्या भारत मृत्यु को प्राप्त होगा ? इस पर स्वामी विवेकानन्द ने कहा,--''तब तो सारी दुनिया से आध्यात्मिकता चली जायेगी । सारी नैतिकता पूर्णतः नष्ट हो जायेगी । धर्म की सभी मधुर सहानुभूति लुप्त हो जायेगी । आर्दश के प्रति सारा प्रेम गायब हो जायेगा और उसके स्थान पर विलासिता तथा कामरूपी देवी-देवता आधिपत्य कर लेंगे । जहाँ धन पुरोहित होगा और छल कपट जोर जबरदस्ती उसके विधि अनुष्ठान होगे तथा मानवता उसकी बलि होगी, पर ऐसा कभी नही हो सकता । सहने की शक्ति कार्य करने की शक्ति से अनन्तगुनी श्रेष्ठ है । प्रेम की शक्ति घृणा की शक्ति से सहस्रगुनी श्रेष्ठ है । इसलिए ये भारत भूमि........ भारत धर्म व भारतीय आर्दश संसार में सबसे श्रेष्ठ हैं , जिसे कभी मिटाया नही जा सकता ।[२]

विवेकानन्द धर्म को वाह्य स्थूल रूप से न देखकर तात्विक दृष्टि से देखत हैं । वे धर्म को उत्थान व मुक्ति से जोड़कर देखते है । धर्म, द्वेष, द्वन्द्व, विघटन नही है अपितु प्रेम, मिलन व प्रगति का द्योतक है। उनका धर्म, व्यक्ति व समाज के उत्थान का पर्याय था। वे कहते हैं - ''दोष धर्म का नही, धर्म के गलत प्रयोग का है।'' इस तरह वे धर्म की वैज्ञानिकता के पक्षधर हैं ।

मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में उनका कहना है --''भारत वर्ष में मूर्ति पूजा कोई जघन्य बात नही है । वह व्यभिचार की जननी नही है, पर न वह अविकसित मन के लिए उच्च आध्यात्मिक भाव को ग्रहण करने का उपाय है । उनके दोष अपने शरीर को उत्पीड़ित करने तक ही सीमित है । वे अपने पड़ोसियों का गला नही काटने जाते । एक हिन्दू धर्मान्ध भले ही चिता पर अपने आप को जला डाले पर वह विधर्मियों को जलाने के लिए 'इन्क्वीजिशन' की अग्नि कभी भी प्रज्ज्वलित नही करेगा ।''[३] (महासभा में स्वागत का उत्तर देते हुये) । यहाँ हम देखते हैकि हिन्दू धर्म की न्यूनताओं को भी विवेकानन्द ने उदत्त भाव बोध से जोड़ दिया, जिसमें हिन्दू धर्म का मानवीय रूप परिलक्षित होता है ।

---

१. युगनायक विवेकानन्द - ३ २९
२. स्वामी विवेकानन्द की वाणी पृ० ८
३. विवेकानन्द साहित्य - १ पृ० १९

विवेकानन्द अपने धर्म गौरव का उद्घोष करते हुए कहते है –" मैं ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति, दोनो की ही शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नही करते, वरन समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं। मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मों और देशों के उत्पीड़ितों और शरणार्थियों को आश्रय दिया है।"[१]

विवेकानन्द धर्म की तात्विक विवेचना करते हुये कहते हैं - " धर्म बात करने की चीज नही है, न वह साम्प्रदायिकता है और न ही मतवाद विशेष। धर्म किसी सम्प्रदाय अथवा संस्था में आवद्ध होकर नही रह सकता। यह तो आत्मा के साथ परमात्मा का सम्बन्ध है।"[२] धर्म के स्थूल और वाह्य तत्वों की आलोचना करते हुये वे कहते हैं - "धिक्कार है उस राष्ट्र को, धिक्कार है उस धर्म को, धिक्कार है उस व्यक्ति को, जो धर्म के सार तत्व को भूल जाता है और अभ्यासवश वाह्य अनुष्ठानों को ही कसकर पकड़े रहता है तथा उन्हें किसी तरह नही छोड़ता।"[३]

विवेकानन्द धार्मिक आडम्बर एवं धर्मान्धिता के सर्वथा विरूद्ध हैं। वे कहते हैं - "अंधविश्वास मनुष्य का महान शत्रु है पर धर्मान्धिता तो उससे भी बढ़ कर है।"[४] धर्म के वाह्य एवं आन्तरिक तत्वों का समन्वय स्थापित कर थोड़े शब्दों में धर्म की मूल बात बताते हुये उन्होंने कहा - "प्रत्येक जीव अव्यक्त ब्रह्म है। वाह्य एवं अन्तर प्रकृति को वशीभूत करके इस अन्तस्थ ब्रह्मभाव को व्यक्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है। कर्म, उपासना, मनःसंयम अथवा ज्ञान इनमे से एक, एक से अधिक या सभी उपायों का सहारा लेकर अपना व्रह्म भाव व्यक्त करो और मुक्त हो जाओ। बस यही धर्म का सर्वस्व है। मत, अनुष्ठान, पद्धति, शास्त्र, मंदिर अथवा अन्य वाह्य क्रिया - कलाप तो उसके गौण अंग प्रत्यगं मात्र हैं।"[५]

रामकृष्ण देव-स्वामी विवेकानन्द की धार्मिक भावधारा समझने के लिए इनके

---

१. विवेकानन्द साहित्य - १ पृ० ३
२. वही, - ७ पृ० २६०
३. वही - ४ पृ० ४१
४. वही - १ पृ० १६
५. विवेक ज्योति वर्ष - ३१, अंक - ३ पृ० १५

दार्शनिक चिन्तन एवं धर्म के व्यावहारिक पक्ष (नववेदान्त) की अवधारणा से अवगत होना अनिवार्य है । अस्तु इसी क्रम में इनके दार्शनिक - चिंतन एवं नववेदान्त की विवेचना की जा रही है -

(२) दर्शन

रामकृष्ण देव के 'आनन्दवाद' एवं विवेकानन्द के 'बुद्धिवाद' के समन्वय से जो दर्शनिक भावधारा प्रवाहित हुयी उसका मूल, लोकमंगल एवं जनकल्याण की भावना में सन्निहित है । रामकृष्ण एवं विवेकानन्द ने दर्शन के गूढ़ एवं शुष्क विषय का सरस एवं सरल रूपान्तरण कर जन मानस के समक्ष उपस्थित किया, जिसका विस्तार साधना से समाज तक फैला है । इससे यह दर्शन आधुनिक जीवन का दर्शन बन गया, जहाँ चिन्तन व गूढ़ विचार के साथ ही साथ व्यावहारिक पक्षों का भी प्रकटीकरण है । विवेकानन्द के दर्शन में प्राचीन एवं मध्यकालीन मानसिकता से उपर उठते हुये आधुनिक युग के सामाजिक, नैतिक, आर्थिक एवं औद्योगिक जीवन की एकता द्वारा आध्यात्मिक एकता के व्यावहारिक चिंतन को क्रियात्मक रूप प्रदान किया जाता है।

ब्रह्मः—

उक्त धार्मिक भावधारा का ब्रह्म जीव, जगत, माया एवं मुक्ति के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषणात्मक विवेचन करने पर,- 'ब्रह्म' सर्वव्यापी और सदैव कल्याणकारी है । जगन्माता ब्रह्म की शक्ति ही, सृजन, पालन और विनाश का कारण है। वह ब्रह्म एक है, सत्य है और हम सब मे ओत प्रोत है ।[1] जीवन - मृत्यु, सुख - दुःख सब में ईश्वर विद्यमान है । प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है ।[2] आत्म दर्शन ही ब्रह्म की प्राप्ति है । ब्रह्म हमारी आत्मा की 'आत्मा' है ।[3] ईश्वर ज्ञेय और अज्ञेय से अनन्त गुना ऊँचा है ।[4] अपने आप में अपने परिवार में और सभी विश्व में, जगत के कण

१. ज्ञानयोग - विवेकानन्द पृ० १०१
२. विवेकानन्द साहित्य -१ पृ० ३४
३. वही - २ पृ० ८८
४. वही, पृ० ८९

- कण में उसी परम पुरुष को देखना ही ईश्वर प्राप्ति का सहज एवं सरल उपाय है। भक्ति, ज्ञान व कर्म के द्वारा अन्तर्निहित ब्रह्म की अनुभूति ही जीव की मुक्तावस्था है।[१]

जीव :

अपने गुरू रामकृष्ण देव की तरह विवेकानन्द भी प्रत्येक जीव को ईश्वर मानते हैं[२] इनके अनुसार जीव ही शिव है और पीड़ित मानवता की सेवा ही ईश्वर पूजा है। मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में विवेकानन्द कहते है कि यदि प्रतिमा की पूजा करनी ही है तो मानव से अच्छी और जागृत प्रतिमा और कौन हो सकती है।[३] ईश्वर और जीव एक है। आत्मा अजर अमर और अविनाशी है, जो सर्व समर्थ, स्वतंत्र, अपराजित एवं विश्व श्रेष्ठ है। समस्त वाह्य जगत उसी (आत्मा) का प्रकाश मात्र है। जीव, मोह - माया और अज्ञान के कारण अपनी शक्ति और मूल स्वरूप को भूल जाता है। अज्ञान के आवरण को भेद कर आत्मसाक्षात्कार करना ही ईश्वर की प्राप्ति है।[४]

जगतः—

ब्रह्म से ही जगत की उत्पत्ति हुयी है। ब्रह्म और जगत के बीच देश, काल और निमित्त का काँच लगा रहता है। नीचे से देखने पर जगत और ऊपर से देखने पर ब्रहृम का स्वरूप दिखायी पड़ता है।[५] जगत ब्रह्म का प्रसार है, अन्तिम दृष्टि से तो जगत भी साक्षात ब्रह्म ही है।[६]

मायाः—

माया जीव का बंधन है जो जीव को भयंकर रूप से चारों ओर से घेरे हुये है।[७]

१. राजनयोग - विवेकानन्द पृ० १२१
२. धर्मतत्व - विवेकानन्द पृ० ६९
३. प्रेमयोग - विवेकानन्द पृ० ५०
४. धर्मविज्ञान - विवेकानन्द पृ० ९५
५. विवेकानन्द साहित्य -२ पृ० ८५ - ८६
६. ज्ञानयोग - विवेकानन्द पृ० २१२
७. विवेकानन्द साहित्य - २ पृ० ५८

श्री रामकृष्ण देव माया को ब्रह्म का अवगुंठन मानते हैं जिसका प्रभु की कृपा से निवारण हो जाता है । माया का तिरस्कार करके स्वयं को महामाया रूप महाशक्ति के प्रति समर्पित होना ही भक्ति है जो उसके ब्रह्म साक्षात्कार में सहायक बनती है ।[१] विवेकानन्द 'माया' को संसार की वस्तु स्थिति का वर्णन मानते हैं ।[२] माया का आवरण हटने से ही सत्य (ईश्वर) का दर्शन होता है ।[३]

मुक्ति :–

सांसारिक मोह माया के भ्रम मे न पड़कर आत्म साक्षात्कार के लिए प्रयत्न कर इसकी प्राप्ति करना ही मुक्ति है ।[४] रामकृष्ण देव के अनुसार मुक्ति का अर्थ है,- ''परिपूर्णता की प्राप्ति या पूर्ण स्वातन्त्रय ।'' एकता की अनुभूति में ही मानव की स्वतंत्रता है और इसीलिये प्रेम, पवित्रता, ईमानदारी, निःस्वार्थता, भक्ति और विनय, मानव जीवन के श्रेष्ठतम उपकरण है । ये मनुष्य के मन को नीलाकाश की तरह मुक्त करते हैं और उसके व्यक्तित्व को हीरे की तरह पारदर्शी और समुज्ज्वल बनाते हैं । यह मुक्ति ही परमात्मा है और इसी की प्राप्ति जीवन का चरम लक्ष्य है । दृढ़ इच्छाशक्ति और गहन आत्मविश्वास के बल पर ही आत्मा को माया के बन्धन से मुक्त किया जा सकता हैं ।[५] विवेकानन्द कहते हैं - ''जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न-भिन्न स्रोतो से निकल कर समुद्र में मिल जाती हैं उसी प्रकार हे प्रभो! भिन्न-भिन्न रूचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे साधे रास्ते से जाने वाले लोग अन्त मे तुझसे ही आकर मिलते हैं ।[६]

ईश्वर की सर्वभौमिकता की विवेचना करते हुये स्वामी विवेकानंद कहते है -''वही - एक ज्योति भिन्न-भिन्न रंग के काँच में भिन्न-भिन्न रूप से प्रकट होती है । समायोजन के लिए इस प्रकार की विविधता आवश्यक है परन्तु प्रत्येक के अन्तस्थल में उसी सत्य का राज्य है। ईश्वर ने अपने कृष्णावतार में कहा है कि प्रत्येक धर्म में मैं मोती की माला में सूत्र की तरह पिरोया हुआ हूँ ।[७+]

---

१. विवेकानन्द साहित्य - २ पृ० ५२
२. वही,
३. भक्तिदायी विचार - विवेकानन्द पृ० ९७
४. ज्ञानयोग - विवेकानन्द पृ० २१२
५. विविध प्रसंग पृ० ९७ - ९८
६. विवेकानन्द - १ पृ० ४
७. विवेकानन्द साहित्य - १ पृ० २० + मयिसर्वमिदं प्रोतं सूत्रेमणिगणइव - गीता ७/७

जीव को उसका मूल स्वरूप बतलाते हुये विवेकानंद कहते हैं कि -''तुम्हे कौन भयभीत कर सकता है ? यदि सैकड़ों सूर्य पृथ्वी पर गिर पड़ें, सैकड़ों चन्द्र चूर- चूर हो जाँय, एक के बाद एक ब्राह्माण्ड विनष्ट होते चले जाँय तो भी तुम्हारे लिये क्या ? पर्वत की भाँति अटल रहो, तुम अविनाशी हो । तुम आत्मा हो, तुम्हीं जगत के ईश्वर हो । कहो - शिवोण्हं ...... शिवोण्हं, मैं पूर्ण सच्चिदानन्द हूँ ।[१] पिंजड़े को तोड़ डालने वाले सिंह की भाँति तुम अपने बन्धन तोड़ कर सदा के लिए मुक्त हो जाओ, तुम्हें किसका भय है ; तुम्हें कौन बाँधकर रख सकता है ? केवल अज्ञान व भय, अन्य कुछ भी तुम्हे बाँध नहीं सकता, तुम शुद्ध चैतन्य स्वरुप हो, नित्यानन्द हो ।[२]

जीव वास्तव में क्या है ? इसका वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि प्रत्येक जीव का चिन्तन होना चाहिए -''मेरी मृत्यु नहीं है, शंका भी नहीं, मेरी कोई जाति नहीं है, न कोई मत ही । मेरे पिता या माता या भ्राता या मित्र या शत्रु भी नहीं हैं । क्यों कि मैं सच्चिदानन्द स्वरूप शिव हूँ । मैं पाप से या पुण्य से, सुख से या द:ुख से बद्ध नहीं हूँ । तीर्थ, ग्रन्थ नियमादि मुझे बन्धन में नहीं डाल सकते । मैं क्षुधा पिपासा से रहित हूँ । यह देंह मेरी नहीं है, न कि मैं देह के अन्तर्गत विकार और अन्धविश्वासों के अधीन हूँ । मैं तो सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ । मै शिव हूँ.....मैं शिव हूँ ।[३]

वे कहते थे कि एक हिन्दू (अन्य धर्मावलम्बियों से भिन्न) धार्मिक उन्नति करके वस्तुतः भ्रम से सत्य की ओर नहीं जाता, वरन सत्य से सत्य की ओर अग्रसर होता है। निम्नतर सत्य से उच्चतर सत्य की ओर जाता है ।[४]

(3) नववेदान्त

विवेकानन्द ने धर्म को, जो गिने चुने प्रबुद्ध त्यागी ऋषियों मुनियों की गुफाओं और आश्रमों तक ही केन्द्रित था, उसे बाहर निकालकर जन-जन तक प्रचारित व प्रसारित कर दिया ।

---

१. विवेकानन्द - १ पृ० १३१
२. वही,
३. वही - २ पृ० १९०
४. वही, - १ भूमिका से

जीवन के यथार्थ सत्य और कठोर धरातल से पलायन कर गुफाओं में नाक-कान दबाकर प्राणायाम करने की परम्परा को विवेकानन्द ने एक झटके में उखाड़ कर फेंक दिया । प्रत्येक व्यक्ति के लिये योगी बनना और समाधि में जाना अनुकर्णीय नहीं है । उन्होंने स्वकेन्द्रित विकास छोडकर 'जनकोन्द्रित उत्थान की भावना पर बल देते हुये कहा कि सबसे पहली पूजा उस विराट की होनी चाहिए जो असंख्य मानव के रूप में तुम्हारे चारों ओर फैले हुए हैं । संसार में जितने भी मनुष्य और जीव जन्तु हैं सभी जागृत ईश्वर हैं परम बह्मम के स्वरूप है और इनसे भी पहले हमें अपने देशवासियों की पूजा करनी चाहिए । आपस में ईर्ष्या द्वेष रखने के बदले झगड़ा और विवाद के बदले तुम परस्पर एक दूसरे की अर्चना करो । हम जानते हैं कि किन कार्यों ने हमारा सर्वनाश किया, परन्तु हमारी आँख नहीं खुलती । ''[१]

विवेकानन्द ने वेदान्त को नये सिरे से परिभाषित करते हुए कहा -''प्रत्येक मनुष्य के अन्दर निहित दिव्य शक्तियों को प्रकट करना ही वेदान्त है - प्रत्येक मनुष्य के अन्दर विद्यमान शक्ति ही ईश्वर है ।'' इस कार्य को पूर्ण करने के लिए उन्होंने कहा -''आध्यात्मिक और व्यावहारिक जीवन के बीच काल्पनिक भेद को मिटा देना चाहिए क्यों कि वेदान्त अखण्ड का उपदेश देता है ।'' इस बात को और स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं -''तुम्हें सदा स्मरण रखना होगा कि वेदान्त का मूल सिद्धांत यह एकत्व अथवा अखण्ड भाव है । द्वित्व कहीं नही है .....एक मात्र जीवन है, एक मात्र जगत है, एक मात्र सत् है । सब कुछ वही सत्ता मात्र है । भेद केवल परिमाण का है, प्रकार का नहीं । हमारे जीवन में अन्तर प्रकार गत नहीं है । वेदान्त, सृष्टि में सभी जीवों-मनुष्य, पशु, कीट को पूर्णतः एक मानता है, वह नही मानता कि पशु व अन्य जीव मनुष्य से भिन्न व मनुष्य के भोज्य पदार्थ हैं ।''[२] वेदान्त का यही विस्तार और उसको मानव के साथ प्रत्यक्ष रूप दे देना ही नववेदान्त है, जिससे यह सभी के लिए सरल, अपना व व्यावहारिक हो गया ।

विवेकानन्द का 'नववेदान्त' सभी में देवत्त की संकल्पना से ओत - प्रोत था । ईसाई धर्म प्रचारकों द्वारा सभी मनुष्यों को पापी कहने पर, इसका घोर प्रतिकार करते हुए वे कहते हैं, –''अमृत के पुत्रों तुम अमृत के अधिकारी हो, हिन्दू धर्म तुम्हे पापी कहने से इंकार करता

---

१. विवेकानन्द - १ पृ० १३१

२. वही,

है । तुम तो ईश्वर की सन्तान हो - मृत्यु लोक के देवता हो - तुम और पापी? मनुष्य को पापी कहना ही महा पाप है। मानव यथार्थ स्वरूप पर यह घोर लांछन है । उठो सिंहो ! आओ और इस मिथ्या भ्रम को झटक कर दूर कर दो कि तुम भेड़ हो; तुम हो अजर आत्मा, मुक्त आत्मा, नित्य आनन्दमय हो । तुम जड़ नहीं हो, जड़ तो तुम्हारा दास है, तुम जड़ के दास नही ।''

प्रत्येक जीव एवं मानव मात्र के प्रति विवेकानन्द के मन में अतिशय प्रेम व समर्पण भाव था । एक बार बंगाल में प्लेग फेलने पर असंख्य लोग काल कवलित हो गये । अपनी मातृभूमि की यह स्थिति देखकर विवेकानन्द ने जन - मानस का भय दूर करने के लिए एक घोषणा पत्र तैयार करवाया कि रामकृष्ण मिशन जन-गण के साथ खड़ा होकर उनकी सेवा में खुले दिल से धन तथा सामर्थ्य का उपयोग करेगा । एक गुरु भ्राता के प्रश्न पर कि इतने रूपये कहाँ से आयेंगे तो उत्तर में विवेकानन्द ने कहा -''आवश्यकता हुयी तो मठ की नयी जमीन बेच डालूँगा । हम लोग तो ठहरे फकीर--मुष्ठ भिक्षा लेकर पेड़ों के नीचे सोएँगे । यदि जमीन बेचकर पचास हजार लोगों की जान बचायी जा सके तो कैसा मठ ? कैसी जमीन? जिस मठ की स्थापना के लिए स्वामी जी चिरकाल से स्वप्न देखते आ रहे थे और प्राणान्तक परिश्रम किये थे - फिर भी मानवता की सेवा हेतु उन्होंने इसे बेचने तक का फैसला कर लिया ।[१] यहाँ हम देखते है कि मानव हित व जन सेवा ही उनका धर्म व दर्शन था ।

दीन - दुःखी गरीब व असहाय की सेवा विवेकानन्द का प्रधान लक्ष्य था । वे कहते हैं -''भारत में धन का आभाव नही है, अभाव है अन्न तथा व्यावहारिक सत्य का ।'' गरीबी को वे घोर अभिशाप समझते थे । एक बार अमेरिका प्रवास के दौरान वे जमीन पर लेटकर रो-रो कर कहने लगे -''माँ ! मैं इस नाम, यश को लेकर क्या करूँ,जब कि मेरे देशवासी घोर निर्धनता में डूबे हैं । हम गरीब भारतवासी ऐसी बुरी हालत तक पहुँच गये हैं कि मुट्ठी भर अन्न के अभाव में वहाँ लाखों लोग प्राण त्याग देते हैं और यहाँ (अमेरिका) के लोग अपने व्यक्तिगत सुख के लिए लाखों डालर खर्च करते हैं । भारत की जनता को कौन उठायेगा? कौन उनके मुँह में अन्न देगा ? मै उन सब की किस प्रकार सेवा कर सकूं ?''- इस तरह के विचार उन्हें ब्यग्र कर देते थे।

---

१. युगनायक विवेकानन्द - ३ पृ० ९१

वे रोटी को धर्म से ऊपर मानते थे। उनका कहना था कि यदि पड़ोसी भूखा हो तो मन्दिर में प्रसाद चढ़ाना ईश्वर का अनादर है। भारत का प्रधान अभाव 'धर्म' नहीं 'रोटी' है। यहाँ के (भारत के)कोटि-कोटि क्षुधार्थ नर-नारी शुष्क कण्ठ से रोटी - रोटी चिल्ला रहे हैं और बदले में हम उन्हें देते हैं'पत्थर'। भूखे लोगों को धर्म का उपदेश देना या दर्शन शास्त्र सिखाना उनका अपमान करना है ।

देश भर में फैले अकाल एवं उसे दूर करने की अपनी सीमाओं के कारण उनका मन अत्यन्त विसाद ग्रस्त था, इसी समय उत्तर भारत के एक लब्धख्याति पण्डित स्वामी जी से वेदान्त पर विचार करने के लिए आये तो, स्वामी विवेकानन्द ने उनसे कहा -"वेदान्त धर्म का सार तत्व यही है कि अन्नाभाव से मृतप्राय लोगो की प्राण रक्षा के लिए अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर देना । देश में जो सर्वत्र हाहाकार मचा है, पहले उसके निवारणार्थ, एक मुट्ठी अन्न के लिए स्वदेशवासियों के आर्तनाद बन्द करने के लिए प्रयास कीजिए - तत्पश्चात मेरे पास वेदान्त पर विचार करने आइयेगा ।"[१]

दीन - हीन की सेवा के सम्बन्ध में वे कहते हैं -"दाता या उद्धारकर्ता के रूप में नही अपितु सेवक के रूप में अन्न, वस्त्र, विद्या व ज्ञान लेकर जन साधारण के बीच में श्रद्धा के साथ कर्म करने के लिए दृढ़ हृदय, कर्मियों की आवश्यकता है "[२] भारत के दरिद्र व पतितों के उद्धार के प्रति भी वे पूर्ण रूपेण समर्पित हैं; वे कहते हैं -"भारत के दरिद्र, भारत के पतित, भारत के पापियों की सहायता करने वाला कोई मित्र नही है । इनकी सेवा के लिए चरित्रवान, हृदयवान व बुद्धिमान युवकों की आवश्यकता है ।"[३]

पाश्चात्य देशों के द्वारा भारत के दीन व दलित की उपेक्षा करके यहाँ ईसाई धर्म के प्रचारकों को भेजने पर स्वामी जी उन्हे धिक्कारते हुये कहते हैं - "आप ईसाई लोग मूर्ति पूजकों की आत्मा का उद्धार करने के निमित्त अपने धर्मप्रचारकों को भेंजने के लिए इतने उत्सुक रहते हैं परन्तु उनके शरीर को भूँख से मर जाने से बचाने के लिए कुछ क्यों नहीं करते ? भारत में जब भयानक

१. युगनायक विवेकानन्द - ३ पृ० १७२
२. विवेकानन्द चरित पृ० ३३७
३. वही

अकाल पड़ा तो सहस्रो और लाखों हिन्दू क्षुधा से पीड़ित होकर मर गये पर आप ईसाईयों ने उनके लिए कुछ नही किया।''[१] इस लिए उन्होंने नारा दिया कि दुर्बलों की सहायता पहले करो, क्यो कि उनको हर प्रकार के प्रतिदान की आवश्यकता है।[२]

मानव मात्र के प्रति उनके मन में कितना प्रेम व श्रद्धा का भाव था इसे एक उदाहरण द्वारा देखा जा सकता है - एक बार गोरक्षण सभा के एक उद्यमी प्रचारक से गो रक्षा पर वार्ता करते हुए स्वामी जी ने उनसे पूछा -''मध्य भारत में इस वर्ष भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा है। भारत सरकार ने घोषित किया है कि नौ लाख लोग अन्न कष्ट से मर गए है। क्या आपकी सभा ने इस दुर्भिक्ष में कोई सहायता करने का आयोजन किया है?'' इसके जवाब में प्रचारक ने कहा,–''हम दुर्भिक्षादि में कुछ सहायता नही करते। केवल गो माता की रक्षा करने के उद्देश्य से ही यह सभा स्थापित हुयी है।'' प्रचारक की बात सुनते ही स्वामी जी के क्रोध की ज्वाला भड़क उठी और उन्होंने कहा,–''जो सभा - समिति मनुष्यों से सहानुभूति नही रखती, अपने भाइयों को बिना अन्न मरते देख कर भी उनके रक्षा के निमित्त एक मुट्ठी अन्न की सहायता न दे, पर पशु - पक्षियों की निमित्त हजारो रुपये व्यय कर रही है, उस सभा - समिति से मैं लेशमात्र भी सहानुभूति नहीं रखता। उससे मनुष्य समाज का विशेष कुछ उपकार होगा, इसमे मुझे विश्वास नही। सबसे पहले मनुष्य की रक्षा आवश्यक है- उन्हे अन्नदान, धर्मदान, विद्यादान करना पड़ेगा।''[३]

जन-जन के दुख व पीड़ा को दूर करने के लिए वे अपना सब कुछ उत्सर्ग करने के लिए तत्पर रहते थे, वे कहते हैं - ''यदि जाति का दुख दूर करने के लिए मुझें सहस्रों बार जन्म लेना पड़े तो भी मै तैयार हूँ। इससे यदि किसी का तनिक भी दुख दूर हो तो मै वह करूँगा।''[४]

विवेकानन्द अपने मानवीय दर्शन को स्पष्ट करते हुए कहते है,- '' उपनिषदों का उपदेश है कि सभी आत्मा एक है क्यो कि वे सब एक ही परम ब्रह्म के असंख्य प्रतिबिम्ब मात्र हैं। जिसे सब परम ब्रह्म कहते हैं, वह सभी जीवों के योग से अधिक कुछ नही है, अतः सच्ची

---

१. विवेकानन्द साहित्य - १ पृ० २२
२. वही - ५ पृ० ८९
३. वही - ६ पृ० ११ - १२
४. वही, पृ० ५६

ईशोपासना यह है कि हम अपने मानव बन्धुओं की सेवा में अपने आप को लगा दें । जब मनुष्य दुर्वल तथा क्षीण हो तब हवन में घृत जलाना अमानुषिक कर्म है ।'' स्वामीजी नर में नारायण के उदात्त भाव से ओत - प्रोत थे । जागृत मनुष्य ही ईश्वर है, इसकी पूजा ही ईश्वर की पूजा है ।

विवेकानन्द अगणित नर नारियों के उत्थान व मुक्ति के लिए ईश्वर के विरुद्ध भी संघर्ष का उद्घोष करने से पीछे नही हटते वे कहते है -'' परलोक में आनन्द के बहाने इसी लोक में रोटी से वंचित रखने वाला, विधवा व दुखियों के आँसू पोछने में असमर्थ, मा ँ- बाप से विहीन बच्चों के मुख मे रोटी का टुकड़ा न देने वाला ----- अगर ईश्वर है तो मेरे जीवन का परम ध्येय उस ईश्वर के विरूद्ध संघर्ष करना है ।''[१]

समाज के तिस्कृत व निम्न वर्ग के प्रति भी उनके मन में समान रूप से प्रेम था । एक बार 'केष्टा' नामक संथाल को अपना भोजन समर्पित कर उन्होने कहा - '' तुम साक्षात नारायण हो । आज मुझे संतोष है कि भगवान ने मेरे समक्ष भोजन किया ।'' क्योकि उनका सिद्वान्त था वास्तविक शिव की पूजा निर्धन व दरिद्र की पूजा है — रोगी व कमजोर की पूजा है। तुम इन्ही कमजोर व भूँखों में अपने शिव का दर्शन करो ।''[२]

(ख) राष्ट्रीय –

(1) राष्ट्रीय चेतना व देश भक्ति

विवेकानन्द उच्च कोटि के धार्मिक, दार्शनिक होने के साथ साथ महान देश भक्त भी थे। राष्ट्रीय गौरव एवं राष्ट्र भक्ति का भाव उनमे कूट-कूट कर भरा था। देश की दयनीय अवस्था देख कर वे द्रवित हो जाते थे। राष्ट्र को दयनीय स्थित से ऊपर उठाने के लिए उन्होने पूरे देश में भ्रमण कर अपने ओजस्वी भाषणों के द्वारा देशवासियों को जगाने का कार्य किया । वे भारत को

---

१. युगनायक विवेकानन्द - ३
२. वही

निर्जिव भूमि नहीं, अपितु सजीव चेतना के रूप में देखते थे। देश की वर्तमान स्थिति एवं उससे मुक्ति के लिए व्यावहारिक नेता की तरह विवेकानन्द भारतीयों की चारित्रिक कमी की ओर संकेत करते हुए कहते हैं -"हमारे देशवासियों में जब कोई व्यक्ति ऊपर उठने की चेष्टा करता है तो हम सब लोग उसे नीचे घसीटना चाहते हैं, किन्तु जब कोई विदेशी आकर हमे ठोकर मारता है तो हम उसे बिना विरोध के स्वीकार कर लेते हैं। हमें ऐसी हीनता व तुच्छता की आदत पड़ गयी है।... अब गुलामों को मालिक बनना है, इसलिये दास भावना को छोड़ना होगा।"

राष्ट्र की तात्कालिक आवश्यकता को समझते हुए वे कहते हैं - "अगले पचास वर्षों तक भारत माता को छोड कर हमें और किसी का ध्यान नही करना है। भारत माँ को छोड़ कर अन्य सभी देवी देवता झूँठे है। उन्हें अपने मन से निकाल कर समुद्र में विसर्जित कर दो, जब तक भारत माँ परतंत्र है तब तक अन्य किसी देवता की पूजा वेइमानी है, भारत माता ही हमारी वास्तविक देवी है। सर्वत्र उसके हाँथ दिखायी पड़ रहे है, सर्वत्र उसके पाँव विराजमान है। सर्वत्र उसके कान है और सभी दिशाओं में उसकी आँखें हैं। प्रत्येक भाग पर उसी देवी की छाया है। बाकी सभी देवता नीद में हैं। यह विराट देवी हमारे समक्ष प्रत्यक्ष विराजमान है, इसे छोड़कर और किस देवता की प्रार्थना करोगे ?"[१] उक्त कथन के द्वारा हम देखते हैं कि एक पूर्णरूपेण धार्मिक व्यक्ति जो धर्म की उच्च अनुभूतियों से ओत प्रोत हो, उसके द्वारा देवी - देवताओं को समुद्र में विसर्जित करने की बात, उदात्त देश भक्ति के कारण ही है, जिसे युगीन सन्दर्भ से जोड़कर देखना सुखद आश्चर्य है। उक्त कथन किसी विशुद्ध राजनैतिक के मुँह से निकले तो सहज लगता है, परन्तु धर्म में स्थित, धर्म परायण व्यक्ति जब देश को देवी और अन्य को बकवास कहे तो इससे उनका अनन्य राष्ट्र प्रेम सहज ही परिलक्षित होता है।

देश के स्वाभिमान व संस्कृति की उन्नति के प्रति वे सतत् प्रयत्नशील थे। वे भारत के लोगों में वीरता, निर्भयता त्याग और बलिदान की भावना जागृत करने हेतू रुद्र, शिव और महाकाली को अपना अराध्य बनाने के लिए प्रेरित करते थे। स्वामी जी के शान्ति अंहिसा और वैराग्य में भी 'क्षात्र धर्म' का स्पर्श था। जिस विचार, धर्म भावना व दर्शन से कायरता की वृद्धि व

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ५ पृ० १९३

पौरुष का दलन होता था उसके वे घोर विरोधी थे, इसलिए बुद्ध व महावीर की अंहिसा की इन्होंने कभी प्रशंसा नही की । वे कहते थे - ''बुद्ध की शिक्षाओ के पीछे भयानक कायरता व दुर्बलता की छाया विद्यमान है ।''

देश के लोगों से वैचारिक मतभेद दूर कर राष्ट्र के निर्माण में योगदान का आवाहन करते हुए वे कहते हैं -''अथर्ववेद में एक मंत्र है - मन से एक बनो, विचार से एक बनो ।'' एकता का महत्व स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा प्राचीन काल में देवताओं का मन एक हुआ, तभी से वे नैवेद्य के अधिकारी रहे हैं । मनुष्य देवताओं की अर्चना इस लिए करते हैं कि देवताओं का मन एक है। मन से एक होना राष्ट्रीय एकता का सार है । यदि तुम द्रविण, आर्य, ब्रहमण और शूद्र जैसे तुक्ष विचारों में पड़कर झगड़ते रहोगे तो तुम्हारी शक्ति क्षीण होती जायेगी । तुम्हारा संकल्प एकता से दूर हो जायेगा । स्मरण रखो कि शक्ति संचय और संकल्प की एकता, इन्हीं पर मानव का भविष्य निर्भर करता है। जब तक महान कार्य के लिए तुम अपनी शक्तियों का संचय नही करोगे जब तक एक मन हो कर देशोद्धार के कार्य में नहीं लगोगे तब तक तुम्हारा कल्याण नही है ।'' आगे वे कहते हैं - ''स्मरण रखो ! शक्ति संचय और संकल्प की एकता पर ही भारत का भविष्य निर्भर करता है । प्रत्येक चीनी अपने ही ढंग से सोचता है, किन्तु मुट्ठी भर जापानियों का मन एक है । इसके जो परिणाम निकलते हैं, उसे तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो । (तत्कालीन परिस्थति में जापान द्वारा चीन की पराजय होने पर) विश्व इतिहास में यही होता आ रहा है ।''

देश की दयनीय अवस्था का वर्णन करते हुये वे कहते हैं -''हमारे देश के लोगों में न विचार, है न गुण ग्राहकता; इसके विपरीत एक सहस्र वर्ष के दासत्व के स्वाभाविक परिणाम, उनमें भीषण ईर्ष्या तथा संदेहशीलता भर गयी है, जिसके कारण वे प्रत्येक नये विचार का विरोध करते हैं ।''[१] वे देश को प्राचीनता से नवीनता की ओर ले जाने के लिए प्रयत्नशील थे एवं राष्ट्र के उत्थान एवं विकास के लिए तीन बातें ध्यान में रखना आवश्यक है - सदाचार व शक्ति में विश्वास, ईर्ष्या एवं संदेह का परित्याग, जो सत् बनाने या सत्कर्म करने के लिये यत्नवान हो उसकी सहायता करना ।[२]

१. विवेकज्योति - वर्ष - ३१, अंक

२. वही,

भारतीय राष्ट्र एवं धर्म का प्रभुत्व सम्पूर्ण विश्व में स्थापित करने तथा भारतवासियों में निहित संकीर्णता एवं हीनता को दूर करने के लिए उन्होंने प्रत्येक देशवासी को आत्मबल, आत्मविश्वास एवं आत्मगौरव का बोध कराकर उच्च शिखर पर पहुँचाने का प्रयास किया। अपने गुरुभाई से भक्ति एवं मुक्ति पर चर्चा करते हुए वे कहते हैं - ''तुम लोग जिसे भक्ति कहते हो, वह एक भयानक मूर्खता है, जो मनुष्य को केवल दुर्बल बनाती है, यह एक बात तुम लोग समझ नहीं पाते। जाने दो कौन तुम्हारे रामकृष्ण की परवाह करता है ? किसे यह जानने की चाह है कि तुम्हारे शास्त्रों में क्या लिखा है? यदि मैं अपने देशवासियों को जड़ता के कूप से निकाल कर मनुष्य बना सका, यदि उन्हे कर्मयोग के आदर्श में अनुप्राणित कर जगा सका तो मै हँसते हुये हजारों नरक में जाने को तैयार हूँ। मैं तुम्हारे रामकृष्ण - वामकृष्ण किसी की भी बातें नहीं सुनना चाहता, जो मेरे उद्देश्य के अनुसार कार्य करना चाहता है, मैं उसी की बात सुनूँगा। मैं रामकृष्ण या किसी अन्य का गुलाम नहीं हूँ, गुलाम हूँ तो केवल उसी का, जो अपनी भक्ति - मुक्ति की चिन्ता न कर, दूसरों की सेवा करने को प्रस्तुत हो''[१] बाद में वे अपने भाव को ज्ञान की जंजीरों से बँधे होने की बात करते हैं, क्योंकि मातृभूमि के प्रति अपने कर्तब्य का उन्हें बोध है। इस तरह हम देखते हैं कि उनके मन में अपने देशवासियों के प्रति कितना अगाध प्रेम था।

भारतीय राष्ट्र के पतन के कारणों की व्याखा करते हुए वे कहते हैं - ''भारत के बड़े जनसमुदाय की उपेक्षा ही यहाँ के पतन का कारण है। जाति व वर्ग के कारण पिसे हुये बहुसंख्यक वर्ग की देश के नवनिर्माण में कोई उल्लेखनीय साझेदारी न होने के कारण सम्पूर्णतः राष्ट्रीय चेतना का प्रसार न होना, विवेकानन्द की दृष्टि से पतन का एक महत्वपूर्ण कारण है। सीमित व संकुचित रहकर अपने आप में ही सन्तुष्ट रहना सबसे बड़ी कमजोरी है। वे कहते हैं - ''मेरे विचार से हमारे राष्ट्रीय पतन का असली कारण यह है कि, हम दूसरे राष्ट्रों से नही मिलते-जुलते, यही हमारे पिछड़े होने का कारण है। हमें कभी दूसरों के अनुभवों के साथ अपने अनुभव को मिलाने का अवसर नही प्राप्त हुआ। हम कूप- मंडूक बने रहे।''[२]

अन्धानुकरण की प्रवृत्ति का भी विरोध करते हुए वे कहते है,- ''ऐ भारत! क्या दूसरो की हाँ में हाँ मिलाकर, दूसरे की ही नकल कर परमुखापेक्षी होकर, इन दासो की सी दुर्बलता,

---

१. युगनायक विवेकानन्द - ३ पृ० १४
२. विवेकानन्द साहित्य - ४ पृ० २५८ - २५९

इस घृणित निष्ठुरता से ही तुम बड़े-बड़े अधिकार प्राप्त करोगें?'' भारतवासियों को अपने आदर्श से भ्रष्ट होकर पाश्चात्य संस्कृति की ओर दौड़ने पर विवेकानन्द सावधान करते हैं, और कहते हैं,- ''हे भारत ! यह परानुवाद, परानुकरण, परमुखापेक्षा, यह दास सुलभ दुर्बलता, यह घृणित जघन्य निष्ठुरता क्या मात्र इन्हीं का आश्रय लेकर तुम उच्चाधिकार प्राप्त करोगे? इस लज्जा जनक कापुरुषता की सहायता से तुम वीर भोग्य स्वाधीनता अर्जित करोगे ?''

भारत के लोगों को उनकी वास्तविक स्थिति का बोध कराते हुए वे कहते हैं - ''हे भारत ! मत भूलना की तुम्हारी नारी जाति का आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती है, मत भूलना कि तुम्हारे उपास्य सर्वत्यागी उमानाथ शंकर हैं, मत भूलना कि तुम्हारा विवाह, तुम्हारा धन, तुम्हारा जीवन, इन्द्रिय सुख, अपने व्यक्तिगत सुख के लिए नही है; मत भूलना कि तुम जन्म से ही माता के लिए बलिदान स्वरूप रखे गये हो, मत भूलना की तुम्हारा समाज उस विराट महामाया की छाया मात्र है, मत भूलना कि निम्न जाति, मूर्ख, निर्धन, अपढ़, मोची, मेहतर तुम्हारे रक्त हैं, तुम्हारे भाई हैं। हे वीर ! साहस का अवलम्बन करो, गर्व से कहो - मै भारतवासी हूँ - सभी भारतवासी मेरे भाई हैं। कहो मूर्ख भारतवासी, गरीब भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी मेरे भाई हैं, तुम भी केवल कटि मात्र वस्त्रावृत होकर गर्व से पुकार कर कहो – भारतवासी मेरे भाई हैं भारत वासी मेरे प्राण हैं भारत के जागृत देवी - देवता मेरे ईश्वर है, भारत का समाज मेरी शिशु शैया, मेरे यौवन का उपवन तथा मेरे वार्धक्य का वाराणसी है। कहो भाई भारत की मिट्‌टी मेरा स्वर्ग है भारत का कल्याण ही मेरा कल्याण है। रात - दिन यही कहते रहो – हे गौरीनाथ, हे जगदम्बे मुझे मनुष्यता दो। माँ, मेरी दुर्बलता, कापुरुषता दूर करो, मुझे मनुष्य बना दो।''[१] यहाँ हम विवेकानन्द के उदात्त राष्ट्रप्रेम, एवं देश के सभी वर्गों के प्रति समान रूप से उत्थान व विकास की भावना का सहज ही अनुमान लगा सकते है। विवेकानन्द अपने राष्ट्रीय आदर्शों की पाश्चात्य देशो से तुलना करते हुए कहते है - ''वहाँ पाश्चात्य देश वाले इस बात की चेष्टा मे लगे हैं कि मनुष्य अधिक से अधिक कितना वैभव सग्रह कर सकता है और यहाँ हम इस बात का प्रयास करते हैं कि कम से कम कितने में हमारा काम चल सकता है। क्या कारण है कि एक राष्ट्र जीवित रहता है और दूसरा नष्ट हो जाता है? - जीवन संग्राम में घृणा टिक सकती है अथवा प्रेम? - भोग विलास चिर स्थाई है

---

१. युगनायक विवेकानन्द - ३ पृ० १७५

अथवा त्याग? - भौतिकता टिक सकती है अथवा आध्यात्मिकता?''[१] हम कह सकते हैं कि यहाँ का आदर्श - प्रेम, त्याग व आध्यात्मिकता है, इसलिए यहाँ की संस्कृति अक्षुण्ण है।

देश की वर्तमान स्थिति पर वे कहते हैं - ''यह सनातन धर्म का देश है, यह गिर अवश्य गया है परन्तु निश्चय ही फिर उठेगा; और ऐसा उठेगा की दुनिया देख कर दंग रह जायेगी। तुमने देखा है न, नदी या समुद्र में लहरें जितनी ही नीचे उतरती हैं उसके बाद उतनी ही जोर से उपर उठती हैं।''[२]

हम भौतिकता में भले ही कम उन्नति कर पाये हो परन्तु ज्ञान व चरित्र में पूरे विश्व में हमारे जैसा कोई देश नही है। इसकी व्याख्या करते हुए विवेकानन्द कहते है ''हम (भारतीय) अत्यन्त दरिद्र है और भले ही हमारी जनता को पार्थिव वस्तुओ के बारे में बहुत कम ज्ञान है परन्तु हमारे जन बहुत अच्छे हैं, क्योकि यहाँ दरिद्र होना अपराध नही है। हमारी जनता हिंसक नही है। अमेरिका व इग्लैण्ड में मैं कई बार केवल अपनी 'वेश - भूषा' के कारण भीड़ों द्वारा आक्रान्त किया गया हूँ, पर भारत मे मैने ऐसी बात कभी नही सुनी कि भीड़ किसी मनुष्य की वेशभूषा के कारण उसके पीछे पड़ गयी हो।''[३] देशवासियों को राष्ट्र भक्ति की प्रेरणा हुये वे जापानियों के देशप्रेम की प्रशंसा करते है,– ''जापानी अपने देश के लिए सब कुछ बलिदान करने के लिए तैयार रहते हैं, जिससे वे महान राष्ट्र भक्त बन गये हैं। संसार ने कभी जापानियों के समान देश भक्त और कला प्रिय जाति नही देखी और वे भारत को सदैव महान देश के रूप में देखते रहे हैं। जापानी समझता है कि हिन्दू की प्रत्येक वस्तु महान है और विश्वास करते हैं कि भारत एक पवित्र भूमि है।''[४] वे अंग्रेजो की आलोचना करने से भी नहीं चूकते और उन्हे चेतावनी देते हुये कहते हैं – ''भले ही तुम ईश्वर के प्रतिशोध में विश्वास न करो पर इतिहास का प्रतिशोध तो तुम्हे मानना ही पड़ेगा और अंग्रेजों के उपर यह प्रतिशोध आयेगा ही। वे हमारी गरदन पर सवार है और अपने सुखोपभोगों के लिए उन्होंने हमारे रक्त की अन्तिम बूँद तक चूस लिया है.......वे हमारी करोड़ों की सम्पत्ति हरण करके ले जा रहे है जब की गाँव-गाँव में हमारी जनता भूखो मर रही है। अब उन

---

१. विवेकज्योति - वर्ष - ३१, अंक - ३ पृ० ११
२. वही,
३. विवेकानन्द साहित्य - ४ पृ० २५२
४. वही, पृ० २४९

पर प्रतिशोध की बौछार होगी और यह न्याय संगत ही होगा।''[१]

शिक्षा व संगठन के अभाव को स्वामी विवेकानन्द राष्ट्रीय अवनति से जोड़ कर देखते है। गुलामी को एकता के अभाव का कारण मानते हुए वे कहते हैं, ''हम गुलाम इस लिए हुये है कि हम संघ बद्ध राष्ट्र नही है ।'' 'शिक्षा' शब्द को भी वे पूर्ण महत्व देते हुये इसे अधिकांश समस्याओं को हल करने की कुंजी मानते थे ।

भारतीयों को निराशा व हताशा से बाहर निकाल कर राष्ट्र निर्माण की मुख्य धारा में जोड़ने के लिए वे कहते हैं, -- ''तुम्हारे देश को वीरों की आवश्यकता है । अतः सदैव वीर बनो । पर्वत की भाँति निश्चल बने रहो। 'सत्यमेव जयते' सत्य की सदैव विजय होती है । भारत वर्ष एक ऐसी नयी विद्युत शक्ति को चाहता है जो राष्ट्र की नस नस में जन जीवन का संचार कर दे।''[२]

स्वामी जी देश की प्रगति एवं विकास के प्रति पूर्णतः आशावादी थे। उन्हे ज्ञात था कि इस देश को अत्यधिक दिनों तक गुलाम बना कर एवं दबा कर नही रखा जा सकता । भारत में एक सुखद सूर्योदय की कल्पना उन्हे आनन्दित कर रही थी । उस दिन के बारे में वे सोचते थे कि ''लम्बी रात समाप्त होती सी लग रही है । महादुःख का प्रायः अंत सा होता प्रतीत हो रहा है। महा निद्रा में निमग्न सब मानव अब जाग रहा है । इतिहास की बात तो दूर किवदन्तियाँ भी जिस सुदूर अतीत के घनान्धकार को भेदने में असमर्थ है वहीं से एक अपूर्व आवाज उठ रही है । ज्ञान भक्ति एवं कर्म के विराट हिमालय स्वरूप हमारी मातृभूमि भारत की हर चोटी से प्रतिध्वनित होती हुयी यह आवाज मृदु परन्तु दृढ़ स्वर में हमारे कानो में आ रही है । दिन पर दिन यह और भी स्पष्ट और गंभीर होती जा रही है। जो अन्धे वो देख नही सकते जो पागल है समझ नही सकते हमारी यह मातृभूमि गहरी निद्रा को त्याग कर जागृत हो रही है। अब कोई भी इसकी गति को रोक नही सकता। अब कोई विदेशी शक्ति इसे दबा कर नही रख सकती क्यों कि यह असाधारण शक्ति अब अपने पैरो पर खड़ी हो रही है। अतीत तो हमारा गौरवमय था ही परन्तु मेरा हार्दिक विश्वास है कि भविष्य और भी गौरवमय होगा ।''[३] और हम देखते हैं कि स्वामी जी का देखा हुआ यह स्वप्न कुछ समय बाद ही सकार हो गया ।

---

१. विवेकज्योति

२. योद्धा संन्यासी विवेकानन्द

३. विवेकज्योति - वर्ष ३१, अंक - ३, पृ० ९

राष्ट्रीय हित के लिए सभी प्रकार की न्यूनता व संकीर्णता का त्याग करने का आवाहन करते हुये स्वामीजी कहते हैं, ''तेरे मेरे समान कितने ही कीट प्रति दिन जन्म ले रहे हैं और मर रहे हैं। इससे दुनिया का भला क्या जा रहा है? एक महान उद्देश्य लेकर मर जा। मरेगा तो अवश्य ही, तो फिर विराट उद्देश्य लेकर मरना ही अच्छा रहेगा। तुम्हीं लोग तो देश की आशा तथा विश्वास हो। तुम लोगों को कर्महीन देखकर मुझे बड़ी पीड़ा होती है। लग जा ..... लग जा ...... विलम्ब न कर, मृत्यु तो दिन प्रतिदिन निकट आती जा रही है। बाद में करूँगा, यह सोच कर बैठा न रह अन्यथा कुछ भी नही कर पायेगा। मनुष्य के दुःख में जो लोग सहानुभूति नही दिखला पाते वे भी क्या मनुष्य कहलाने के योग्य हैं ?क्या तुम लोग मनुष्य से प्रेम करते हो ? तो आओ ! हम भला करने के लिए प्राण - प्रण से लग जायें। पीछे मत हटना............ सामने बढते जाओ। भारत माता कम से कम एक हजार नवयुवकों की बलि माँग रही हैं, परन्तु स्मरण रखना, मनुष्य चाहिए पशु नहीं।''[१] इस कथन के द्वारा हम समझ सकते हैं कि स्वामी विवेकानन्द में देश के उत्थान के लिए आदर्श देश भक्ति तथा आत्मोत्सर्ग की भावना निहित है।

(2) अतीत – गौरव

अपने देश के अतीत गौरव का बखान करते हुए विवेकानन्द कहते हैं, ''यह वही प्रचीन भूमि है जहाँ धर्म एवं दर्शन ने विश्व में सर्वप्रथम अपना निवास स्थान बनाया था। यह वही भारत भूमि है जिसमें बहने वाली विशाल काय नदियाँ उसके आध्यात्मिक प्रवाहो का स्थूल प्रतिरूप है, और जहाँ हिमालय अपने चिर शिखरों के साथ उन्नत होकर मानो स्वर्ग राज्य के रहस्यों की ओर निहार रहा है। यह वही भारत भूमि है जिस पर जगत के श्रेष्ठतम् ऋषियों की चरण धूलि पड़ चुकी है, और यही पर सर्वप्रथम मानवीय प्रकृति तथा मनोजगत के रहस्यों को जानने की जिज्ञासा के अंकुर प्रस्फुटित हुए थे।[२]

देश के प्रचीन गौरव का यशगान करते हुये वे कहते हैं - ''यह वही भारत वर्ष है जो शताब्दियों से आघात, विदेशियों के असंख्य आक्रमण तथा सैकड़ों आचार व्यवहारों के विपर्यय

१. विवेकानन्द साहित्य - ६, पृ० १९६
२. विवेकज्योति - वर्ष ३१, अंक - ३, पृ० १०

सहकर भी अक्षय बना हुआ है। यह वही भारत वर्ष है जो अपने अविनाशी बल तथा जीवनी शक्ति के साथ पर्वत से भी अधिक अटल भाव से खड़ा है, जैसे आत्मा अनादि अन्नत तथा अनश्वर है वैसे ही हमारी मातृभूमि का जीवन भी है, और हम इसी महान भूमि के सन्तान हैं।''[१] इसी आधार पर स्वामीजी कहते है, --''यह सनातन धर्म का देश है, यह गिर अवश्य गया है परन्तु निश्चय ही फिर उठेगा .... और ऐसा उठेगा कि दुनिया देख कर दंग रह जायेगी। देखा है न . ..... नदी या समुद्र में लहरें जितनी ही निचे उतरती है उसके बाद वे उतनी ही जोर से उपर उठती हैं।''[२]

विवेकानन्द अपने राष्ट्र को विकसित होने एवं आत्मगौरव की भावना के विकास के लिए गौरवमय अतीत का अवलोकन करने को कहते हैं। वे कहते हैं,– ''भारत का इतिहास ही उसे अपनी महानता को बोध करा सकता है। धार्मिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से हमारी परम्परा मानवीयता एवं उदात्त भावनाओं से भरी पड़ी है। वे अतीत का अवलोकन करते हुए कहते हैं- ''ऐ हिन्दुओं तुमने जो कुछ किया है वह अच्छा ही किया है, परन्तु आओ अब हम उससे भी अधिक अच्छा कार्य करें।''[३]

वे भविष्य को देखने के साथ साथ अतीत से सीख लेने की बात पर भी बल देते हैं, उनका कहना है कि हमे अपने इतिहास का पुनरावलोकन करते रहना चाहिए, इससे हमारा विकास चिर स्थाई और मानवीय होगा। हमे अपनी ऐतिहासिक उपलब्धियों से प्रेरणा व ऐतिहासिक भूलों से कुछ न कुछ सीख लेते रहना चाहिए, जिससे भविष्य में पुनः वह भूल न हो। किसी भी राष्ट्र के अतीत और इतिहास का महत्व निरूपित करते हुये विवेकानन्द कहते हैं -''जिस राष्ट्र का अपना कोई इतिहास नही है; वह इस संसार में अत्यन्त नगण्य है क्योकि राष्ट्र का गौरवमय अतीत राष्ट्र को नियंत्रण में रखता है।''[४] अपने राष्ट्र के गौरव को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं,–''यह वही प्राचीन भूमि है जहाँ धर्म एवं दर्शन ने विश्व में सर्व प्रथम अपना निवास स्थान बनाया था। यह वही भारत भूमि है जिसमें बहने वाली विशालकाय नदियाँ उसके आध्यात्मिक प्रवाहों का स्थूल प्रतिरूप

---

१. विवेकज्योति - वर्ष ३१, अंक - ३, पृ० १०
२. वही, पृ० ११
३. शिक्षा संस्कृति और समाज, पृ० ९५
४. विवेकानन्द साहित्य - ८ पृ० २२८

है और जहाँ हिमालय अपने चिर शिखरों के साथ उन्नत होकर मानो स्वर्ग राज्य के रहस्यों की ओर निहार रहा है, यह वही भारत भूमि है जिस पर जगत के श्रेष्ठतम् ऋषियो की चरण धूलि पड़ चुकी है और यही पर सर्वप्रथम मानवीय प्रकृति तथा मनोजगत के रहस्यों को जानने की जिज्ञासा के अंकुर प्रस्फुटित हुये थे।''[१]

आगे वे यहाँ की सास्वत संस्कृति एवं सातत्यता की विवेचना करते हुये कहते हैं, ''यह वही भारतवर्ष है जो शताब्दियों से आघात विदेशियों के निरन्तर आक्रमण तथा सैकड़ों आचार व्यवहार के विपर्यय सहकर भी अक्षय बना हुआ है। यह वही भारत वर्ष जो अपने अविनाशी बल तथा जीवनी शक्ति के साथ पर्वत से भी अटल भाव से खड़ा है, जैसे आत्मा अनादि अनन्त तथा अनश्वर है, वैसे ही हमारी मातृभूमि का जीवन भी है हमें ऐसे देश की संन्तान होने का गर्व है।''[२]

अपने देश की सभ्यता व संस्कृति की अखण्डता का वर्णन गर्व से करते हुए वे कहते हैं - ''प्रत्येक शताब्दी में बरसाती मेढ़कों के समान नये-नये राष्ट्र का उत्थान और पतन होता रहा है, वे प्रायःशून्य से पैदा होते हैं और थोड़े दिन खुराफात मचाते हैं और फिर विनाश की गहराइयों में खो जाते हैं परन्तु यह महान भारतीय राष्ट्र जिसे दूसरे किसी भी राष्ट्र से अधिक दुर्भाग्यों, संकटों तथा उथल पुथल का सामना करना पड़ा है, आज भी कायम है........ आज भी टिका हुआ है।''[३]

(३) स्वाधीनता व मुक्तिः—

विवेकानन्द 'मुक्ति' को किसी स्तर पर बन्धन, पराधीनता, गुलामी व संकीर्णता के ब्यापक विरोध के रूप में देखते हैं। वह चाहे धार्मिक हो या सामाजिक अथवा राजनैतिक, मानव की पूर्णता के लिए उसकी स्वाधीनता परम आवश्यक है। उनका विचार है कि गुलामी का बन्धन चाहे जैसा हो उसे खुनला ही चाहिए।''

---

१. विवेकज्योति - वर्ष ३१, अंक - ३, पृ० १०
२. वही,
३. वही, पृ० ११

स्वाधीनता को वे मानव हित के लिए पहली शर्त मानते है जो उन्हीं के स्वर में सुना जा सकता है – "तुम यह स्मरण रखो कि विकास की पहली शर्त है स्वाधीनता। जिसे तुम बन्धन मुक्त नही करोगे वह कभी आगे नही बढ़ सकता......... तोड़ ड़ालो, मानव के सभी बन्धनों को, उन्हे स्वाधीनता के प्रकाश में आने दो। विकास के लिए यह नितान्त आवश्यक है।"[१]

विवेकानन्द जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह वैचारिक हो या सामाजिक, स्वतंत्रता के पक्षधर थे और इसके अभाव में वे किसी भी उन्नति की कल्पना नही कर सकते। उनका कहना था कि विचार और कार्य की स्वतंत्रता ही,जीवन उन्नत और हित साधना का एक मात्र मार्ग है। जहाँ यह स्वतंत्रता नही है, वहाँ मनुष्य जाति और राष्ट्र की अवनति अवश्यम्भावी है।[२]

वे स्वाधीनता को प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य मानते हैं। इससे कोई अन्तर नही पड़ता कि वह विदेशी अंग्रेजों के विरुद्ध हो या स्वदेशी साहूकार व जमींदारों के। जहाँ मानवता को कुचल कर शासन किया जाता है, वहाँ स्वाधीनता का प्रश्न अपने आप खड़ा हो जाता है, परन्तु स्वाधीनता प्राप्त करने के पहले हमें अपने आप को इसके लिए तैयार करना होगा। मानसिक स्तर पर हमारी जो भी दुर्बलताएँ हैं, उन पर विजय प्राप्त करनी होगी। स्वाधीनता प्राप्ति के सम्बन्ध में वे कहते हैं - "हमारे नासमझ युवक अंग्रजों से अधिकार पाने के लिए सभाएँ करते हैं पर वे लोग सिर्फ हसते हैं, वो स्वतंत्रता देने को तैयार नही हैं, परन्तु हम स्वतंत्रता पाने के लायक भी नही हैं। मान लो अंग्रेजों ने सभी अधिकार तुम्हें सौप दिये, तब तो तुम प्रजा को और दबाओगे तथा उन्हें कुछ भी अधिकार न दोगे। क्यो कि गुलाम लोग गुलाम बनने के लिए ही अधिकार चाहते हैं।"[३]

स्वाधीनता की सही अर्थो में विवेचना करते हुए विवेकानन्द मानते हैं - जब तक शासक और शासित के मध्य सही मायने में सम्बन्धों की व्याख्या नही होगी, तब तक इस व्यापक दृष्टिकोण को नही समझा जा सकता। इसका उदाहरण देते हुए वे कहते हैं- "राजा, जो अपनी प्रजा की एकत्रित शक्तियों का केन्द्र है, शीघ्र ही भूल जाता है कि ये शक्तियाँ उसके पास इसलिए संग्रह की गयी है कि वह उन शक्तियों को बढ़ाये और सहस्र गुना अधिक बलशाली बना कर पुनः अपनी

---

१. विवेकानन्द साहित्य - २, पृ० ६९
२. शिक्षा संस्कृति और समाज (विवेकानन्द ग्रन्थ माला - ६) पृ० २४
३. वही पृ० २२

प्रजा को लौटा दे ताकि परिणाम यह हो कि यह शक्तियाँ सारे समाज की भलाई के लिए फैल जाँय।''[१]

स्वाधीनता के लिए चरित्र एवं नैतिकता पर बल देते हुए विवेकानन्द कहते हैं - ''मुक्ति के लिए चरित्र वज्र के समान दृढ़ बनाना होगा, क्या आप मुझे कुछ योग्य लड़के दे सकेंगे? तब तो मैं पूरी पृथ्वी को आन्दोलित कर नींद से जगा दूँगा।'' निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि वे परतंत्रता व गुलामी को अभिशाप समझते थे। गुलाम राष्ट्र व व्यक्ति की आत्मा बन्धक रहती है जिससे वह पशुओं के तुल्य जीवन यापन करता है। स्वतंत्रता राष्ट्रीय उत्थान व प्रगति की पहली सीढ़ी है। भारत को सबसे पहले स्वतंत्र होने की आवश्यकता है, शेष उपलब्धियाँ तो अपने आप ही प्राप्त हो जायेगी।

विवेकानन्द तत्कालीन राजनीतिक क्रिया- कलापों के प्रति सर्तक व सजग हैं। क्यो कि राजनीति ही वह धुरी है जो समाज को नयी दिशा प्रदान करती है। कांग्रेस के सम्बन्ध में अपनी राय व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा, - ''कांग्रेस मे मेरी आस्था नही है। पर हाँ, बिल्कुल नहीं से थोड़ा अच्छा है, फिर सोये हुए राष्ट्र को जगाने के लिए उसे हर तरह से धक्का देना जरूरी है। क्या आप मुझे बता सकते हैं कि कांग्रेस ने आम जनता के लिए अब तक क्या किया है? आप लोग क्या ऐसा सोचते हैं कि मात्र दो चार प्रस्ताव पास कर देने से ही स्वाधीनता मिल जाएगी?मेरी इसमें आस्था नही है। पहले जन साधारण को जगाना होगा, उन्हें भर पेट भोजन मिले तो वे स्वयं ही अपनी मुक्ति का मार्ग ढूँढ़ लेंगे। यदि कांग्रेस उनके लिए कुछ करती है तो कांग्रेस को मेरी सहानुभूति प्राप्त होगी। इसके साथ ही अग्रेजो में जो गुण है उन्हे भी हमें अपनाना होगा।''[२]

अपने देश में जब स्वतंत्रा प्राप्ति के लिए संघर्ष चल रहा था, तो हमारे सभी राष्ट्रीय नेताओं ने स्वीकार किया कि स्वामी जी के भाषण तथा कृतियों ने उन्हें मातृभूमि की सेवा और स्वतंत्रता के लिए तन मन से समर्पित होने की प्रेरणा दी है।[३]

विवेकानन्द धर्मवेत्ता संन्यासी होने के कारण सीधे तौर पर राजनीति में दखल नहीं

---

१. शिक्षा संस्कृति और समाज (विवेकानन्द ग्रन्थ माला - ६) पृ० ७६
२. विवेकानन्द साहित्य - ३ पृ० २९
३. वही - १ भूमिका से

देते थे परन्तु अपनी वाणी व विचार से युगीन राजनेताओं को प्रभावित कर रहे थे । इस युग के प्रतिष्ठित नेता, सुभाष चन्द्र बोस ने आपनी आत्मकथा में लिखा है,- ''मेरी आयु उस समय पन्द्रह वर्ष से भी कम थी। विवेकानन्द ने मेरे जीवन में प्रवेश किया और मेरे भीतर प्रचण्ड हलचल मच गयी..... सब कुछ उलट पुलट गया....... मेरी अस्थि - मज्जा में एक नवजागरण का सूत्रपात हुआ। मै दिन पर दिन महीने पर महीने ध्यान लगा कर उनकी वाणी और रचनायें पढ़ता रहा । अपने पत्रों और भारतीय व्याख्यानमाला में उन्होंने स्वदेश वासियों को जो उपदेश दिये थे,उन सब ने मुझे बहुत प्रभावित किया है ।'' इसी प्रभाव के कारण नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने विवेकानन्द को आधुनिक राष्ट्रीय आन्दोलन के धर्म गुरू के रूप में मान्यता प्रदान की ।

जवाहर लाल नेहरू अपने 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में 'वर्तमान भारत को स्वामी जी की देन' विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते है - ''अनेक व्याख्यानों व रचनाओं में एक स्वर जो बार-बार झंकृत होता है , वह है- ''निर्भयता, भय और दुर्बलता को त्याग कर वीर बनो ।'' महात्मा गाँधी भी विवेकानन्द के सम्बन्ध में देश के नवयुवको से कहते हैं -''युवकों से मेरा अनुरोध है कि स्वामी विवेकानन्द जहाँ निवास करते थे वहाँ वे एक बार अवश्य हो आयें ।'' भारत के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विकास में जिन महान आत्माओं का योगदान रहा है उसके मूल में विवेकानन्द के विचार प्रच्छन्न रूप से विद्यमान रहे हैं। महात्मा गांधी जी, जवाहर लाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस, लोकमान्य तिलक, मदन मोहन मालवीय आदि अग्रगण्य भारतीय नेता जिनका देश के उत्थान में अप्रतिम योगदान रहा है । उनके विचार रूपी वृक्ष विवेकाननद के उपदशों से खाद, पानी पाकर पल्लवित व पुष्पित हुये हैं । इस तरह स्वामी विवेकानन्द राष्ट्रीय आन्दोलन के अग्रगण्य नेता न होते हुये भी अपने विचारो व संदेशों के माध्यम से महान देशभक्त के रूप में प्रसिद्ध हुये हैं ।

फ्रांसीसी क्रांति पर 'रूसो' रूसी तथा चीनी क्रान्ति पर 'मार्क्स' का जैसा प्रभाव था। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर विवेकानन्द के प्रभाव को उससे कम करके नही देखा जा सकता।[१] भारतीय राष्ट्रीयता, विशेषकर उग्र राष्ट्रीयतावाद को इसका विशेष अवदान कर रहा है । स्वाभिमान व आत्मविश्वास जगाना तथा उत्साह पैदा करना इनका राष्ट्रीय ध्येय था । वे कहते हैं-''उठो,

---

१. विवेकज्योति वर्ष - ३१, अंक - २, पृ० ११०

जागो! और लक्ष्य तक पहुँचे बिना रुको मत।'' देश हित मे वे जीवन भी न्यौछावर कर देने का उद्घोष करते हुये कहते हैं- ''मत भूलना कि,तुम्हारा जन्म माँ की बेदी पर बालि हो जाने के लिये हुआ है ... देते जाओ पर कभी प्रतिदान की अपेक्षा न रखो ।''

भारत सरकार द्वारा १९८४ में घोषित किया गया कि,..''इस बात को महसूस किया गया कि स्वामी जी के सिद्धांत और वह आदर्श, जिनके लिए वह जिये और काम किये, भारतीय नवयुवको के लिये महत्वपूर्ण प्रेरणास्रोत बन सकते हैं ।[१]

(ग) सामाजिक

श्री रामकृष्ण देव और स्वामी विवेकानन्द दोनो युग द्रष्टा ऋषि थे। जो आत्मतत्व की प्राप्ति के बाद भी समाज व जीवन की उपेक्षा नहीं करते । रामकृष्ण के व्यवहार को देख कर लगता है कि ये कैसे संन्यासी है जो स्त्री का त्याग नहीं करते, माँ का त्याग नही करते, प्रायः एक ही साथ एक ही परिधि में निवास करते हैं । सुवह सवेरे माँ की सेवा करते हैं, माँ को लेकर तीर्थ यात्रा को जाते हैं । ये कैसे ब्रह्म ज्ञानी हैं, जो ब्रह्म दर्शन करके, ब्रह्मभूत अवस्था में उपनीत होकर भी मनुष्य के सेवा को मुक्ति अन्वेषण के समान ही अथवा उससे भी अधिक मूल्यवान मानते हैं । वही यथार्थ मुक्ति व श्रेष्ठज्ञान का अधिकारी हुआ है जो जगत को तुच्छ नही मानता । संन्यासी के मुख से यह कैसी आश्चर्य की बात ? ऐसी अपूर्व बात, ऐसा तो पहले किसी से नही सुना । ये कैसे गुरू हैं, जो निर्विकल्प समाधि के माध्यम से 'ब्रह्म' मे लीन होने के आकांक्षी शिष्य की भर्त्सना और व्यंग करके कह उठते हैं- ''यही तुम्हारा पौरुष है, यही तुम्हारा आत्म गौरव है, यही वीरत्व है ? तू जगत में सभी को छोड़कर अपनी मुक्ति के लिए व्याकुल हो रहा है, तेरा मन इतना छोटा हो गया है कि तू जगत के विषयों में न सोचकर अपनी मुक्ति के लिए ही अधीर हो उठा है ।'' ऐसे अनोखे गुरू के अनोखे शिष्य 'विवेकानन्द' जिनके लौकिक व आध्यात्मिक पक्षों का समग्र निचोड़ है ''जीवन''।

---

१. विवेकानन्द साहित्य - १, भूमिका से

स्वामी विवेकानन्द वेदान्तवादी संन्यासी हैं, सत्य है किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नही है कि उन्होंने जीवन को अस्वीकार कर दिया। उन्हांने सब के भीतर ब्रह्म का प्रकाश देखा है और सब कुछ उनके लिए महत पवित्र और सुन्दर है । मनुष्य उनके लिए केवल मनुष्य नही है, वह है देवता। वह भूल कर सकता है, अन्याय कर सकता है तो भी है देवता । उसकी भूल उसका अन्याय सामाजिक है । सुयोग सुविधा उत्साह एवं भिक्षा पाने पर उसकी सुप्त शक्ति के जागृत होने पर वह अपनी महिमा में प्रतिष्ठित होगा । स्वामी जी के लिए जीवन सार्थक और सुन्दर है , क्यों कि उसमें मनुष्य के संधर्ष का इतिहास है, उसके साहस धैर्य और दृढ़ता का स्वाक्षर है । अन्तिम युद्ध में मनुष्य जयी होगा ही । इसी से स्वामी जी मनुष्य को प्रेम करते थे । मनुष्य जीवन का प्रत्येक पक्ष उनके लिए मूल्यवान है ।

प्रश्न उठता है कि जिन्होंने अनित्य समझकर संसार का त्याग कर दिया है उनके विचार में जगत के प्राच्य और पाश्चात्य, आर्य और अनार्य, ब्रह्मण और शूद्र, हिन्दू और मुसलमान, अंग्रेज और भारतीय इन सब प्रसंगों का गमनागमन क्यों है । स्त्रियों पर अत्याचार हो रहा है या नही यह देखने की उन्हे क्या आवश्यकता है ? क्यों वे शूद्र शक्ति के जागरण की कामना करते हैं ? सभी देश तो उनके देश हैं, अतः भारत के लिए विशेष दर्द क्यों है उनमें ? एक वाक्य में - वेदान्त प्रचार में ही वे क्यों नहीं आवद्ध रहे ? जो मिथ्या है, उसी जगत को लेकर समय नष्ट करने का क्या कारण है ? वे क्यों कहते हैं कि जब तक एक कुत्ता भी भूँखा है, तब तक उनकी मुक्ति नही है ? .... इन सारे प्रश्न का उत्तर यह है कि जीवन को उन्होंने अस्वीकार नही किया । वास्वविक वेदान्तवादी की तरह उसकी व्यावहारिक सत्ता स्वीकार किया है। उन्होंने समझा है कि इस जीवन के भीतर से ही जीवन के उर्ध्व जाना होगा, मृत्यु को जय करना होगा, अमृतत्व लाभ करना होगा ।

इस तरह हम देखते हैं कि रामकृष्ण और विवेकानन्द कभी भी जीवन व मानवता को नकारते नही है यही गुँण उन्हें अन्य से अलग कर विशिष्टता प्रदान करता है और इसी के कारण समाज में आज भी गुरू - शिष्य दोनो देवता की तरह पूजे जाते हैं । आगे हम श्री रामकृष्ण देव विवेकानन्द के सामाजिक भावधारा का विविन्न उपभागो में बाँट कर अवलोकन करेंगे—

(1) ओज व शक्ति

स्वामी विवेकानन्द कायरता व पौरुषहीनता के प्रबल विरोधी थे - उनका मत 'शक्ति' की साधना व उपासना से शक्ति ग्रहण कर शक्तिमान बनने से है - भारत का कल्याण, शक्ति की साधना में ही अन्तर्निहित मानते हुए वे कहते हैं - "जन - जन में जो शक्ति छिपी है हमे उसे साकार करना है । जन मानष में जो साहस और जो विवेक प्रच्छन्न है, हमें उसे प्रकट करना है । मैं भारत में लोहे की मांसपेशिया और फौलाद की नाड़ी तथा धमनी देखना चाहता हूँ, क्यों कि इन्हीं के भीतर वह मन निवास करता है जो शम्पाओं और व्रजों से निर्मित होता है । शक्ति - पौरुष, क्षात्र - वीर्य, ब्रह्म तेज, इनके समन्वय से भारत की नयी मानवता का निर्माण होना चाहिये ।"

सभी प्रकार के भय कमजोरी एवं हीनता को त्याग कर वे मानसिक रूप से ऐसी पुष्टता के पक्षधर थे, जहाँ मृत्यु भय भी बौना हो जाय । 'शक्ति' ग्रहण करने की प्रेरणा देते हूए वे कहते हैं-- "मृत्यु का ध्यान करो, प्रलय को अपनी समाधि में देखो । महा भैरव रूद्रको अपनी पूजा से प्रसन्न करो। जो भयानक है उसकी अर्चना से ही भय बस में आयेगा....... संभव हो तो जीवन को छोड़ कर, मृत्यु की कामना करो । तलवार की धार पर अपना शरीर लगा दो और रूद्र शिव से एकाकार हो जाओ ।" इस तरह विवेकानन्द अपनी ओजपूर्ण वाणी से वर्षो से दबी व कुचली हुयी भारतीय जनता में ओज व शक्ति की धारा प्रवाहित करते हैं ।

लौकिक संसार की बात हो या धार्मिक संसार की, पतन तथा पाप का कारण भय ही है। भय से ही दुख व कष्ट होता है......भय से ही मृत्यु आती है और भय से ही समस्त बुराईयाँ उत्पन्न होती हैं । इस भय का मूल कारण क्या है ? विवेकानन्द कहते हैं - "अपने स्वरूप के संबंध में हमारा अज्ञान ही सभी प्रकार की कमजोरी एवं भय का मूल है ।" इस प्रकार वे अपने मंत्र द्वारा सभी को अभय प्रदान करते हैं ।

जब भारत में निराशा शक्तिहीनता व शिथिलता सर्वत्र व्याप्त थी । अन्धकार की इस बेला में विवेकानन्द अपनी ओजस्वी वाणी से शक्ति व आत्मबल, आत्मविश्वास तथा आत्म गौरव की नयी आभा विखेरते हुये कहते हैं -- "तुम लोग सिंह स्वरूप हो....... तुम पूर्ण आत्मा हो शुद्ध

स्वरूप अनादि व अनन्त हो। जगत की महाशक्ति तुम्हारे भीतर है। हे सखे! तुम क्यों रोते हो ? जन्ममरण तुम्हारा भी नहीं है और मेरा भी नहीं है, तुम क्यों रोते हो मित्र ?...... तुम्हारे रोग - शोक कुछ भी नहीं है..... तुम तो अनन्त आकाश स्वरूप हो... उस पर नाना प्रकार के मेघ आते हैं और कुछ देर खेल कर न जाने कहाँ लुप्त हो जाते हैं, परन्तु यह आकाश जैसा पहले नीला था..... वैसा ही बाद में भी रहता है।[१]

वीर लोग ही पृथ्वी का भोग करते हैं – 'वीरभोग्या वसुन्धरा' यह उक्ति नितांत सत्य है इसी बात को विवेकानन्द अपने शब्दों में इस तरह व्यक्त करते हैं -- "वीर बनो! सर्वदा कहो, मैं निर्भय हूँ , भय ही मृत्यु है, भय ही पाप हैं.... भय अधर्म है और भय ही व्याभिचार है। जगत में जो भी बुरे और मिथ्या भाव हैं वे सब इस भय रूपी शैतान से उत्पन्न होते हैं।[२]

अपना मूल स्वरूप विस्मरण कर चुकी हताश निराश जनमानष को 'शक्ति' ग्रहण करने एवं किसी भी स्थित परिस्थित में अभय रहने का उद्घोष करते हुए वे कहते हैं, "उठो! जागृत हो, अपना दिव्य स्वरूप प्रकाशित करो। तुम्हें कौन भयभीत कर सकता है , तुम किससे डरते हो। यदि सैकड़ो सूर्य पृथ्वी पर गिर पड़े, सैकड़ो चन्द्र चूर चूर हो जायें, ब्रह्माण्ड एक के बाद एक नष्ट होते जायं, तो भी तुम किसी की परवाह मत करना, पर्वत की भाति अपने ध्येय पर अटल रहना।" आत्मविश्वास की बात को वे धर्म से जोड़ते हुए कहते हैं – "प्राचीन धर्म का कथन है कि..... नास्तिक वह है जो ईश्वर में विश्वास नही करता, नया धर्म कहता है– नास्तिक वह है जो अपने आप में विश्वास नही करता।"[३] स्वामी जी शक्ति के साथ साथ बुद्धि के उचित प्रयोग पर भी बल देते हैं। क्यों कि बुद्धि के अभाव में, शक्ति दिशाहीन होकर पतन का कारण बन सकती है। वे बुद्धि और शक्ति के समन्वय के पक्षधर थे। उनका सिद्धान्त है - मस्तिष्क और मांसपेशियों का बल साथ - साथ विकसीत होना चाहिए। फौलादी शरीर हो और साथ ही कुशाग्र बुद्धि हो तो सारा संसार तुम्हारे सम्मुख नतमस्तक हो जायेगा। उठो ! कमर कस कर खड़े हो जाओ और कार्य करते चलो - कुछ उत्साही और अनुरागी युवक मिलने से मै देश में उथल पुथल मचा दूँगा।

---

१. विवेकज्योति - वर्ष ३१, अंक - ३, पृ० २८
२. वही पृ० २७
३. योद्धा संन्यासी विवेकानन्द - हंसराज रहबर

गीता के, 'क्लैव्यंमा स्म गमः.....क्षुद्रं हृदय दौर्वल्यं', 'त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप' और उपनिषद के 'उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' जैसे ओजपूर्ण विचार स्वामी जी के आर्दश थे और उन्ही को आधार बनाकर वे जनमानस को जागृत करते हैं। विवेकानन्द इस भाव को अपनी कविता के माध्यम से भी व्यक्त करते हैं—,

साहसी बनों और सत्य के दर्शन करो,
उससे तादात्मय स्थापित करो।
जागो, उठो, सपने में मत खोये रहो,
यह सपनों की धरती है जहाँ कर्म ?[१]

मूलतः विवेकानन्द के सन्देश मानव मात्र को मन से,आत्मा से, शरीर से , बुद्धि से बलवान बनाने का है। कायरता का यहाँ कोई स्थान नही है। पलायन की चेष्टा व्यर्थ है। विजय - पराजय की चिन्ता छोड़कर केवल आत्मबल से अपने कर्तव्यों को निर्वहन करने में ही मानव के उत्थान का बीजतत्व निहित है। ऐसे ओज पूर्ण संन्देश के माध्यम से स्वामी जी पूरी मानवता को जगाते हैं। उनके विचार आज भी उनके न रहने पर उनकी सार्थकता व महत्ता को सिद्व करते हैं।

(२)

किसी भी जाति - वर्ग व सम्प्रदाय तथा भौगोलिक सीमाओं से उपर उठकर मानव मात्र के लिए समर्पित सेवा भाव ही मानवता है। ऊँच - नीच, अमीर - गरीब, छोटे - बड़े आदि पक्षपात से परे मानव की उन्नति व विकास का चिन्तन मानवता का प्रमुख पक्ष है।

संन्यासी बनने के अपने प्रमुख ध्येय की विवेचना करते हुए विवेकानन्द कहते हैं - ''बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय ही संन्यासी का मुख्य ध्येय होता है। दूसरे के लिए प्राण देने, जीवों के गगनभेदी क्रन्दन को शान्त करने विधवाओं के आँसू पोंछने, अल्पज्ञ सामान्य जनता को

---

१. विवेकानन्द साहित्य - १०, पृ० १८९ - ९२
(मूलतः अंग्रेजी में लिखी कविता का भावानुवाद)

जीवन संग्राम में सक्षम बनाने, शास्त्रोपदेश का प्रचार करने, सबका ऐहिक तथा परमार्थिक मंगल करने और ज्ञानालोक के लिए ही संन्यासी का जन्म होता है।''[१]

स्वामी विवेकानन्द जन मानस को सेवा के लिए प्रेरित करते हुये कहते हैं - सेवा पीड़ित मानवता की, दीन -दुखियों की, अछूतों और गरीबों की, बीमार रोगियों की, अकाल व महामारीग्रस्त जनता की, समाज के उपेक्षित लोगों की, तभी तो भारत व भारतीय समाज उन्नति की ओर अग्रसर हो सकता है, और मानव मूल्यों की रक्षा कर सकती है।

मानव के रूप में ईश्वर की इस सर्वोत्तम कृति को प्रत्येक स्तर पर एकत्व के भाव से देखा जाना चाहिए और उसके सुख - दुःख में, विचार धारा के स्तर पर समभाव रखा जाना चाहिए। सभी के भीतर वही एक आत्मा निवास करती है जो परमात्मा मे जाकर एकाकार हो जाती है। विवेकानन्द का विचार है,–''मानव जाति को सर्वत्र एवं तब तक सहायता व प्रेरणा देते रहना चाहिए जब तक किसमग्र जाति ईश्वर के प्रति एकत्व का अनुभव नही कर लेती।'' इस तरह विवेकानन्द ने मानवीय सम्वेदनाओ को समझने एवं मानव के पीड़ा को दूर करने का जो गुरूतर दायित्व अपने गुरू रामकृष्ण देव से विशाल वट वृक्ष बनने की प्रेरणा से पाया था जिसकी छाया में संसार के पापी तापी एंव दीन दुखी सुख एव व शान्ति की अनुभूतिकर सके, उसे व्यवहारिक रूप में पूर्णतः परिणत कर अपने गुरू के आदेश के अक्षरशः सत्य कर दिया। विवेकानन्द ने स्पष्ट रूप से यह सावित कर दिया कि मानवीय संवेदना प्रेम सेवा एवं सद्भावना का अद्धैत दर्शन अथवा वेदान्त से किसी भी तरह का द्वन्द नही है। वस्तुतः उनका व्यावहारिक वेदान्त मानवता में इस तरह रच रच गयाकि दोनो का वाह्य और आन्तरिक भेद लुप्त हो गया।

विवेकानन्द भौतिक कल्याण को ही आध्यात्मीक उन्नति का बीज मानते है। वे कहते है, ''मै ऐसे ईश्वर मे विश्वास नही करता जोकरोड़ो भूखो को भोजन ने दे सके।'' इस तरह वे मानवता व मानवीय धर्म का सर्वोत्तम धर्म मानते थे। मानव को दुख एवं कष्ट पहूचाने वाला कोई भी कृत्य धर्मकी श्रेणी में नही रखा जा सकता।'' भूँखे को भोजन देना व रोगी की सेवा करना सबसे

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ३, पृ० ५ - ६

बड़ा धर्म है। वे कहते हैं - "खाली पेट धर्म नहीं हो सकता।"[१] दीन दुखी के उद्धार के लिये उन्होने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। उनका चिन्तन है "अगर हमलोग भी दीन दुखी तथा पतितो के उद्धार कार्य से पीछे हट जाये तो फिर उन्हे कौन देखेगा।"[२]

प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण एवं प्रत्येक मानव के उद्धार के लिए विवेकानन्द ने भारतीय धार्मिक चिन्तन प्रवाह को गुफाओ एवं पर्वतो से उतार कर जन जन में प्रवाहित कर दिया। धर्म का मूल ध्यान या प्राणायामसे अलग करके शोषित पीड़ित मानवता के उद्धार के विचार में स्थापित कर जीव को ही ईश्वर सिद्व कर दिया। उन्होने कहा कि ईश्वर को कही ढूँढने की आवश्यकता नहीहै वह तो करोड़ो मानवो के रूप में तुम्हारे बीच विद्यमान है, तुम उनकी सेवा रूपी पूजा से अपने क्यो वंचित किये हो?विवेकानन्द की उदान्त मानवता का वर्णन करते हुये प्रख्यात बंगला कविता और नाटककार गिरीश चन्द्र घोष कहते है "देश की हाहाकारी स्थिति और जनता पर अत्याचार को रोकने के लिए वेदो का कोई उपाय बताने को जब मै स्वामी जीसे कहा तो जनता की पीड़ा व वेदना को सोचते ही उनके ऑखोसे आसू टपकने लगे और वे स्तब्ध होकर बाहर चले गये।" इस बात व घटना से प्रभावित होकर गिरीश बाबू ने उनके शिष्य को लक्ष्य करके कहा "देखो स्वामी जी कैसे उदार हृदय है। मैतुम्हारे स्वामी जीका इस कारण आदर नही करता कि वे वेद वेदान्त के बड़े पण्डितहै वरन इस लिए श्रद्धा करता हू कि सामान्य जीव पर निम्न तम मनुष्य के लिए भी उनके मन में कितना भाव है देखो न जीवो के दुख के स्मरण मात्र से वे कैसे रो पड़े और रोते रोते बाहर चले गये।"[३] इस तरह हम देखते है कि मंनुष्य के दुख कष्ट की बात सुनकर उनका हृदय दया से पूर्ण हो जाता है और उस क्षण उनका वेद वेदान्त जाने कहा भाग जाता है।

कालान्तर में इसी परिप्रेक्ष्य में स्वामी विवेकानन्द नेगिरीश चन्द्र से कहा "देखो गिरीश बाबू लगता है यदि जगत के दूख दूर करने के लिए मुझे सहस्रो बार जन्म लेना पड़े तो भी मै तैयार हूॅ। इससे यदि किसी का तनिक भी दुख दूर हो तो वह मै करूगा और ऐसा भी मन आता है कि केवल अपनी मुक्ति से क्या होगा?सबको साथ लेकर उस मार्ग पर जाना ही श्रेयकर होगा।[४]

१. विवेकज्योति - वर्ष ३१, अंक - २, पृ० ४७
२. विवेकानन्द साहित्य - ३ पृ० ०४
३. वही - ६ पृ० ५७
४. वही - १ पृ० ५९

मानवता के सिद्धान्त को व्यवहार में परिणीत करने के लिए सूखा, अकाल और महामारी (हैजा, प्लेग, चेचक आदि) के समय विवेकानन्द अपने पूरे मिशन सहित पीड़ितों की सेवा और उद्धार के लिये अपनी पूरी ऊर्जा झोंक देते थे । बंगाल में जब प्लेग फैला तो इन्होंने उनकी सेवा में अर्थ की कमी आने पर चिर स्वप्नित मठ की जमीन भी बेच देने की घोषणा कर दी । प्रत्येक को एक दूसरे से द्वेष व वैर भूलाकर एकात्म भाव से रहने की बात पर बल देते हुए वे कहते है,– ''मेरे मित्रों ! प्हले मनुष्य बनो फिर तुम देखोगे कि बाकी चिजे स्वंय ही तुम्हारा अनुसरण करेगी..... .आपस के घृणीत द्वेष भाव को छोड़ो और सद् उद्देश्य सदुपाय सत्साहस तथा सदृविचार का अवलम्बन करो। उठो!...... कमर कस कर खड़े हो जाओ और कार्य करते चलो।''[१]

विवेकानन्द कहते है,–''प्रत्येक मानव में धर्म की शक्ति विद्यमान है, दीन दुखी लोगो में विद्यमान नारायण हमारी सेवा चाहते है। '' समाज में सोशीत व उपेक्षित विशाल जन समूह के कल्याण की भावना से ओत प्रोत इन सन्देशो का अद्भूव प्रभाव पड़ा है। सम्पूर्ण वातावरण उनके उद्घोष से आप्लावित हो गया। जिससे मनुष्य अपने स्वार्थ सीमा से बाहर निकल कर जन सेवा के असीम मुक्ति पथ पर अग्रसित होने की चेष्ठा करने लगा ।

आपसी सौहार्द व प्रेम को मानवता का प्रमुख प्क्ष मानते है। एकल के धरातल पर अवस्थित मनुष्यो के बीच ही उदान्त प्रेम की भावना का उदय हो सकत है। 'प्रेम' की महत्ता व्यक्त करते हुए उन्होने कहा, ''मेरे उपदेश वेदान्त की समता और आत्मा की विश्व व्यापकता पर ही प्रतिष्ठित है।'' आगे वे कहते है प्रेम से सदैव आन्नद की प्राप्ति होतीहै और प्रेम कभी विफल नही होता। प्रेम ही विकास है और स्वार्थपरता ही संकुचन और विकास ही जीवन है इस लिए प्रेम को ही जीवन का मूल मंत्र बना लो और केवल प्रेम से ही प्रेम करो क्यो की प्रेम करने वाला ही जीता है। वर्तमान समाज के पिछड़े होने का प्रमुख कारण वे समाज के वहुसंख्यक वर्ग का समाज की मुख्य धारा से अलग हो जाना मानते है समाज के उत्थान के लिए बहुसंख्यक उपेक्षित वे तिरस्कृत व्यक्तियो को नारायणत्व का बोध करा के समाज की मुख्य धारा मे सम्मिलित करके ही अभिनव भारत का निर्माण किया जा सकता है ।

---

१. विवेकज्योति - वर्ष ३१, अंक - ३, पृ० २१

"आत्मवत सर्वभूतेषु"[१] की भावना का प्रचार करते हुये वे कहते है, -- "क्या यह महान उपदेश केवल पुस्तको के भीतर ही रह जायेगा? जो भूखे के मुह मे एक टुकड़ा रोटी नही दे सकते वे किसी को मुक्ति कैसे देगे?जो दूसरो की केवल श्वास से ही अपवित्र हो जाते है वे दूसरो को कैसे पवित्र कर पायेगे?"[२] समाज में व्याप्त किसी अस्तर की असमानता उनके लिए असहृय है। इन्ही बुराइयो को वे अमानवीयता की जड़ मानते हुए वे कहते है,--"समाज के सभी व्यक्तियो को धन विद्या विद्यार्जन व विकास के लिए समान अवसर मिलना चाहिए प्रत्येक क्षेत्र में स्वतंत्र अर्थात मुक्ति ही प्रगति के लिए मनुष्य का उच्चतम लाभ है। जो समाज इस स्वतंत्रा के विकास के मार्ग में बाधक है वो हानिकारक है और उसको समाप्त करने का उपाय शीघ्रता से करना चाहिये।"

भारत के दीन हीन लोगो की दयनीय अवस्था के बाद भी ईसाईयो द्वारा भारत में इनके लिये काई सहायता न देने की अपेक्षा धर्म प्रचारक भेजने पर उन्हे धिक्कारतेहुए स्वाजी जी कहतेहै "तुम ईसाई लोग मूर्ति पूजको की आत्मा की बचाव के लिए भारतमें धर्म प्रचारक भेजने के लिए बहुत ही आतुर है। किन्तु इन मूर्ति पूजको के शरीर की क्षुधा की ज्वाला से बचाने के लिए तुम क्या कर रहे हो? भयानक दुर्भिक्षों के समय लाखां भारतवासी निराहार मर रहे हैं, किन्तु तुम ईसाईयों से इनके लिए कुछ भी नही बन पड़ रहा है । भारत की भूमि पर तुम गिरजे पर गिरजे बनाते जा रहे हो किन्तु तुम्हे यह ज्ञात नही है कि पूर्वी जगत की व्याकूल जनता की आवश्यकता रोटी है.... धर्म नही... जो जाति भूख से तड़प रही है उसके आगे धर्म परोसना उसका अपमान है उसके हाथ में दर्शन और धर्म ग्रन्थ रखना उसका मजाक उड़ाना है।"[३]

विवेकानन्द संसार के अगणित नर नारियो मे परमात्मा को बोध करते है वे उस ईश्वरका विरोध करते है जो भूखे को रोटी से वंचित रखता है विधवा के आँसू पोछना आश्रय हीन बच्चोंा को भोजन देना प्रत्येक मानव का कर्तव्य है। भारत भूमि की करोड़ो अस्थि पंजर से युक्ति निराश हताश जनता ही विवेकानन्द के इष्ट है।

विवेकानन्द सामाजिक समन्वय व एकताको मानवता के विकास के लिए अनिर्वाय

---

१. सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के सदृश देखना
२. विवेकज्योति - वर्ष ३१, अंक - २, पृ० ४७
३. विवेकानन्द साहित्य

मानते है वे कहते है, ''नीच अज्ञानी दरिद्र चमार और मेहतर तुम्हारे रक्त मांस है... तुम्हारे भाई है गर्व से कहो की मै भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारत वास, दरिद्र भारतवासी ब्राम्हण भारतवासी चाण्डाल भारतवासी सब मेरे भाई हैं।

शोषितो पिड़ीतो के उद्वार के प्रति वे इतने कटिवद्ध है कि उनकी उन्नति के लिए सहस्रो बार नरक जाने को तैयार है, ''यदि मै अपने देश वासियो को जड़ता के कूप से उठाकर मनुष्य बना सका, उन्हे कर्म योग के आर्दश में अनुप्राणित कर जगा सका तो मै हसते हुए हजारोबार नर्क में जाने को तैयार हूँ समाज में सर्वत्र व्यप्त अभाव व गरीवी की पाश्चात्य देशो से तुलना करते हुए वे कहते है, ''पाश्चात्य देशो के दलित तो निरे प्शु है, उनकी तुलना में हमारे यहा के गरीब देवता तुल्य है यर्थाथ राष्ट्र जो झोपड़ीयो मे निवास करता है अपना पौरूष विस्मृत कर चुका है अपना व्यक्तित्व खोचुका है। पैरो तले रौदे जाकर भी ये लोग यह समझ बैठे हैकि जिस किसी केपास पैसा हो वे उसी के पैरो तले कुचले जाने केलिए पैदा हूए है उन्हे उनका खोया हूआ सम्मान वापस प्रदान करना है उन्हे शिक्षित और समर्थ बनाना हो गा उनके चारो ओर दुनिया में क्या हो रहा है इस विषय मे उनकी आखे खोल देनी होगी, फिर तो अपना विकास वे स्वयं कर लेंगे।''

भारत मे व्याप्त आपसी कलह व ईर्ष्या पर कटाक्ष करते हूए वे कहते है कि, ''हिन्दु राष्ट्र अपनी अदभूत बुद्धी व अन्याय अनेको गुणो के रहते हुए ईर्ष्या के कराण टुकड़े-टुकड़े हो गया है दूसरे के ईर्ष्या करने वाली और एकक दसरे से डाह करने वाली प्रवृत्ति का हमे त्याग करना होगा तभी हम देश व समाज को उन्नति के शिखर पर ले जा सकते है।''[१]

इस तरह हम देखते है कि विवेकानन्द प्रत्येक मानव के प्रति अन्यय प्रेम एवं श्रद्धा रखते थे वे मानव मात्र को बिना भेद भाव व उच नीच के समता के धरातल पर स्थपित करने के पक्षधर थे। प्रत्येक मानव का कल्याण इनके जीवन का चरम लक्ष्य था। मानव में ही ईश्वर का दर्शन व मानव सेवा को ईश्वर की पूजा का स्थान देकर इन्होने वर्षो से कुचली दबी मानवता को एक नयी उचाई व नया विस्तार प्रदान किया।

---

१. विवेकानन्द साहित्य

(३) कृषक मजदूर

समाज के सबसे निचले पायदान पर अवस्थित अपने न्युनतम आवस्यकताओ की भी पूर्ति ने कर पाने वाले कृषक व मजदूरो का उत्थान व विकास करके स्वामी विवेकानन्द उन्हे समाज की मुख्य धारा से जोड़ना चाहते है। खेतो मे धूप, शीत व वर्षा का अनन्त कष्ट सहन करके पूरे राष्ट्रके लिए अन्न उत्पादन करने वाले किसान दूसरो का तो पेट भरते है परन्तु स्वयं भूखे पेट सोने के लिए विवश है। देश का इससे बड़ा दुर्भाग्य और कुछ नही हो सकताहै। इनकी उपेक्षा करना घोर हृदय हीनता है भारत भ्रमण के दौरान देश भर के किसानो और मजदूरो की दयनियक अवस्था देख कर स्वाती जी क ामन द्रवित हो उठा इस सम्बन्ध मेंवे अपने गुरू भाई स्वामी तुरीयानन्द से कहते है---

''मैने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया है और सम्प्रति महाराष्ट्र तथा पश्चिमी घाट भी घुम आया हूॅ, परन्तु हाय ! अपनी आखोसे मैने देश वासियो की जो दुर्दशा देखी है उससे आँसू नही रोक पा रहा हूँ । अब मैने भलिभाति समझ लिया है की देश की यह हीनता व निर्धनता दूर किये बिना धर्म प्रचार का यह प्रयास बिल्कुल बेकार है। इस लिए भारत की मुक्ति के उपाय हेतु ही इस समय मैने अमेरिका जाने का निश्चय किया है ।''[१]

भारत में करोड़ो की संख्या में जो दीनहीन गरीब है वे ही भारत के प्राण है इनकी उपेक्षा करते नये भारत की कल्पना नही की जा सकती वे कहते है, करोड़ो की संख्या जो गरीब तथा निम्न वर्ग के लोग हैये ही राष्ट्र के प्राण है ये किसान ये मजदूर ये जुलाहे आदि जो भारत के नगण्य मनुष्य है विजाति विजित.... स्वं जाति निन्दित छोटी छोटी जातिया है वही लगातार चुप चाप काम करती जा रही है.........और अपने परिश्रम का फल भी नही पा रही है इन लोगो ने मौन रह कर हजारो वर्षो तक अत्याचार सहा है और उससे पायी है अपूर्व सहनशीलता चिर काल से दुःख भोगा है जिससे पायी है अटल जीवनी शक्ति......... ये लोग मुठ्टी भर सत्तू खाकर दुनिया को उलट सकेगे......आधी रोटी मिली तो तीनो लोको मे इनका तेज न अटेगा।''[२]

---

१. युगनायक विवेकानन्द - ३, पृ० ८
२. विवेकज्योति - वर्ष ३१, अंक - ३, पृ० १६

यहाँ हम देखते हैं कि विवेकानन्द समाज के किसान मजदूर व निम्न वर्ग के लोगो में भी कैसी शक्ति की कल्पना करते है आधी रोटी मिली तो तीनो लोको में इनका तेज न अटेगा। कितनी अद्भूत बात है.... जिसे हम कमजोर व हीन समझकर उपेक्षित कर देते है, स्वामीजी उनके अन्दर भी अतीव शक्ति व तेज का दर्शन करते हुए उनके महत्व का प्रतिपादन करतेहै इनका मत था कि केवल उच्च वर्ग के थोड़े लोगो के प्रगति कर लेनेसे पूरे देश का उत्थान व विकास नही हो सकता जब कि उसमें समाज के निम्न वर्ग भी सामिल न हो।

(4) जाति प्रथा वर्ण भेद

समाज में व्याप्त कुरीतियों और विसंगतियों को दूर करने के लिये विवेकानन्द सवप्रेरणा की आवश्यकता पर बल देते है। उनका मत है कि प्रत्येक व्यक्ति के अन्तः करण में स्थित आत्म तत्व को जगा देने से ही उनका उद्धार सम्भव है इसी से समाजिक असमान्ताऔर उनके विसंगतियों को समाप्त किया जा सकता है। वे समाजिक कुरीतियों एवं विसंगतियों को समाप्त करने के लिए धर्म और वेदान्त का आश्रय लेने की बात कहते है। उनके दृष्टिकोण से समाज की आंखों पर बहुत दिनों तक पट्टी नहीं बांधी जा सकती। समाज के ऊपरी हिस्सों में कितना ही कूड़ा करकट क्यों न इकट्ठा हो गया हो, परन्तु उस ढेर के नीचे प्रेम रूप निस्वार्थ समाजिक जीवन का प्राण स्पन्दन होता रहता है। सब कुछ सहने वाले पृथ्वी की भांति समाज भी बहुत रहता है। परन्तु एक न एक दिन जागता ही है। और उस जागृति के वेग से युगों की एकत्र मलिनता तथा स्वार्थ परता दूर जा गिरती है।[१]

जाति प्रथा पर उनके विचार सम्पूर्ण समाजिक और प्रसंगिक है। सामान्यतः जिस तरह से जाति तथा प्रथा का विरोध किया जाता है स्वामी जी के विचार उससे पूर्णतः भिन्न है। जाति भेद तोड़ने से उनका मतलब यह नही है कि शहर भर के लोग एक साथ मिल कर शराब, कबाब उड़ये या जितने मूर्ख या पागल हैं वे सब चाहे जिसके साथ शादी कर ले और सारे देश को बहुत बड़ा पागल खाना बना दें। उनका सिद्वांत कुछ भी तोड़ने के विरूद्ध है जोड़ने और मोड़ने में विश्वास रखते हैं।

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ९, पृ० २१६

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जाति प्रथा एक विवादा स्पद ब्यवस्था मानी जाती है। विवेकानन्द ने जाति को धर्म से बिलकुल अलग करके देखा है, और इसे अपेक्षाकृत नूतन समाजिक कुप्रथा मानते हैं।[१] जाति प्रथा के ऐतिहासिक विवेचना पर बल देते हुए इसके हानि एवं लाभ दोनों को देखने की बात कहते हुए वे कहते हैं,- ''जाति प्रथा का बुरा प्क्ष तो है परन्तु उससे होने वाले लाभ का पलड़ा आधिक भारी है। विवेकानन्द जन्म के आधार पर जाति निर्धारण के सर्वथा विरोधी हैं। वे मानते हैं कि पिता के व्यवसाय को पुत्र द्वारा अपनाने से ही जाति प्रथा का विकास हुआ। कालान्तर में धीरे धीरे यह व्यवस्था विकृत होकर जन्म के आधार पर भेद भाव का बड़ा कारण हुआ ।[२]

भारतीय जाति व्यवस्था का विभाजन मूलतः ब्राहम्ण क्षत्रीय वैस्य और शूद्र के रूप में हुआ जिसमें मुक्ति की इच्छा रखने वाले तत्व ज्ञानी और सामाज को दिशा देने वाले ब्राहम्ण के रूप में जाने गये। किसी भी तरह के आतंक एवं अत्याचार के विरूद्ध संरक्षण देने वाले, जनता के हितों की रक्षा करने वाले क्षत्रीय एवं अर्थोपार्जन में रूचि लेने वाले वैश्य तथा निम्न आचरण एवं निंदित कार्य (हत्या चोरी व्यभिचार आदि) करने वाले शूद्र के रूप में जाने जाते थे। इन्हीं कार्यों के आधार पर सामाज में जाति का निर्धारण होता था जैसा कि ऋग्वेद में भी एक जगह एक ब्यक्ति द्वारा उदथृत करते हुए दर्शाया गया है कि ''मैं एक कवि हूं मेरे पिता मंत्रों की रचना करने वाले एक ऋषि हैं और मेरी मां आटा पीसने वाली का काम करती है।''[३]

यह व्यवस्था विकृत होकर कर्म के बजाय जन्म के आधार पर व्यवहृत होने लगा। इस कारण समाजमें ऊंच नीच एवं भेद भाव छुआ छूत की एक बड़ी खाई तैयार हो गयी जिससे सामाजिक विद्वेषएवं असमान्ता दिनों दिन बढ़ती ही गयी। विवेकानन्द जाति प्रथा को पूर्णतः मिटाने या समाप्त करने के पक्षधर नहीं हैं अपितु इस ब्यवस्था को मूल रूप से ब्यावहार में लाये जाने के पक्ष मे है। 'ब्राहम्ण' उनके लिए एक जाति नहीं अपितु मानवता का उच्च आदर्श है और आदर्श को अपने आचरण द्वारा शूद्र चांडाल मेहतर कोई भी प्राप्त कर सकता है इस आधार पर वे भारत में प्रत्येक मनुष्य को ब्राह्मण बनाने की योजना रखते है। जहां ऊँच नीच एवं भेद भाव अस्वीकार है।

१. विवेकानन्द साहित्य - १, पृ० २७०
२. वही -१ पृ० २७४
३. ऋगवेद, दसम् खण्ड, पुरुष सूक्त

पाश्चात्य देशों में भारतीय जाति व्यवस्था पर बोलते हुये विवेकानन्द कहते हैं - ''मै जातियों को किसी प्रकार मिटाने की बात नहीं कहता। जाति प्रथा बहुत अच्छी व्यवस्था है। जाति वह योजना है, जिसके अनुसार हम चलना चाहते हैं। जाति वास्तव में क्या है, यह लाखों लोगों में से एक भी नही समझता। संसार मे एक भी देश ऐसा नही है, जहाँ जाति भेद न हो। भारत में हम जाति के द्वारा ऐसी स्थिति में पहुँचते हैं जहाँ जाति नही रह जाती। जाति प्रथा इसी सिद्धांत पर आधरित है। भारत में योजना है कि प्रत्येक मनुष्य को ब्राह्मण बनाया जाये। ब्राह्मण मानवता का आदर्श है, यदि आप भारत का इतिहास पढ़ेंगे; तो पायेंगे कि सदा नीचे वर्गों को ऊपर उठाने का प्रयत्न किया गया है। बहुत से वर्ग हैं जो उपर उठाये गये हैं और भी उठाये जायेंगे, जब तक कि सब 'ब्राह्मण' नहीं हो जायेंगे।[१]

स्वामीजी जाति के आधार पर भेद-भाव का विरोध करते हुए कहते हैं - ''पर हम अपने आप को 'मत छुओवाद' में बिल्कुल सम्मिलित नहीं करना चाहते। वह हिन्दू धर्म नहीं है, वह हमारे किसी ग्रन्थ में नहीं है, वह एक सनातनीय अन्धविश्वास है, जिसने हमारी राष्ट्रीय क्षमता को सदा हानि पहुँचायी है।[२]

भारतीय समाज की विविधता को स्वीकार करते हुये वे सतर्क करते है कि इसमें संकीर्णता का भाव नहीं आना चाहिए। जिससे कट्टरता और भेद -भाव को बढ़ावा मिले उसका परित्याग कर देना चाहिए। कितने आश्चर्य की बात है यदि कोई किसी की थाली छू दे, तो वह चिल्ला उठता है- परमात्मा ऊबार लो, मैं भ्रष्ट हो गया। इस प्रथा को हम सब को मिल कर मिटाना होगा। अपने गुरू रामकृष्ण देव का स्मरण करते हुये, उनके द्वारा सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण होते हुये भी एक पेरिया (नीच चाण्डाल)के घर को साफ करने की ईच्छा रखना (गुप्त रूप से उन्होंने यह कार्य किया भी) जाति के आधार पर सामाजिक समन्वय रखने का ऐसा उदान्त उदाहरण प्रस्तुत करने पर विवेकानन्द आह्लादित होते हुये कहते हैं ''यदि मैं पेरिया होता तो मुझे और आनन्द आता।[३] इसी भावना को अन्यत्र ब्यक्त करते हुये उन्होंने कहा'' तुम मत भूलना कि नीच, अज्ञानी,दरिद्र चमार और मेहतर तुम्हारा रक्त तुम्हारा भाई है।''[४]

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ४ पृ० २५३   २. वही - ४ पृ० २६४

३. वही - ५ पृ० १०५   ४. वही - ९ पृ० १८३

सभी मनुष्य में एक ही आत्मा,एक ही तत्व का निवास है । सभी एक ही तत्व से निर्मित हैं इस बोध के साथ विवेकानन्द कहते है कि सभी मनुष्यो को एक साथ भोजन करने और एक साथ रहने में कोई बुराई नहीं है । भारत के दीन - हीन और पद्दलित जाति के लोगों को उनका स्वरूप समझा देना आवश्यक है । जाति - पाति का भेद - भाव को छोड़कर प्रत्येक नर - नारी तक यह संदेश पहुँचाओ कि ऊँच - नीच ,अमीर - गरीब ,छोटे - बड़े सभी में उसी एक अनन्त आत्मा का निवास है , जो सर्वब्यापी है । अतः सभी लोग महान बन सकते हैं ।[१]

'आत्मवत सर्वभूतेषु' सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के समान देखना, इस बोध वाक्य के आधार पर वे जन-जन तक सामानता का सन्देश पहुँचाना चाहते थे । उनके अनुसार 'मत छुओवाद' एक प्रकार का मानसिक रोग है । दूसरों के स्पर्श से ही अपवित्र हो जाने वाला, कैसे किसी को पवित्र कर सकेगा। समभाव का विकास, जीवन की पूर्णता व संकीर्णता जीवन की अपूर्णता है ।[२] इस तरह वे सभी प्रकार के भेदभाव का विरोध करते हैं । मद्रास के ब्राह्मणो द्वारा शूद्र को 'वेद'का अनाधिकारी कहने पर वे कह उठते हैं - ''यदि मैं शूद्र होऊँ, तो हे मद्रास के ब्राह्मणों आप लोग शूद्र से भी अधम होवें ।[३]

स्वामी विवेकानन्द सभी मनुष्यों को वेद एवं यज्ञोपवीत का अधिकारी मानते हैं । इस तरह वे समाज में पूर्णतः एकता व समता के पक्षधर हैं । जन्म के आधार पर किसी भी भेदभाव का वे विरोध करते हैं । उच्चता का स्थान अच्छे आचरण एवं कर्म से है, मानते हुये वे सभी को इसका अधिकारी समझते हैं । समाज के निचले वर्ग को उठाकर सामान्य जन के बीच प्रतिस्थापित करने की बात करते हुये वे कहते हैं -''निम्न वर्ग के बीच जाकर स्कूल खोलिए और उनके गले में यज्ञोपवीत डालिये ।[४] समाज के शिक्षित एवं उच्च वर्गो को निम्न वर्ग के उद्धार एवं उनके परोपकार की प्रेरणा देते हुये वे कह उठते हैं-''दूसरों के लिए क्या एक जनम नही दे सकते । अगले जनम में आकर वेदान्त आदि पढ़ लेना । इस बार दूसरे के उद्धार के लिए शरीर दे दे,तभी समझूँगा कि मेरे पास आना सार्थक हुआ ।''[५] उक्त कथन के अलोक में हम स्वामी जी के जन जन के उद्धार की उदात्त भावना को देख सकते हैं ।

१. युग नायक विवेकानन्द - ३ पृ० १९
२. विवेक ज्योति वर्ष - ३५ अंक - १ पृ० १०
३. विवेकानन्द साहित्य - ३ पृ० ३०
४. वही
५. वही - ६ पृ० ३६१

नारी उत्थान

स्वामी विवेकानन्द 'नारी' को शक्ति का केन्द्र मानते हुये उन्हें समाज में महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। एक जागरुक एवं सक्षम नारी के द्वारा ही आदर्श समाज एवं पीढ़ी का निर्माण किया जा सकता है। उनका मंतव्य है - "स्त्रियों की अवस्था में सुधार किये बिना जगत के कल्याण की कोई संभावना नहीं है। स्त्री और पुरुष समाज रूपी पक्षी के दो पंख है, जिसे ऊपर उठाने के लिए दोनों पंखों के सहयोग की आवश्यकता होगी, क्योंकि पक्षी के लिये एक पंख से उड़ना असम्भव है।"[१]

स्वामीजी नारीयों के प्रगति और उत्थान के लिए उनके शिक्षित होने के लिये सबसे अधिक बल देते हैं , क्यों कि शिक्षा ही वो जादू है, जिससे नारियों की स्थिति में आश्चर्यजनक सुधार लाया जा सकता है और किसी तरीके से इनकी उत्थान की बात सोचना अधूरा ही होगा। शिक्षा के द्वारा सक्षम बना देने पर ये अपने उद्धार की बातें स्वयं ही सोचने लगेंगी।

भारतीय नारियों में उत्साह एवं आत्म बल का संचार करते हुये उन्हें उनकी दीन-हीन अवस्था से बाहर निकालने के लिए वे बार-बार उद्घोष करते हैं - "मत भूलना कि हमारी स्त्रियों का आदर्श सीता, सवित्री और दमयन्ती हैं।" उनके मन में नारियों के प्रति असीम उदारता और सम्मान का भाव है। वे कहते है -"ईसा अपूर्ण थे क्योंकि जिन बातों में उनका विश्वास था, उन्हें वे अपने जीवन में नहीं उतार सके। उनकी अपूर्णता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उन्होंने नारियों को नरों के समकक्ष नहीं माना। असल में उन्हें यहूदी संस्कार जकड़े हुये था, इसीलिये वे किसी भी नारी को अपनी शिष्या नहीं बना सके।"

इस तरह स्वामी जी पाश्चात्य जगत में नारियों की आदर्शात्मक स्थिति का आकलन कर उनसे भारतीय नारियों की श्रेष्ठता स्थापित करते दिखते हैं। वे गौतम बुद्ध को ईसा से श्रेष्ठ मानते हैं, क्यों कि बुद्ध ने नारियों को भी भिक्षुणी होने का अधिकार दिया है। इसतरह बुद्ध व ईसा के नारी विषयक चिंतन के सापेक्ष में भारतीय नारियों की श्रेष्ठता सिद्ध होती है।

१- विवेकानन्द साहित्य - ४ पृ० ३१७

वेदान्त के मूल सिद्धांत, सब में एक ही आत्मा निवास करती है, के आधार पर स्वामी जी नारियों को किसी भी स्तर से हीन या कमजोर के रूप में नहीं देखते- नारी जाति के प्रति सभी तरह की संकीर्णताओं का बिरोध करते हुये वे कहते हैं - ''तुम लोग नारियों की सदैव निंदा ही करते रहते हो, किन्तु कह सकते हो कि उनकी उन्नति के लिये अब तक क्या किया है, स्मृतियाँ रचकर तथा गुलामी की कड़ियाँ गढ़कर पुरुषों ने नारियों को बच्चा जनने की मशीन बना कर छोड़ दिया है........इससे ज्यादा कुछ नहीं।''[१]

नारी जाति की उपेक्षा से किसी भी समर्थ समाज की स्थापना नहीं की जा सकती। इस सम्बन्ध में विवेकानन्द चेतावनी देते हुये कहते हैं - ''मत भूलो कि नारियाँ महाकाली की साकार प्रतिमायें हैं। यदि तुमने इन्हें ऊपर नहीं उठाया तो यह मत सोचना कि तुम्हारी अपनी उन्नति का अन्य कोई मार्ग है। संसार की सभी जातियाँ नारियों का समुचित सम्मान करके ही महान बनी हैं जो जाति नारियों का सम्मान करना नहीं जानती, वह न तो अतीत में उन्नति कर सकी है और न आगे ही उन्नति कर सकेंगी।

भारत के नारी समाज के लिये पुरूष की अपेक्षा सच्चे संगिनी की आवश्यकता पर बल देते हुये वे अपनी शिष्या निवेदिता को सम्बोधित करते हुये वे कहते हैं - ''भारत में नारियों की स्थिति में सुधार के लिये कई कठिनाइयाँ भी हैं। यहाँ पर दुःख अंधविश्वास तथा दासत्व का जो साम्राज्य है उसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। इस देश में आने से तुम्हें अर्धनग्न नारियों के एक ऐसे समूह के बीच निवास करना होगा, जिनमें जाति एवं स्पर्श विषयक अद्‌भुत विचार है, जो भय अथवा घृणा के कारण गोरों से दूर ही रहना चाहती हैं और गोरे लोग भी उनसे अत्यंत घृणा करते हैं । दूसरी ओर तुम्हें अपने देश के गोरे लोग भी सनकी समझेंगे और तुम्हारी हर गतिबिधि को शक की दृष्टि से देखेंगे यदि तुम इन बातों के उपरांत भी कर्म में लग सकने का साहस कर सको तो तुम्हारा शत् बार स्वागत है।[२]

भारत देश में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति पाश्चात्य देशों से बहुत ही भिन्न है। इस सम्बन्ध में स्वामी जी कहते हैं,'' मैने भारत में कभी किसी स्त्री को हल के साथ जोते जाते या कुत्ते

---

१. विवेकानन्द साहित्य

२. विवेक ज्योति वर्ष - ३१ अंक - ३ पृ० ७२

के साथ गाड़ी खींचते नही देखा है, जैसा यूरोप के कुछ देशों मे होता है।''[१] स्त्रियों के सामाजिक एवं पारिवारिक संदर्भ में भारत एवं पाश्चात्य देशों में उनकी स्थिति का तुलनात्मक विश्लेषण करते हुये वे कहते हैं - ''पश्चिम में स्त्री एक पत्नी है । वहाँ पत्नीके रूप में ही स्त्रीत्व का भाव केन्द्रित है, किन्तु भारत में जन साधारण समस्त स्तृत्व को मातृत्व में ही केन्द्रीभूत मानते हैं । पाश्चात्य देशों में गृह की स्वामिनी और शासिका पत्नी है । भारतीय गृहों में घर की स्वामिनी और शासिका माता है । पाश्चात्य देशों में यदि माता हो भी तो उसे पत्नी के अधीन रहना पड़ता है, क्यों कि घर पत्नी का है । हमारे घरों में माता सदैव रहती है और पत्नी अनिवार्यतः उसके अधीन होती है । आदर्श की इस भिन्नता पर ध्यान दीजिये ।[२] इस तरह हम देख सकते हैं कि भारत में भावना के स्तर पर नारी का स्थान कितना उच्च और विशिष्ट है । अनेक अच्छाइयों के होते हुये भारतीय समाज में नारी जाति के प्रति कुछ न्यूनतायें भी दृष्टिगोचर होती हैं । जिसमें बहु-विवाह, बाल -विवाह विधवा की दयनीय स्थिति एवं भेद - भाव प्रमुख है ।

विवेकानन्द ने बाल - विवाह को समाज का कलंक मानते हुये इसे मिटाने के लिये नवयुवकों को प्रेरित किया । स्वामीजी के बाल विवाह के प्रति मुखर विरोध को व्यक्त करते हुये हरि पाटल मित्र लिखते हैं - '' मैंने पहले से ही स्वामी को बाल - विवाह के विरुद्ध देखा, वे सदैव सभी को, विशेषतः बालकों को हिम्मत बाँधकर समाज के इस कलंक के विरोध में खड़े होने के लिये उपदेश देते थे ।[३]

बाल विवाह के दुष्परिणामों की ओर स्वामी जी ने समाज का ध्यान आकर्षित किया । बाल-विवाह की धार्मिक व्याख्या करने वालों को उन्होंने धिक्कारते हुये लिखा (इग्लैण्ड से स्वामी ब्रह्मानन्द को १८९८ के लिखित पत्र में) - आठ वर्ष की कन्या के साथ तीस वर्ष के पुरुष का विवाह करके कन्या के पिता - माताओं के आनन्द की सीमा नहीं होती............इस काम में बाधा पहुंचाने से वे कहते हैं - कि हमारा धर्म ही चला जायेगा। आठ वर्ष की लड़की के गर्भाधान की जो वैज्ञानिक व्याख्या करते हैं, उनका धर्म कहाँ का धर्म और कैसा धर्म है ?[४]

---

१. विवेकानन्द साहित्य - १ पृ० ३१७
२. वही पृ० ३१०
३. वही - १० पृ० ३२२
४. वही - ४ पृ० ३०८

स्वामी विवेकानन्द सिद्धान्ततः विरक्त एवं संन्यासी होने से, मुक्ति को ही जीवन का चरम लक्ष्य मानने के कारण, विधवा स्त्रियों के पुनर्विवाह की बात न सोच कर वे इसे एक मुक्ति के अच्छे अवसर के रूप में देखते हैं । उनके अनुसार धार्मिक स्त्री विधवा होने पर कहती है - परमात्मा ने मुझे अधिक अच्छा अवसर दिया है, मुझे अब बिवाह करने की क्या जरूरत है । मुझे ईश्वर की पूजा अर्चना के बदले किसी पुरुष से प्रेम करने की क्या आवश्यकता है ।

विधवा के विवाह न करने के सम्बन्ध में उनका एक तर्क और है कि प्रथम दो वर्णो में स्त्रियों की संख्या पुरुषों से बहुत अधिक है ।इससे एक दुविधा उत्पन्न हो गयी है। एक तरफ विवाह न करने वाली विधवाओं की समस्या है तो दूसरी ओर पति न पाने वाली नवयुवतियों का प्रश्न है ? इन दोनो में से किसी एक पर विचार करना होगा........ यदि उनका (विधवाओं का) अवसर खो गया, फिर भी यह मानना ही होगा कि उन्हें एक अवसर तो मिला ही था, अतः बैठ जाइये, चुप होकर जरा इन गरीब लड़कियों के बारे में विचार कीजिये, जिन्हें विवाह करने का एक भी अवसर नही मिला । अतएव उन्होंने विधवाओं के प्रति कहा - ''तुम्हें तो अवसर दिया गया, अब हमें इसका बहुत अधिक दुःख है कि तुम्हारे ऊपर भयंकर बज्रपात हुआ पर अब हम कुछ नही कर सकते क्यो कि दूसरी कुवारियाँ भी प्रतीक्षा कर रही है''।[१]

इसका अर्थ यह नहीं निकालना चाहिए की स्वामी विवेकानन्द ने विधवाओं के समस्या की अनदेखी की । वे विधवा के शोषण, दमन एवं अत्याचार के पूर्णतः विरोधी थे एवं उनके स्वतंत्र विकास के हिमायती थे ।इस तरह सिद्ध होता है कि वे नारी जाति के उत्थान, विकास एवं समता के प्रखर वक्ता बनते हुए, इनसे सम्बन्धित समाज में व्याप्त सभी कुरीतियो का जड़ से उन्मूलन करने के लिए भारतवासियों का आवाह्न करते हैं । नारी को भोग की वस्तु न समझ वे इन्हें शक्ति के केन्द्र के रूप में देखते हैं और मानते हैं कि नारी जगत के उत्थान के बिना न तो कोई समाज उन्नति कर सकता है और न ही सभ्य कहला सकता है । इस तरह हम कह सकते है कि स्वामी विवेकानन्द नारी उत्थान के प्रति कटिबद्ध थे ।

---

१. विवेकानन्द साहित्य -१ पृ० ३१८

शिक्षा

विवेकानन्द ने सामाजिक उन्नति एवं राष्ट्रीय उत्थान के लिए शिक्षा को सर्वाधिक महत्व दिया। वे शिक्षा को व्यक्ति एवं समाज के लिए अनिवार्य अंग मानते हैं । उनका विचार है कि शिक्षित समाज के द्वारा ही सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं का निदान किया जा सकता है । शिक्षा के विकास से ही समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं अन्धविश्वासों को समूल नष्ट किया जा सकता है । वे तत्कालीन भारतीय शिक्षा प्रणाली, जो केवल बाबुओं का निमार्ण कर रही थी, से पूर्णतया असंतुष्ट थे । विकेकानन्द के अनुसार - ''मनुष्य के भीतर पहले से विद्यमान पूर्णता की अभिव्यक्ति ही शिक्षा है, इसी पूर्णता के लिए जब तक उचित वातावरण का सृजन नही होता तब तक कोई भी विकास संभव नही है ।''

शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष पर बल देते हुए वे इसे सर्वांगीण विकास से जोड़कर देखते हैं । उनका मत है कि हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिससे चरित्र निर्माण हो, मानसिक शक्ति बढ़े, बुद्धि विकसित हो और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा होना सीखे । शिक्षा की महत्ता प्रतिपादित करते हुये विवेकानन्द कहते हैं - ''जब तक इस देश में अध्यापन और शिक्षा का भार त्यागी और निस्पृह पुरुष वहन नहीं करेंगे, तब तक भारत को दूसरे देशों के तलवे चाटने पड़ेंगे ।[१]

शिक्षा के प्रसार हेतु विवेकानन्द एक विश्वविद्यालय के स्थापना करने की तीव्र इच्छा रखते थे परन्तु दुर्भाग्यवश (अल्पसमय में ही देहान्त होने से) उनकी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी, परन्तु इस विचार से उनके शैक्षिक प्रसार के चिन्तन को समझा जा सकता है । वे जानते थे कि शिक्षा ही ऐसी सीढ़ी है, जिस पर चढ़कर व्यक्ति अंधकार से प्रकाश की ओर एवं पतन से उत्थान की ओर जा सकता है ।

शिक्षा के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण सामान्य प्रचलित पद्धति से पूर्णतः भिन्न है । उनका मत है कि कार्यालयों में बाबू बनाने की अपेक्षा चरित्र निर्माण में सहायक होने वाली शिक्षा का प्रसार होना चाहिए । छात्रों का चरित्र बज्र के समान दृढ़ होना चाहिए । ऐसे युवकों के अस्थियों से

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ८ पृ० ६

ही वह बज्र तैयार होगा जो भारतीय दासता की बेड़ियों को चूर-चूर कर देगा। उन्होंने चुनौती देते हुए कहा -''यदि आप मुझे योग्य शिक्षित लड़के दे सके, तो मै पूरी पृथ्वी को आन्दोलित कर दूँगा।''[१]

विवेकानन्द गरीब एवं पिछड़े वर्ग को अन्न एवं द्रव्य देने की अपेक्षा उन्हे शिक्षित करने पर ज्यादा बल देते हैं, उनका मत है कि ''चावल का वितरण करके एक गाँव का भी अभाव दूर करना असंभव है बल्कि शिक्षा के द्वारा अभावग्रस्त व्यक्ति के अन्दर चेतना जागृत कर उसे चेतना की ओर उन्मुख करके उसका विकास संभव है।[२]

अपने शिष्यो को शिक्षा के कार्य हेतु प्रेरित करते हुये उन्होने कहा कि तुम लोगे ऐसे कार्य में लग जाओ, जिससे सामान्य वर्ग में शिक्षा का प्रसार हो सके। इसके लिए उनके बीच जाकर कहो कि तुम हमारे भाई हो, तुम हमारे शरीर के अंग हो, हम तुमसे घृणा नही प्रेम करते हैं। तुम्हारी ऐसी सहानुभूति पाकर ये लोग सौ गुने उत्साह के साथ शिक्षा ग्रहण के कार्य में लग जायेगे।[३]

शिक्षा के माध्यम से ही स्त्रियों एवं निम्न वर्ग के लोगों का वास्तविक और स्थिर विकास सम्भव है। स्वामी जी इनको शिक्षित करने का कार्य पवित्र यज्ञ करने के बराबर मानते हैं। वे उच्च शिक्षा प्राप्त युवकों को धिक्कारते हुये कहते हैं - ''जब तक करोड़ों मनुष्य मूर्खता तथा अज्ञानता में जीवन बिता रहे हैं, तब तक मैं उस प्रत्येक मनुष्य को देशद्रोही मानता हूँ, जो उनके व्यय से शिक्षित तो हुआ है, परन्तु उनकी ओर तनिक भी ध्यान नही देता।''[४]

विवेकानन्द गरीबी को ही अशिक्षा की जड़ मानते हैं क्यो कि गरीबी के कारण कोई भी व्यक्ति, जिनका पेट भरना ही मुश्किल है, अपने बच्चों को विद्यालय कैसे भेज सकता है। अर्थ के अभाव में माता - पिता अपने बच्चों को धन कमाने (मजदूरी आदि) में लगा देते हैं। इस समस्या के समाधान के लिए उनका मत है - अगर गरीब लड़का शिक्षा ग्रहण करने के लिये विद्यालय न आ

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ५
२. वही - ६ पृ० ३५०
३. विवेक ज्योति वर्ष - ३१ अंक - ३ पृ० १७
४. शिक्षा, संस्कृति और समाज - २ पृ० ३७०

सके तो शिक्षा को ही उसके पास जाना पड़ेगा। इसी सम्बन्ध में वे पटियाला के राजा को एक पत्र के माध्यम से लिखते हैं - ''गरीबी ! उनको शिक्षा देने में मुख्य बाधा है । मान लीजिये महाराज, आपने हर एक गाँव में एक निःशुल्क पाठशाल खोल भी दी तो इससे कुछ लाभ न होगा, क्योकि भारत में गरीबी ऐसी है कि गरीब लड़के पाठशाला जाने के बजाय खेतों में अपने माता पिता को मदद देने या किसी दूसरे उपाय से राटी कमाने में लग जाते है । ऐसे गरीब लड़कों के लिए शिक्षा को ही उनके पास जाना पड़ेगा।[१]

प्रत्येक देश की उन्नति वहाँ की शिक्षा पर निर्भर करता है क्योकि अशिक्षित होने पर उन्नति एवं विकास को नही समझा जा सकता है । प्रत्येक देश उसी अनुपात में उन्नत होता है, जिस अनुपात में वहाँ के जन समूह में शिक्षा तथा बुद्धि का प्रसार होता है । इसकी पुष्टि करते हुये वे कहते हैं - ''भारतवर्ष के पतन का मुख्य कारण यह रहा है कि मुट्ठी भर लोगों ने देश की सम्पूर्ण शिक्षा और बुद्धि पर एकाधिपत्य कर लिया तथा समाज के एक बड़े वर्ग को इससे वंचित कर दिया ।''[२]

वे शिक्षा का बिना किसी जातीय एवं सामाजिक भेद-भाव के समानता के साथ प्रसार के पक्षधर थे। जैसा कि उन्होंने अमेरिका से १८९५ में 'ब्रह्मानन्द' को सम्बोधित पत्र में कहा भी है – ''यदि निम्न श्रेणी के लोगो को शिक्षा दे सको तो कार्य हो सकता है, ज्ञान बल से बढ़कर और क्या बल है! क्या उन्हे शिक्षित बना सकते हो? बड़े आदमियों ने कब किस देश में किसका उपकार किया है ? सभी देशों में मध्यमवर्गीय लोगों ने महान कार्य किया है ।[३]

शिक्षा के द्वारा ही जन समुदाय में वैचारिक प्रखरता एवं बौद्धिक क्षमता का उदय होगा, जिससे वे राष्ट्र की मुख्य धारा में शामिल हो सकेगे । इस सम्बन्ध में विवेकानन्द कहते है - ''उनमें तरह-तरह के विचार पैदा करने होगे । उनके चारो ओर दुनिया में कहाँ क्या हो रहा है इस सम्बन्ध में उनकी आखे खोल देनी होगी, इसके बाद फिर वे अपना उद्धार कर लेंगे क्योकि

---

१. विवेकानन्द साहित्य - २ पृ० ३७०
२. वही - ४ पृ० ३४
३. वही - ४ पृ० ३१५

प्रत्येक जाति, प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री को, अपना उद्धार अपने आप ही करना होगा। अस्तु उनमें वैचारिक चेतना उत्पन्न कर दो। उन्हे इसी एक सहायता की जरूरत है इसके फलस्वरूप बाकी सब कुछ तो अपने आप ही हो जायेगा।''[१]

समाचार पत्र और पुस्तकें समाज में चेतना फैलाने का कार्य करती हैं। विवेकानन्द इनकी आवश्यकता महसूस करते थे। इसी के कारण वे हिन्दी में अपना एक पत्र निकालना चाहते थे, जिससे विशाल हिन्दी भाषी क्षेत्र में चेतना फैलाई जा सके। स्वामीजी अपने जीवन में 'ब्रह्मवादिन', 'प्रबुद्ध भारत', 'उद्‌बोधन' तथा तीन अंग्रेजी पत्रिकाओं का प्रर्वतन कर संचालन करते थे। साथ ही कई अन्य का पत्रिकाओं के प्रर्वतन में (वसुमती, डॉन आदि) परोक्ष रूप से उनका हाथ था। उनकी भावधारा को मूर्त रूप प्रदान करने वाली ये पत्रिकायें आज भी समाज को नयी दिशा दे रही हैं।[२]

विवेकानन्द जनता को उन्ही की भाषा में शिक्षित करने एवं पत्र - पत्रिका संचालित करने के पक्षधर थे, इसी क्रम में सभी भाषा - भाषी की भावनाओं व अपेक्षाओं को ध्यान में रख कर वे एक ऐसी पत्रिका निकालना चाहते थे, जो आधा हिन्दी में हो तथा आधा बंगला में तथा हो सके तो अंग्रेजी में भी। ब्रह्मानन्द को यही निर्देश देते हुये वे लिखते हैं — ''तुम लोगों को एक मासिक पत्रिका का संम्पादन करना होगा, जिसमें आधी बंगला रहेगी और आधाी हिन्दी तथा हो सके अंग्रजी भी।''[३] इसके लिए त्याग एवं धैर्य की आवश्यकता पर बल देते हुए वे आलासिंगा पेरुमल को पत्र में लिखते हैं - ''यदि हो सके तो समाचार पत्र और मासिक पत्रिका दोनो ही निकालो........पल भर के लिए भी विचलित न होना।''

इस तरह हम देखते हैं कि विवेकानन्द शिक्षा के उत्थान एवं इसके समाज के सभी वर्गो में समान रूप से प्रसार के हिमायती थे। वे इसे प्रत्येक व्यक्ति एवं राष्ट्र के लिए अनिवार्य मानते थे, क्यों कि शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति नयी-नयी ऊँचाईयों को छूता है। इसके अभाव में वह केवल पशु ही है।

---

१. विवेकानन्द साहित्य - २ पृ० ३७०

२. विवेक ज्योति वर्ष - २५ अंक - ४ पृ० ५६

३. विवेकानन्द साहित्य - ८

विश्व बोध

विवेकानन्द ने अपने उदात्त मानवीय चिन्तन के कारण देश और काल की सीमा को लाँघकर विश्वबोध से अनुप्राणित होकर पूरे विश्व की शोषित, पीड़ित और उपेक्षित मानवता के प्रति संवेदना व्यक्त किया। अमेरिका के धर्म महासभा में उनका सम्बोधन भी इसी भाव को व्यक्त करता है - "मेरे मित्रों! पहले मनुष्य बनो, तब तुम देखोगे बाकी चीजे स्वयं तुम्हारा अनुसरण करेंगी। परस्पर के घृणित द्वेष भाव को छोड़ो और सदुद्देश्य, सदुपाय, सत्साहस एवं सद्वीर्य का अवलम्बन करो।"[१]

वे अंग्रेजी साहित्य के उत्कट विद्वान थे। उनके धर्म प्रचार का लम्बा समय पाश्चात्य देशो में बीता। उन्होने 'हर्बर्ट स्पेंसर' व 'जान स्टुअर्ट मिल' का अध्ययन किया था। वे शेली के सर्वात्मवाद और वर्ड्सवर्थ की दार्शनिकता को पसन्द करते थे। 'हीगेल' के वस्तु निष्ठात्मक आदर्शवाद का उन्होंने अध्ययन किया था। पाश्चात्य साहित्य और दर्शन के ज्ञान के बाद उससे भारतीय साहित्य व दर्शन का समन्वय स्थापित करते हुए उन्होंने निकर्ष निकाला कि दोनो के आधार पर एक वृहत्तर सम्बन्ध हो सकता है, जिसका पारिणाम मानव मात्र के लिए हितकर होगा। वे कहते हैं - "भारत में समाज की बेड़ी को तोड़ना होगा और यूरोप में धर्म की बेड़ी को। तभी मनुष्य का आश्चर्य जनक विकास और उन्नति होगा।"[२]

इनमें यूरोपीय सभ्यता की वह प्रवृत्ति अत्यन्त मुखर थी, जो निरन्तर खोज और सतत् अनुसंधान में लगी रहती है, जो किसी भी कथन को प्रमाण नही मानकर, प्रत्येक विषय का विश्लेषण करना चाहती है तथा जो सत्य की खोज में विवेक और बुद्धि को छोड़कर और किसी वस्तु का सहारा नहीं लेती। विवेकानन्द यूरोपीय विचारधाराओं के मूर्तिमान रूप हैं एवं उनके भीतर वे सारे संस्कार वर्तमान हैं जिनके कारण अंग्रेजी पढ़े - लिखे हिन्दू, हिन्दू धर्म की आलोचना करते हैं। इस कारण वे इन आलोचकों को उन्ही की भाषा में समझाने में सफल रहे।

संसार के सभी देशों के पीड़ित मानवता के उपकार हेतु वे पाश्चात्य

---

१. विवेकानन्द साहित्य - १० पृ० ६२
२. वही - २ पृ० ७०

देशो में, जहाँ वैभव व विलास है परन्तु शान्ति नही है, वहाँ निवृत्ति मार्ग की ओर भारत, जहाॅ धर्म व शील तो है परन्तु सर्वत्र निर्धनता व दारिद्रय है, वहाँ पर प्रवृत्ति मार्ग की आवश्यकता पर बल देते हैं । वे सभी राष्ट्रो के सम्मेलन से ऐसे चरित्र की कल्पना करते थे, जिसमें फ्रांसीसी जातीय मेरुदण्ड 'राजनीतिक स्वतंत्रता', अंग्रेजी जातीय चरित्र, 'आर्थिक स्वतंत्रता' और हिन्दू जातीय चरित्र 'मुक्ति' या 'आध्यात्मिक स्वतंत्रता' का समन्वय हो ।

स्वामी जी भारत में रजोगुण के अभाव और पश्चिम में सत्व गुण के अभाव की चर्चा करते हुये इन दोनो के आपसी समन्वय से अभाव की चर्चा करते हुये इन दोनो के आपसी समन्वय से एक विश्व के निर्माण की सम्भावना व्यक्त करते हैं । 'प्राच्य' एवं 'पाश्चात्य' की एकता के कुछ परिणाम उन्हें दिखने लगे थे क्यो कि परस्पर राष्ट्रों में मेलजोल बढ़ता जा रहा था और उनका दृढ़ विश्वास था कि एक दिन ऐसा आयेगा, जब राष्ट्र नामक कोई वस्तु नही रह जायेगी । राष्ट्र- राष्ट्र का भेद दूर हो जायेगा ।

शिकागो के 'धर्म महासभा' में वे सभी धार्मिक संकीर्णताओं को तोड़कर पूरे विश्व के धर्म में समन्वय स्थापित करते हैं । 'धर्म महासभा' का उद्‌देश्य था कि संसार का सर्वोत्तम धर्म कौन सा है ? प्रत्युत्तर में स्वामी जी सभी धर्मों के मूल तत्व को एक बताते हुये हुये विश्व के सभी धर्म को सत्य व उत्तम मानते हुये सबका समन्वय करते हैं । वे किसी एक धर्म के प्रसार व प्रतिष्ठान का विरोध करते हुये सभी धर्मो के समान रूप से एक दूसरे के साथ मिलकर प्रगति करने के पक्षधर हैं । वे मानते हैं - ''एक दिन प्रत्येक जाति व प्रत्येक धर्म इसकी जाति व दूसरे धर्म के साथ आपस में भावों का आदान - प्रदान करेगा और अपनी - अपनी अन्तर्निहित शक्ति के अनुसार उन्नति की ओर अग्रसर होगा ।''[१] इस तरह हम देखते हैं कि विवेकानन्द वैश्विक धरा पर भी एकता, सहभागिता, शान्ति व समन्वय के साथ विकास के पक्षधर हैं ।

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ८

(घ) आर्थिक

आर्थिक चिन्तन

स्वामी विवेकानन्द संन्यासी और बैरागी होते हुए भी देश की अर्थव्यवस्था को उबारने एवं सामान्य जन को आर्थिक दुश्चक्र से निकालने के लिए कृत संकल्प थे। अंग्रेजो द्वारा भारतीय सम्पदा का अनवरत दोहन एवं भारत के कच्चे माल लेकर उस पर कई गुना दाम लगाकर, वही सामान बाजारों में लाकर भारतीयों के बीच विक्रय किया जाता था। इस तरह, इस दोहरे दुश्चक्र से भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ पूर्णतः टूट चुकी थी।

किसान और मजदूर अनवरत हाड़ - तोड़ परिश्रम करने के बाद भी दो वक्त की रोटी नही जुटा पाते। इस कारण वे ब्याज व सूदखोरी के विस्तृत जाल में निरंतर उलझते जा रहे थे। इस गहरे आर्थिक चक्र से बाहर निकलने का उनके पास कोई रास्ता नही था। कभी - कभी इसकी अंतिम परिणति गहन हताशा एवं निराशा के रास्तों से होते हुए आत्महत्या तक पहुँचा देती थी। दुःख की बात है कि इस भयावह स्थिति में भी न तो कोई इनकी सहायता करने वाला था और न ही उबारने वाला।

स्वामी विवेकानन्द इस विकृत आर्थिक प्रणाली से अनभिज्ञ नहीं थे। इसके लिए उन्होंने भारतीय उच्च वर्ग एवं अंग्रजों को समान रूप से धिक्कारा। अंग्रेजों के शोषण से क्षुब्ध होकर वे कह उठते हैं - ''वे हमारी गर्दन पर सवार हैं और अपने सुख, भोगो के लिए उन्होंने हमारे रक्त की अन्तिम बूँद तक चूस लिया है। वे हमारी करोड़ों की सम्पत्ति हरण कर ले जा रहे हैं। जब कि गाँव - गाँव में हमारी जनता भूँखों मर रही है। आगे वे कहते हैं कि भारत में धर्म का अभाव नही है, अभाव है तो रोटी का। हमारे देशवासी घोर निर्धनता में डूबे हैं और ऐसी बुरी स्थिति तक पहुँच चुके है कि मुट्ठी भर अन्न के अभाव में लाखों लोग प्राण त्याग देते हैं, और दूसरी ओर सुखोपभोग के लिए लाखों रूपये खर्च किये जा रहे हैं।''[१]

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ८

विवेकानन्द आर्थिक विकास को समानता एवं मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति से जोड़कर देखते हैं । प्रत्येक जीव के लिए भोजन उपलब्ध कराना उनकी आर्थिक प्राथमिकता है। उनका चितंन है कि एक तरफ कोटि - कोटि क्षुधार्थ नर - नारी शुष्क कंठ से रोटी - रोटी चिल्ला रहे हैं और हम उन्हे देते है पत्थर ।[१] जब तक देश का एक कुत्ता भी भूँखा है, तब तक मैं देश के प्रत्येक व्यक्ति को अपराधी समझता हूँ । पड़ोसी भूखा हो तो मंदिर में प्रसाद चढ़ाना बेइमानी है । मानवता दुर्बल हो तो यज्ञ में घी जलाना उसका तिरस्कार है ।[२] इस प्रकार हम देखते हैं कि वे आम जनता के उत्थान और विकास से जुड़ी आर्थिक प्रगति के पक्षधर हैं ।

अर्थ—धर्म समन्वय

विवेकानन्द धर्म एवं अर्थ को समान रूप से महत्व देते हुये इसके समन्वय के पक्षधर है। यूरोप में जहाँ अर्थ की प्रचुरता है लेकिन धर्म का अभाव है, वहाँ वे धर्म की शिक्षा देते हैं किन्तु भारत में धर्म तो बहुत है, अर्थ का अभाव है, इसलिए यहाँ वे आर्थिक समृद्धि की प्रेरणा देते हैं । वे पाश्चात्य एवं प्राच्य देशों के परस्पर, धर्म एवं अर्थ की सहायता लेकर समान रूप से विकास करने के पक्षधर हैं । स्वामीजी ने यूरोपवासियों को भारत में उद्योग एवं कारखाना लगाने के लिए प्रेरित किया । वे जानते थे कि आर्थिक समृद्धि से प्राप्त मजबूत मांसपेशियों पर ही धर्म अवस्थित होगा ।

विवेकानन्द देश को आर्थिक समृद्धि के लिए कर्मशील होने की शिक्षा देते है । उनका चितंन है कि देश के करोड़ों किसान - मजदूर ही इसके प्रॉंण हैं — ''जो छोटी-छोटी जातियाँ हैं वही लगातार काम करती जा रही हैं और अपने परिश्रम का वांछित फल भी नही प्राप्त कर पा रही हैं । इन लोगों ने मौन सहकर हजारो वर्षो तक अत्याचार सहा है । अब इनके कल्याण के लिए हमें विशेष प्रयास करने की आवश्यकता है ।''[२] इस सम्बन्ध में वे आलासिंगा पेरुमल को लिखे पत्र में अपनी बात इस तरह व्यक्त करते हैं — ''दुखी लोगो की सहायता करने में मैं विश्वास करता हूँ

---

१. युगनायक विवेकानन्द - ३ पृ० ८
२. विवेकानन्द साहित्य - ४
३. विवेक ज्योति वर्ष - ३१ अंक - ३ पृ० १५

और दूसरो को बचाने के लिए नरक तक जाने को तैयार हूँ।''[१]

वे भारत के सभी अनर्थों की जड़ को गरीबी और दुर्दशा मानते हुए उसके विकास के लिए आशवादी हैं – ''पाश्चात्य देशों के गरीब तो निरे दानव हैं, उनकी तुलना में हमारे यहाँ के गरीब देवता हैं। उनकी उन्नति करना सहज है''।[२] वे निर्धन की उन्नति एवं निम्नवर्ग की प्रगति की अपेक्षा रखकर चेतावनी देते हुए कहते हैं – ''गरीब ही देश के मेरुदण्ड हैं, जो अपने परिश्रम से अन्न उत्पन्न करते हैं। ये मेहतर, ये मजदूर यदि एक दिन काम करना बन्द कर दें तो पूरा देश हिल जाये परन्तु उनके साथ सहानुभूति रखने वाला कोई नही है।''[३]

विवेकानन्द का आर्थिक चिंतन उनके सामाजिक दर्शन में सन्निहित है। जो मानव मात्र के कल्याण की भावना से ओत - प्रोत है। वैश्विक अर्थव्यवस्था की विसंगति, जिसमें धनी व्यक्ति और धनी तथा गरीब और गरीब बनता जा रहा था, से वे सन्तुष्ट नही थे। वे समता के साथ, सभी के समान रूप से उन्नति के पक्षधर थे। इस सम्बन्ध में वे अपने को समाजवादी मानते हुये कहते हैं -- ''मैं समाजवादी हूँ इसलिए नही कि मै, उसे सभी बातों में पूर्ण मानता हूँ , वरन इसलिए की अन्धे मामा से काना मामा अच्छा है''।[४]

स्वामी जी बाहरी तौर पर जुलूस, आन्दोलन और हड़ताल के विरोधी थे। वे इसको आर्थिक अवनति का कारण मानते थे। उनका कहना है - ''लोग जुलूस निकाल रहे हैं और भी न जाने क्या-क्या कर रहे हैं, परन्तु इससे वे आर्थिक उन्नति नही कर सकते।''[५] वे मिल मालिक व मजदूर तथा जमींदार एवं कृषक के बीच समता स्थापित करके ही आर्थिक विकास का मार्ग देखते हैं। अर्थ, जीवन की मूलभूत आवश्यकता है, इसलिये न तो इसकी उपेक्षा की जा सकती है और न ही इससे पलायन। धार्मिक उन्नति एवं प्रगति के साथ आर्थिक उन्नति को भी समान महत्व देकर गैरिक वस्त्रधारी संन्यासी विवेकानन्द ने समाज को विभिन्न क्षेत्र में नयी दिशा प्रदान कर सभी को चमत्कृत कर दिया।

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ३ पृ० ३२४
२. वही - २ पृ० ३६९
३. शिक्षा संस्कृति और समाज पृ० ६१
४. वही पृ० ८१
५. युगनायक विवेकानन्द - ३ पृ० २

तृतीय अध्याय

द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य

(क) युगीन परिस्थितियाँ

(ख) समकालीन साहित्यकार

(ग) प्रवृत्तियाँ

(क) युगीन परिस्थितियाँ

युगीन परिस्थीतियाँ साहित्य पर अपना गहरा प्रभाव डालती हैं । सामाजिक धरातल पर होने वाले उठा - पटक एवं उथल - पुथल का साहित्य पर सीधा प्रभाव पड़ता है । हम देखते हैं कि भारतेन्दु युग में उस समय की परिस्थितियों का प्रभाव किस तरह साहित्य पड़ा । द्विवेदी युग में भी तत्कालीन परिस्थितियों ने एवं राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिर्वतन ने साहित्य पर प्रभाव डाला । भारतेन्दु हरिश्चद्र जैसे व्यक्तित्व के आगमन से हिन्दी साहित्य को नई दिशा मिली । हिन्दी साहित्य में गद्य विधाओं का आगमन कर उन्होंने भाषा साहित्य को आगे बढ़ाने का जो महान कार्य आरम्भ किया, समय के साथ उसमे विकृति आ गयी । भाषा की अच्छी जानकारी न रहने पर अनुवाद के कार्य में त्रुटियां आने लगी। भाषा साहित्य के क्षेत्र में अराजकता और उच्छृंखलता का वातावरण बन गया । इस घोर निराशा एवं गहन अंधकार के समय में साहित्य के उन्नयन हेतु पुनः एक धनी व्यक्तित्व का आविर्भाव होता है जिन्हें हम महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम से जानते एवं पहचानते हैं ।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती पत्रिका के सम्पादन के माध्यम से हिन्दी साहित्य को अराजकता एवं दोषपूर्ण रचना विधान के घेरे से उन्मुक्त करने का अथक एवं सार्थक प्रयास किया । तत्कालीन लेखकों को द्विवेदी जी ने नियम और अनुशासन में निवद्ध कर रचना करने को प्रेरित किया । इस तरह भाषा साहित्य को परिमार्जित एवं परिनिष्ठत कर हिन्दी साहित्य को एक नया आयाम दिया । अपने इस कार्य से द्विवेदी जी हिन्दी साहित्य में चिरस्मरणीय बन गये । विदेशी शासन के दमन एवं अत्याचार से मुक्ति के लिए जहाँ एक तरफ नेताओं ने आन्दोलन किया तो दूसरी ओर लेखकों ने अपनी लेखनी के द्वारा राष्ट्र एवं समाज में नयी चेतना फैलाने का प्रयास किया । युगीन परिस्थितियों का साहित्य पर जो प्रभाव पड़ा उसे हम विभिन्न भागों में बाट कर देखने का प्रयास करते हैं ।

राजनीतिक परिस्थिति :–

राष्ट्रीय चेतना का विकास भारतेन्दु युग मे आरम्भ हो चुका था ।

द्विवेदी युग ने इस चेतना को नयी गति एवं दिशा प्रदान की। उच्च शिक्षा एवं अग्रेंजी शिक्षा प्राप्त लोग अब पश्चिम की विचार धारा को समझने लगे थे। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रसार - प्रचार से साहित्य एवं समाज में नवजागरण की लहर दौड़ पड़ी थी। राष्ट्र के उत्थान की भावना के विकास से राजनैतिक क्षेत्र में एक नयी क्रान्ति पैदा हो गयी। अंग्रेजों की अनैतिक एवं कूटनीतिक चालों को जनता अब समझने लगी थी, जिससे जनता में अंग्रेजी शासन के प्रति आक्रोश बढ़ने लगा। इन विचारों की अन्तर्धारा को मूर्त रूप प्रदान करने के लिये भारतीय जनमानस को कांग्रेस के रूप में एक ऐसा मंच मिल गया जहाँ से वे अपनी भावनाओं एवं विचारों को प्रकट कर सकते थे। कालांतर में कांग्रेस में भी दो दल उभरने लगे। एक विचारों की उग्रता के कारण 'गरम दल' तो दूसरा लचीले पन की धारणा से नरम दल कहलाया। दादाभाई नौरोजी, गोपाल कृष्ण गोखले, महात्मा गाँधी आदि नरम दल तो बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय , विपिन चन्द्र पाल एवं अरविन्द घोष गरम दल के नेता थे। प्रारम्भ में नरम दल का कांग्रेस के भीतर प्रभाव अधिक था। अंग्रेजों की दमनकारी नीति, बेहिसाब लगान की वसूली, निरन्तर पड़ने वाले दुर्भिक्ष एवं अकाल की महामारी से जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी, उस पर सरकार की सैनिक कार्यवाही जनता के लिए असहय हो जाती थी। इसके बाद भी प्राकृतिक आपदाएँ एवं महामारी तो मानो जनता की रीढ़ ही तोड़ देती थी। प्लेग फैलने के समय अंग्रेज अफसरों के अनाचारों के विरोध में चापेकर बन्धुओं ने रैंण्ड एवं एम्हर्स्ट की हत्या कर दी। किसी भी भारतीय द्वारा अंग्रेज अधिकारी की यह प्रथम हत्या थी। इस तरह हम देखते हैं कि राष्ट्रीयता एवं अधिकारों की प्राप्ति के लिए आत्मघाती प्रतिक्रिया का प्रारम्भ इसी युग में होतां है। बदले में चापेकर बन्धुओं को फॉसी पर चढ़ा दिया गया। तिलक ने नव जागरण के लिए गणेश उत्सव एवं शिवाजी उत्सव प्रारम्भ किया। मराठी भाषा में 'केसरी' और अंग्रेजी भाषा में 'मराठा' पत्रिका का प्रकाशन कर जनता में नयी चेतना फैलाने का कार्य किया।

कसी भी युग को एक निश्चित समय सीमा में नहीं बांधा जा सकता है किन्तु कुछ महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर उसका अनुमान लगाया जा सकता है। द्विवेदी युग के सम्बन्ध में भी ऐसा ही माना जा सकता है। लगभग १९०० से १९२० तक के काल खण्ड को द्विवेदी युग के नाम से जाना जा सकता है। भारत के राजनैतिक क्षेत्र में उपर्युक्त कालखण्ड ऐतिहासिक हलचलों एवं उथल - पुथल से परिपूर्ण रहा है। इसी समय लार्ड कर्जन भारत का

वायसराय बन कर आया । वह साम्राज्यवादी नीति का कट्टर समर्थक था । उसकी जन विरोधी नीतियों एवं कार्यों से जनता को घोर कष्ट उठाना पड़ा । बंगाल का विभाजन (१९०५ ई०) करके उसने देश को बांटने का कुत्सित प्रयास किया । इस युग में कई बड़े अकाल पड़े । प्लैग जैसी जानलेवा महामारी भी फैली । प्रवास सम्बन्धी बिल (१९०७ ई०), सभाबन्दी कानून (१९०८ई०), प्रेस एक्ट (१९०८ ई०) आदि के कारण जहाँ एक तरफ अंग्रेजों का दमन बढ़ता गया तो दूसरी तरफ जनता का प्रबल प्रतिकार भी नया स्वरूप धारण करने लगा । 'युगान्तर' और 'सन्ध्या' पत्रिका के द्वारा जहाँ चेतना को नवीन विस्तार प्राप्त हुआ वहीं 'वन्देमातरम्' के तुमुल उद्घोष द्वारा जनता के हृदय में जोश एवं उमंगों की भावनओं को बुलन्द किया गया ।

लार्ड मिण्टों (१९०५ में) भारत का वायसराय बन कर आया । उसने आते ही भारतीयों पर दमन चक्र तेज कर दिया । एक तरफ राष्ट्रीय आन्दोलन अंगड़ाईयाँ लें रहा था तो दूसरी तरफ 'फूट डालो राज्य करो' के छल कपटपूर्ण नीति के कारण भारतीय समाज में जातीय अलगाववाद के बीज भी इसी काल में अंकुरित होने लगे । १९०६ ई० में मुस्लिम लीग की स्थापना से अलगाववाद का बीज अंकुरित हो कर पौधे का रूप धारण कर लिया, जो कालान्तर में भारत विभाजन का कारण बना । इसी के समानान्तर वन्दिनी भारत माता को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्ति दिलाने के लिए कई सपूतों ने अपना तन, मन, धन, जीवन, प्राण, सर्वस्व समर्पित कर दिया । इसी क्रम में श्यामजीकृष्ण वर्मा, वीर सावरकर, अरविन्द घोष, वारिन्द्र घोष, खुदी राम बोस, मदनलाल धींगरा तथा लाला हरदयाल जैसे नेताओं ने गदर आन्दोलन को पूरे देश में फैला दिया । बंगाल विभाजन को लेकर आन्दोलन उग्र होता गया, जिसका परिणाम जनता के रोष के रूप में सामने आने लगा था । १९१५ ई० में महात्मा गांधी के भारत आगमन से यहां की राजनीति में एक नये दौर की शुरुआत हुयी । गाँधी कांग्रेस के नेता बने तो जिन्ना मुस्लिम लीग के । प्रथम विश्व युद्ध (१९१४ ई०-१९१८ ई०) के दौरान महात्मा गाँधी एवं बालगंगाधर तिलक आदि राष्ट्रीय नेताओं ने अंग्रेजी हुकूमत का साथ इस आशा एवं विश्वास से दिया कि वे उनके साथ सहृदयता दर्शायेंगे परन्तु परिणाम आशा के विपरीत निकला । देश में अंग्रेजों का दमन एवं अत्याचार निरन्तर बढ़ता ही गया । तिलक की लोकप्रियता से घबड़ा कर अंग्रेजो ने उनपर कई झूठे आरोप मढ़ कर जेल में डाल दिया ।१९०८ ई० से १९१४ ई० तक माण्डले जेल में रहने के बाद छूटने

पर एनीबेसेन्ट के सहयोग से १९१६ ई० में होमरूल लीग की स्थापना की । होमरूल लीग की स्थापना से देश के नवयुवकों में स्वराज प्राप्ति की चेतना का विकास हुआ । इसके फलस्वरूप राष्ट्रीय साहित्य की रचना भी की जाने लगी । १९१९ ई० में महात्मा गाँधी द्वारा रौलट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह शुरू करने से पूरे देश में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध आन्दोलन तीव्र हो गया ।

पंजाब के गवर्नर जनरल डायर ने जलियावाला बाग में हो रही शांति सभा में निहत्थे लोगों पर गोलियां बरसवाकर वीभत्स नर - संहार कराया । इस घटना से पूरा देश क्षुब्ध हो उठा । १९२० ई० में महात्मा गांधी के नेतृत्व में अंग्रेजी सरकार से किसी भी मुद्दे पर सहयोग न करने के लिए असहयोग आन्दोलन चलाया गया, जिसमें राष्ट्रीय नेता, वकील, पत्रकार एवं राष्ट्र भक्तों ने बढ़ - चढ़ कर हिस्सा लिया । इस आंन्दोलन को पूरे देश में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुयी क्योंकि चौरी चौरा घटना से क्षुब्ध हो कर महात्मा गांधी ने यह आन्दोलन वापस ले लिया । १९२० ई० में गरम दल के शीर्ष नेता लोक मान्य तिलक के निधन से पूरा देश इस महान सपूत के खोने पर शोक मग्न हो गया । इस तरह हम देखते है कि १९०० से १९१२ ई० का समय राजनैतिक उठा पटक, नये घटनाक्रमों से युक्त द्वन्द्व एवं संघर्षो का कालक्रम था । अनिवार्य रूप से इनके प्रभाव से तत्कालीन समाज एवं साहित्य भी अछूता नही रहा । महात्मा गांधी के सत्य, अहिंसा, मानवता, विश्वबन्धुत्व एवं राष्ट्रीयता का स्थायी प्रभाव तत्कालीन साहित्यकारो-नाथूराम शर्मा 'शंकर', महावीरप्रसाद द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी, मैथलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक तथा गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' आदि पर स्पष्ट देखा जा सकता है ।

समाजिक परिस्थिति :—

द्विवेदी युगीन भी बड़ा उलट फेर एवं परिवर्तन हो रहा था। यह परिवर्तन तत्कालीन सामाज सुधार आन्दोलन द्वारा सम्भव हुआ था। पशिम के साथ सम्पर्क बढ़ाने के कारण वैज्ञानिक दृष्टि से परखने की शक्ति का विकास हुआ जिससे अन्धविश्वास, कुरीतियों एवं आडम्बरों का विरोध होने लगा। भाईचारा एवं समानता के भाव ने प्रबुद्धवर्ग को प्रभावित किया। राम कृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, राजाराम, मोहन राय, केशव चन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती एवं रानाडे

जैसे नेताओं ने सामाजिक पुनरुद्धार हेतु महत्वपूर्ण कार्य किये । रामकृष्ण मिशन, ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, वेदान्त समाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी तथा गाँधीवादी विचारधारा जैसे अनेक संगठनो ने अपने - अपने तरीके से सामाजिक कुरीतियों को दूर करने एवं नयी चेतना का संचार करने का प्रयास किया । दादा भाई नौरोजी, गोखले और तिलक प्रभृत राजनेता समाज सुधारक भी थे । रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामीदयानन्द 'सरस्वती' जैसे सन्त एक तरफ ईश्वरोन्मुख साधना में रत रहते थे, तो दूसरी तरफ सामाजिक आवश्यकताओं एवं चुनौतियों से मुँह न मोड़ कर समाज सुधार करने और नये समाज गढ़ने में अपना अप्रतिम योगदान दिया । स्वामी विवेकानन्द ने 'नर को ही नारायण' मानते हुए भूँखो को भोजन कराना, ईश्वर की पूजा एवं दीन - हीन की सेवा को ही ईश्वर की सेवा का रूप दिया । इन्होंने कहा - ' कि यदि पड़ोसी भूँखा हो तो मन्दिर में प्रसाद चढ़ाना बेमानी है ।'

इस युग में कुछ अमानुषिक प्रथायें ढ़ीली तो पड़ी थीं परन्तु छुआ - छूत, बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध, स्त्री शिक्षा का अभाव, पर्दाप्रथा, वर्णभेद, समुद्र यात्रा विरोध तथा अंधविश्वास आदि कुरीतियाँ समाज को अब भी खोखली कर रही थी । तत्कालीन नेताओं ने इन कुरीतियों को नष्ट करने के लिए कई कार्य किये । रेल का प्रसार, तार का प्रचलन एवं मुद्रण के चलन से सामाजिक रूढ़ियाँ टूटने लगी थीं । राष्ट्रीय आन्दोलन ने सामाजिक कुरीतियों को प्रभावित किया । राष्ट्र को स्वतंत्र कराने की भावना ने लोगों को जाति, धर्म, वंश से ऊपर उठने को प्रेरित किया । हिन्दू - मुस्लिम एकता, हरिजनोद्धार तथा सामाजिक समन्वय स्थापित करने के लिए नेताओं ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये । आर्यसमाज द्वारा चलाये गये 'शुद्धि आन्दोलन' ने जहाँ हिन्दुओं की बिखरी हुयी जातियों को एक जुट होने की प्रेरणा दी वहीं हिन्दू और मुसलमानों को एकजुट करने के लिए कई कार्यक्रम भी बनाये गये । तर्कबुद्धि, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नवीन शिक्षा एवं नूतन आविष्कारों ने एक नयी राह पर चलने की प्रेरणा दी ।

धार्मिक परिस्थिति :—

पौराणिक धर्म की प्रमुखता के कारण बहुदेववाद, यात्रा, व्रत, कर्मकाण्ड

एवं मूर्तिपूजा, तथा त्योहारों का बोल - बाला था । आर्यसमाज द्वारा इन आडम्बरों व भेद भाव को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया । एकेश्वरवाद का प्रसार करके आर्यसमाज ने धार्मिक स्तर पर विखण्डित समाज को एक सूत्र में पिरोने का कार्य किया । रामकृष्ण परमहंस के मानववाद को केन्द्र में रख कर विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन के द्वारा मानव सेवा और शोषित, पीड़ित, दलित के उद्धार तथा उन्नयन को धर्म और ईश्वर सेवा के रूप में दर्शाने का प्रयास किया गया । विवेकानन्द कहते थे - ''यदि व्यक्ति दुर्बल हो तो हवन में घी की आहुति देना जागृत देवता का घोर तिरस्कार है ।'' इस तरह अनेक धर्मसुधार आन्दोलनों के द्वारा इस युग में धीरे - धीरे आम आदमी धर्म के केन्द्र में आने लगा ।

धार्मिक संस्कारों को तत्कालीन नेताओं ने नया आयाम दिया । मुक्ति, मानवधर्म, परोपकार, तथा कर्मवाद को विभिन्न नेताओं ने अपने - अपने दृष्टिकोण से परिभाषित कर धार्मिक विवेचन किया । लोकमान्य तिलक, एनीबेसेन्ट, विवेकानन्द और महात्मा गाँधी ने अपने - अपने ढ़ंग से मानव धर्म का संदेश जन - जन तक प्रचारित और प्रसारित किया । इस तरह द्विवेदी युगीन धार्मिक स्थिति - परिर्वतन, संवर्धन एवं सुधार का युग था ।

साहित्यिक परिस्थिति:—

भारतेन्दु के अवसान के बाद हिन्दी की उन्नति में शिथिलता आ गयी थी । अनुवाद एवं अनुकरण की प्रवृत्ति बढ़ रही थी । साहित्यिक गतिविधियों को नियंत्रित करने वाला कोई नेता नहीं था । साहित्य में एक प्रकार से अराजकता, उच्छृंखलता और पथ भ्रष्टता का वातावरण बन गया था । अंग्रेज भाषा भेद नीति को बनाये रख कर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते थे । इन झंझावातों के बाद भी हिन्दी प्रेमियों के द्वारा हिन्दी की उन्नति के प्रयास जारी थे । राजनीतिक आन्दोलन एवं वैज्ञानिक आविष्कारों तथा ईसाई मिशनरियों के प्रयत्न से हिन्दी के विकास में किंचित सहायता तो पहुँची किन्तु अनगढ़ भाषा, सौष्ठवहीन काव्य एवं साहित्यिक मानक से च्युत, रचित रचनाओं के कारण हिन्दी साहित्य का स्तर गिरता ही जा रहा था । ऐसे साहित्यिक संक्रमण के काल में पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी का अविर्भाव हुआ, जिन्होंने भाषा को

संस्कार देकर हिन्दी साहित्य को नया आयाम दिया । एक कुशल शिल्पी की भाँति भाषा के गढ़न में नवीन विधा का प्रयोग किया । एक सशक्त आलोचक बन कर उन्होने विभिन्न रचनाकारों की रचनाओं को सुधारा । यह कार्य उन्होने 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादन के माध्यम से किया । गद्य एवं पद्य की भाषा शैली मे सुधार के लिए द्विवेदी जी ने अथक परिश्रम किया । उनकी लगन से हिन्दी साहित्य का परिमार्जित स्वरूप नये तेवर एवं कलेवर के साथ उभर कर सामने आने लगा । उन्होने भाषा को प्रसाद गुँण से युक्त, व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियों से दूर एवं अभिव्यंजना शक्ति से परिपूर्ण बनाने का सशक्त प्रयास किया । इस तरह हम कह सकते है कि द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य, नयी चेतना लेकर नयी दिशा की ओर अग्रसर हो रहा थी ।

(ख) समकालीन साहित्यकार

इस युग में गद्य की विभिन्न विधाओं का विकास हुआ । काव्य रचना में भी विषय - वस्तु का विस्तार हुआ । हिन्दी साहित्य को श्रृंगारिकता से राष्ट्रीयता, जड़ता से प्रगति तथा रूढ़ि से स्वच्छन्दता के द्वार पर ला खड़ा करने वाले बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशको का (१९०० से १९२० ई०) सर्वाधिक महत्व है । इस कालखण्ड के पथ प्रदर्शक, विचारक और सर्व स्वीकृत साहित्य पुरोधा आर्चाय महावीरप्रसाद द्विवेदी के नाम पर इस युग का नाम 'द्विवेदी युग' सर्वथा उचित ही है । सामाजिक तथा राजनैतिक सन्दर्भो के परिप्रेक्ष्य में इसे ''जागरण सुधार काल'' भी कहा जाता है ।

द्विवेदी युग के साहित्य व साहित्यकारों को दो भागों में विभाजित करके देखा जा सकता है :

१- पद्य साहित्यकार ।

२- गद्य साहित्यकार ।

पद्य साहित्यकार :-

इस अवधि में बहुत से कवि ऐसे हैं, जो १९०० ई० से पहले से रचना कर रहे थे और १९२० ई० के बाद काफी दिनो तक काव्य रचना करते रहे, इसलिए निश्चित अवधि की सीमा के अर्न्तगत् हम रचनाओं को नही बाँध सकते । यही कारण है कि जब किसी युग विशेष के सन्दर्भ में कवि का उल्लेख करते हैं तो इसका तत्पर्य यह हुआ कि उस कवि की रचना की प्रवृत्ति उस काल विशेष में क्या रही । इन्हीं बातों को ध्यान में रख कर हम द्विवेदी युग के रचनाकारों की रचनाओं का अवलोकन करेंगे ।

उन्नीसवीं शताब्दी का अन्त होते - होते साहित्य की हवा बदलने लगी थी । परिवर्तित जनरुचि के कारण भक्ति एवं श्रृंगार, बेस्वाद प्रतीत होने लगे थे । समस्यापूर्तियाँ एवं नीरस तुकबन्दियों से सहृदय साहित्य प्रेमी ऊबने लगे । चिर व्यवहृत ब्रज भाषा का आकर्षण निःशेष हो गया । सुयोग से ऐसे समय में जनता की रुचि और आकांक्षाओं के पारखी तथा साहित्य के दिशा निर्देशक के रूप में महावीरप्रसाद द्विवेदी का आर्विभाव हुआ । जून १९०० की सरस्वती में प्रकाशित 'हे कविते' शीर्षक अपनी कविता में उन्होंने जनरुचि का प्रतिनिधित्व करते हुए रस एवं वैविध्य के अभाव तथा ब्रज भाषा के प्रयोग पर क्षोभ प्रकट किया । आचार्य द्विवेदी ने नायिका भेद को छोड़ कर विविध विषयों पर कविता लिखने, सभी प्रकार के छन्दों का व्यवहार करने, सभी काव्यरूपों को अपनाने तथा गद्य और पद्य की भाषा के एकीकरण का परामर्श दिया । उनकी अमोघ प्रेरणा एवं प्रोत्साहन के परिणाम स्वरूप अनेक कवि उभर कर सामने आये जो उन्ही के आदर्शों को लेकर आगे बढ़े । इस युग के प्रमुख कवि एवं कृतियों का वर्णन आगे किया जा रहा है :

नाथूराम शर्मा 'शंकर' :—

१८५९-१९३२, नाथूराम शर्मा 'शंकर' का जन्म हरदुआगंज, जिला अलीगढ़ में हुआ था । ये हिन्दी, उर्दू, संस्कृत तथा फारसी भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे । आरम्भ से ही शंकर जी बड़े साहित्यानुरागी थे । आर्चाय द्विवेदी द्वारा सम्पादित सरस्वती के मुख्य कवियों में उन्होंने अपना स्थान बनाया । आरम्भ में ये ब्रज भाषा के कवि थे किन्तु शीघ्र ही खड़ी बोली की ओर

झुक गये । आर्यसमाज तथा राष्ट्रीय आन्दोलन का इन पर गहरा प्रभाव पड़ा । देश प्रेम, स्वदेशी प्रयोग, समाज सुधार तथा विधवाओं, अछूतों का दारुण दु:ख इनकी कविता के वर्ण्य विषय बने । सामाजिक कुरीतियों, आडम्बरों, अन्ध - विश्वासों, बाल - विवाह आदि पर इन्होने तीखें व्यंग्य किये । छंदशास्त्र के ये मर्मज्ञ विद्वान थे । 'अनुराग रत्न', 'शंकर सरोज', गर्भरण्डा रहस्य','शंकर सर्वस्व', इनके प्रमुख काव्य ग्रन्थ हैं ।

श्रीधर पाठक (1859—1928):—

श्रीधर पाठक का जन्म आगरा जिले के जोन्धरी गांव में हुआ था । हिन्दी के अतिरिक्त इन्हें अंग्रेजी और संस्कृत का अच्छा ज्ञान था । ब्रज भाषा और खड़ी बोली दोनों में इनके द्वारा अच्छी कविताओं का सृजन हुआ । खड़ी बोली के ये प्रथम समर्थ कवि कहे जा सकते हैं । देश प्रेम, समाज सुधार, प्रकृति चित्रण इनकी कविता के प्रमुख विषय हैं । इन्होंने बड़े मनोयोग से देश का गौरव गान किया है । 'भारत प्रशंसा' एवं 'भारतोत्थान' आदि देशभक्ति पूर्ण कविताएँ लिख कर इन्होंने देश का मान बढ़ाया । समाज सुधार की ओर भी इनकी दृष्टि बराबर रही है । 'बाल विधवा' कविता में इन्होंने विधवाओं की दशा का कारुणिक चित्रण किया है । मातृभाषा की उन्नति की भी इनमें प्रबल कामना थी :

> ''निज भाषा बोलहु लिखहुँ, पढ़हुँ गुनहुँ सब लोग ।
> करहुँ सकल विषयन विषै, निज भाषा उपजोग ।।''

पाठक जी अच्छे कवि होने के साथ - साथ कुशल अनुवादक भी थे । कालिदास कृत 'ऋतुसंहार', गोल्ड स्मिथ कृत 'हरमिट, 'डेजर्टेड विलेज' तथा 'द ट्रेवेलर', का ये बहुत पहले ही 'एकान्तवासी योग', 'उजड़ ग्राम' और ' श्रान्त पथिक' शीर्षक से काव्यानुवाद कर चुके थे । इनकी मौलिक कृतियों में 'घनाष्टक', 'कश्मीर सुषमा', 'देहरादून' और 'भारत गीत' विशेषत: उल्लेखनीय हैं ।

महावीर प्रसाद द्विवेदी :—

महावीर प्रसाद द्विवेदी (१८६४ - १९३८) का जन्म जिला रायबरेली के दौलतपुर ग्राम में हुआ था। ग्राम की पाठशाला में प्रारम्भिक शिक्षा पाने के पश्चात ये अंग्रेजी पढ़ने के लिए रायबरेली के स्कूल में भर्ती हुए। इन्हे संस्कृत, गुजराती, मराठी और अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान था।१९०३ ई० में 'सरस्वती' के सम्पादक के रूप में इन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य के उत्थान के लिए जो कार्य किया वह चिरस्मरणीय रहेगा। इनके प्रोत्साहन और मार्ग दर्शन के परिणाम स्वरूप कवियों और लेखको की एक पीढ़ी का निर्माण हुआ। ये कवि, आलोचक, निबन्धकार, अनुवादक तथा सम्पादकाचार्य थे। इनके लिखे मौलिक और अनुदित गद्य- पद्य ग्रन्थों की संख्या ८० हैं। अनुदित रचनायें इस प्रकार हैं :

१. विनय विनोद। २. विहार वाटिका। ३. स्नेह माला। ४. श्री महिम्न स्त्रोत।
५. गंगा लहरी। ६. ऋतु तरंगिणी।

द्विवेदी जी की मौलिक पद्य रचनायें इस प्रकार है :

१. देवी स्तुति कान्य कुष्जली। २. समाचार पत्र सम्पादक स्तव।
३. नागरी। ४. काव्य मंजूषा।
५. काव्य कुंज अबला विलाप। ६. सुमन।
७. द्विवेदी काव्य माला। ८. कविता कलाप।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' :—

'हरिऔध' जी (१८६५ - १९४७) द्विवेदी युग के प्रख्यात कवि होने साथ साथ उपन्यासकार, आलोचक एवं इतिहासकार भी थे। पुरातन संस्कृति का पुनरुद्धार, देश के वर्तमान युवकों का उचित मार्ग प्रदर्शन तथा कविता में उपदेशात्मक वृत्ति को इन्होंने आरम्भ से ही अपना ध्येय रखा। इनका जन्म निजामाबाद, जिला आजमगढ़ में हुआ था। इनके काव्यग्रन्थों में 'प्रिय प्रवास', 'पद्य प्रसून', चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदे', 'बोलचाल', 'रस कलश', तथा

'वैदेही वनवास' प्रमुख है। 'प्रिय प्रवास' खड़ी बोली में लिखा गया प्रथम महाकाव्य है, जिसमें राधा और कृष्ण को नायक - नायिका के स्तर से ऊपर उठा कर विश्व सेवी एवं विश्व प्रेमी के रूप में वर्णित कर, 'हरिऔध' ने मौलिकता का परिचय दिया । इनके काव्य में एक ओर सरल एवं प्रांजलपूर्ण हिन्दी का निर्लकार सौदर्य है तो दूसरी ओर संस्कृत की आलंकारिक पदावली की छटा भी विद्यमान है । कहीं मुहावरे व बोलचाल के देशज शब्दो की झड़ी है, तो कही इन सब को तिलांजली दे दी गयी है । ये वर्णात्मक और चित्रात्मक दोनो शैली में रचनायें करते थे । इन्होंने अपने युग की कर्कशता में सरसता का संचार किया है । इनकी कार्य शैली अत्यन्त भावुक एवं मार्मिक है । यशोदा का विरह सह्रदय और संवेदनाओ से परिपूर्ण है :

''प्रियपति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है ।
दु:ख जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है ।।''

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' :—

इनका (१८६८ -१९१५ ई०) जन्म जबलपुर में हुआ था । ये संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे । वेदान्त में इनकी विशेष रुचि थी । इनकी कविता सरस एवं भावपूर्ण है । 'स्वदेशी कुण्डल', 'मृत्युंजय', 'रामरावण विरोध', 'बसन्त वियोग' इनकी उल्लेखनीय काव्य कृतियाँ है ।

रामचरित उपाध्याय :—

रामचरित उपाध्याय (१८७२ -१९३) गाजीपुर के रहने वाले थे । पहले ये प्राचीन विषयों पर ही कवितायें लिखते थे, किन्तु आचार्य द्विवेदी के सम्पर्क में आने पर खड़ी बोली तथा नूतन विषयों पर काव्य रचना करने लगे । 'राष्ट्र भारती', 'देवदूत', 'देवसभा', 'विचित्र विवाह', आदि कृतियो के साथ 'रामचरित चिन्तमणि' नामक प्रबन्ध काव्य की भी रचना किये ।

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' :—

कविवर 'सनेही' (१८८३ -१९७२) का जन्म उन्नाव जिले के हड़हा ग्राम में हुआ था। ये उर्दू में भी अच्छी कविता करते थें। हिन्दी में इन्होंने प्राचीन और नवीन शैलियों की कविता लिखी है। खड़ी बोली में कवित्त तथा सवैया छन्दों का प्रयोग करने में ये बड़े माहिर थे। श्रृंगार आदि परम्परागत विषयों पर ये 'सनेही' उपनाम लिखते थे, वहीं राष्ट्रीय भावनाओं की कविताओं को इन्होने 'त्रिशूल' उपनाम से लिखा है। तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलनों के लिए इन्होंने अनेक प्रयाण गीत और बलिदान गीत लिखे। पराधीन देश की दुर्दशा, अर्थिक विषमता, अस्पृश्यता आदि विषयों पर भी इन्होने बड़ी मार्मिक एवं प्रभावी कविताओं का प्रणयन किया। ये 'सुकवि' नामक काव्य पत्रिका के सम्पादक भी थे। 'कृषक क्रन्दन', 'प्रेम पचीसी', 'राष्ट्रीय वीणा', 'त्रिशूल तंरग', 'करुणा कादम्बिनी' आदि इनकी मुख्य काव्य रचनायें हैं। इनकी रचनाओं में अपूर्व वाग्वैदग्ध्य, शब्द चमत्कार उक्ति का अनूठापन तथा गंम्भीरता मिलती है।

मैथिली शरण गुप्त :—

मैथिली शरण गुप्त (१८८६ -१९६४ ई०) का जन्म चिरगाँव (झाँसीा) में हुआ था। ये द्विवेदी काल के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि थे। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से परिचय के पश्चात इनकी कवितायें 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगीं। उनके आदेश, उपदेश एवं स्नेहमय प्रोत्साहन स्वरूप इनकी काव्य कला में निखार आया। इनकी प्रथम पुस्तक 'रंग में भंग' का प्रकाशन १९०९ में हुआ परन्तु उनकी ख्याति का मूलाधार 'भारत भारती' (१९१२) है। 'भारत भारती' ने हिन्दी भाषियों में जाति और देश के प्रति गर्व और गौरव की भावनाये जागृत की और तभी से ये राष्ट्रकवि के रूप में विख्यात हुये। गुप्त जी मातृभाषा को केवल भूमिखंण्ड नही अपितु 'सगुण मूर्ति सर्वेश की' मानते है :

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य चन्द युग मुकुट मेंखला रत्नाकर है।
नदिया प्रेम प्रवाह फूल तारे मण्डल है।
बन्दी जन खगवृन्द, शेषफन सिंहासन है।
करने अभिषेक पयोद है, बलिहारी इस वेष की,
हे मातृभूमि! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की ।।

मैथिली शरण गुप्त प्रसिद्ध रामभक्त कवि थे। इसके साथ ही भारतीय जीवन को समग्रता में समझने और प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया है। 'मानस' के पश्चात हिन्दी में रामकाव्य का दूसरा स्तम्भ मैथिलीशरण कृत 'साकेत' ही है। वास्तव में आधुनिक युग में प्रबन्ध काव्य की विलोपमान परम्परा के संरक्षक गुप्त जी है। इन्होंने दो महाकाव्यों एवं उन्नीस खण्ड काव्यों का प्रणयन किया है। इनका चरित्र - चित्रण कौशल भी उत्कृष्ट प्रबन्ध कला का प्रमाण है। गुप्त जी ने 'निलोत्तमा' 'चन्द्रहास' और 'अनघ' नामक तीन नाटक, प्रायः सभी प्रकार के प्रगीत और मुक्तक भी लिखे हैं। वस्तुतः ये मूलतः प्रबन्धकार थे। खड़ी बोली के स्वरूप के निर्धारण और विकास में इनका अनन्य योगदान है। भारतीय संसकृति के ये कुशल प्रस्तोता थे प्ररन्तु अन्धानुकरण की प्रवृत्ति इनमें नहीं थी। कालान्तर में आ जाने वाली विकृतियों से इनके साहित्य का सांस्कृतिक पृष्टाधार एकदम मुक्त है। भारतीय संस्कृतिक के प्रवक्ता होने के साथ - साथ ये नवीन भारत के ये राष्ट्रीय कवि भी थे। इनकी प्रायः सभी रचनायें राष्ट्रीयता से ओत प्रोत हैं। इनकी प्रवर्ती रचनायें भी असंदिग्ध रूप से राष्ट्र भावना से परिपूर्ण हैं। गुप्त जी के प्रमुख काव्य ग्रंथ है 'जयद्रथ वध', 'भारत भारती', 'पंचवटी', 'झंकार', 'साकेत', 'यशोधरा','द्वापर', 'जय भारत', 'विष्णु प्रिया' आदि। 'प्लासी का युद्ध' 'मेंघनाथ वध' 'वृत्तसंहार' आदि इनके द्वारा अनुदित काव्य हैं।

राम नरेश त्रिपाठीः—

राम नरेश त्रिपाठी का जन्म (१८८९-१९६२ई०) जिला जौनपुर के अन्तर्गत कोईरीपुर ग्राम में हुआ था। कविता के प्रति इनकी लड़कपन से रुचि थी। 'सरस्वती' पत्रिका के प्रभाव स्वरूप ये खड़ी बोली की ओर उन्मुख हुए। त्रिपाठी जी के चार काव्य ग्रंथ

प्रकाशित हुए हैं : 'मिलन', 'पथिक', 'मानसी' और स्वपन । इनमें से 'मानसी' फुटकर कविताओं का संग्रह है जो मुख्यतः देश भक्ति, प्रकृति चित्रण, और नीति निरूपण से सम्बद्ध है । 'मिलन','पथिक', तथा 'स्वप्न' कालपनिक कथा आश्रित प्रेमाख्यानक खण्ड काव्य हैं । तीनो में व्यक्तिगत सुख और स्वार्थ को त्याग कर देश के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने की प्रेरणा दी गयी है ।

कवि होने के साथ - साथ त्रिपाठी जी सहृदय सम्पादक भी थे । 'कविता कौमुदी' के आठ भागों में उन्होंने बड़ी योग्यता से हिन्दी, उर्दू, बंगला एवं संस्कृत की कविताओं का संकलन एवं सम्पादन किया । इनकी काव्य रचना का एक उदाहरण दृष्टव्य है :

देश प्रेम वह पुण्य क्षेत्र है,
अमल असीन त्याग से विलसित ।
आत्मा के विकास से जिसमें,
मनुष्यता होती है विकसित ।।

बालमुकुन्द गुप्त :—

(१८६५-१९०७ ई०) गुप्तजी का जन्म हरियाणा प्रदेश के रोहतक जिले के ग्राम गुड़ियाना में हुआ था । ये भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग को जोड़ने वाली कड़ी हैं । ये अच्छे कवि, अनुवादक और अपने समय के बहुत कुशल सम्पादक थे । इनकी कवितायें 'स्फुट कविता', (१९०५) में संकलित है और परिमाण में थोड़ी होने पर भी बड़ी प्रभावी हैं । राष्ट्रीयता और हिन्दी प्रेम इनकी कविताओं के मुख्य विषय हैं ।

सैय्यद अमीर अली 'मीर' :—

(१८७३-१९३७ ई०) मीर का जन्म सागर जिला मध्य प्रदेश में हुआ था । ये बड़े हिन्दी प्रेमी थे और इसे राष्ट्र भाषा बनाने के समर्थक थे । 'राम चरित मानस' के प्रति इनका विशेष

अनुराग था। इनकी भाषा परिमार्जित खड़ी बोली है। ईश्वर भक्ति और देश प्रेम इनकी कविता के प्रमुख विषय हैं।

अन्य कवि :-

लाला भगवान दीन, कामता प्रसाद 'गुरू', गिरधर शर्मा 'नवरतन', रूप नारायण पाण्डेय, लोचनप्रसाद पाण्डेय, गोंपाल शरण सिंह, और मुकुटधर पाण्डेय आदि इस युग के महत्तवपूर्ण रचनाकार हैं।

गध साहित्यकार :-

द्विवेदी युग में रचित 'गद्य साहित्य' के मूल में कार्य करने वाली सांस्कृतिक चेतना का कई दृष्टियों से महत्तव है। इस समय विदेशी शासन के प्रति जनता में व्यापक असंतोष फैल रहा था। जो प्रकारान्तर से राष्ट्रीय चेतना के रूप में पल्लवित हुयी। सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं सामाजिक चेतना के साथ - साथ इस युग में आर्थिक चेतना का भी विकास हुआ। विदेशी वहिष्कार एवं स्वदेश भावना के विकास की दृष्टि से भी इस युग का कम महत्व नहीं है। यद्यपि आलोच्य काल में आर्यसामाज व सनातनधर्म का द्वन्द्व चलता रहा, साथ ही साथ धार्मिक, सामाजिक क्षेत्र में उदारता एवं सहिष्णुता की भावनायें भी फैलायी जा रही थीं। यह राजनैतिक जागरूकता आर्थिक समझदारी, सामाजिक, धार्मिक उदारता तथा राष्ट्र प्रेम मुख्यतः शिक्षित वर्ग की जनता के जागरण का परिणाम था। समाज को सभी क्षेत्रों में नेतृत्व प्रदान करने वाले इसी शिक्षित मध्यमवर्गीय समाज के द्वारा ही साहित्य रचना भी की जा रही थी। राष्ट्र की प्रत्येक महत्व पूर्ण घटना का प्रभाव इस युग में साहित्यकारों की रचनाओं में प्रतिबिम्बित होता है। द्विवेदी युगीन गद्य साहित्य की प्रत्येक विधा में अन्तर्निहित चेतना, व्यापक राष्ट्रीय जागरण, सामाजिक सुधार की भावना से ओत - प्रोत है। आगे हम गद्य की विभिन्न विधाओं की अलग- अलग विवेचना करेंगे।

नाटक :—

हिन्दी में नाटकों की शुरूआत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया । उस युग में नाटक लिखे भी जाते थे और उनका मंचन भी होता था । द्विवेदी युग तक आते - आते इस विधा का विकास अवरुद्ध हो गया । यद्यपि कि इस युग में भी नाटकों की रचना हुयी जो अत्यन्त साधरण स्तर के थे । बंगला, अंग्रेजी, संस्व्कृत भाषा में रचित नाटकों का अनुवाद भी हुआ । संस्कृत के भवभूति कालिदास, बंगला के द्विजेन्द्रलाल राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अंग्रेजी के शेक्सपीयर के नाटकों के अनुवाद अत्यन्त लोकप्रिय हुए । मौलिक नाटकों की रचना में पंण्डित किशोरीलाल गोस्वामी 'चौपट चपेट' तथा मयंक 'मंजरी', ज्वाला प्रसाद मिश्र ने 'सीता वनवास', अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'रूकिमणी', बाबू शिवनन्दन सहाय ने 'सुदामा' जैसे नाटकों का लेखन किया ।

उपन्यासः—

गद्य विधा में सबसे अधिक लोकप्रियता उपन्यास को मिली । जीवन के विभिन्न पक्षों को उजागर करने के कारण यह विधा जन साधारण में बहुत लोकप्रिय हुयी । द्विवेदी युग के बहुत से उपन्यासकार भारतेन्दु युग से ही लिखते चले आ रहे थे, जिनमें किशोरी लाल गोस्वामी का नाम प्रमुख है, जिन्होंने ६५ के करीब छोटे बड़े उपन्यासों की रचना की जिनमें 'तारा', 'तरुण तपस्विनी', 'चपला', 'लीलावती', 'रजिया बेगम', 'लवंग लता' आदि प्रमुख हैं । ये 'उपन्यास' नाम से मासिक पत्र भी निकाला करते थे । अयोध्यासिंह उपध्याय 'हरिऔध' ने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' एवं 'अधखिला फूल' जैसे उपन्यासों की रचना कर द्विवेदी युग को समृद्ध किया । उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द्र जैसे व्यक्ति का पदार्पण इसी युग में होता है, जिन्होंने विभिन्न उपन्यासों की रचना कर भाषा साहित्य को अमूल्य योगदान दिया । आरम्भ में ये उर्दू में लिखते थे जिनका हिन्दी संस्करण भी द्विवेदी युग से प्रकाशित होने लगा । 'प्रेमा' व 'वरदान' उनके ऐसे ही उपन्यास थे । प्रेमचन्द्र का पहला सामाजिक उपन्यास 'सेवासदन' १९१५ ई० में प्रकाशित हुआ ।

हिन्दी उपन्यासों में रास –रंग, रहस्य - केलि, प्रेम - चुहल के स्थान पर जीवन की वास्तविक समस्याओ को केन्द्र में रख कर उपन्यास लिखे जाने लगे।

कहानी :–

हिन्दी में कहानी की शुरुआत भारतेन्दु युग से हुयी । प्रेमचन्द १९०० ई० के आसपास से ही कहानी की रचना कर रहे थे । वे सही मायने में आधुनिक तत्वो से युक्त कहानियों के आरम्भ कर्ता हैं किन्तु इनकी कहानियाँ १९१४ ई० में प्रकाशित हुईं । इसके पहले जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम' कहानी १९११ में प्रकाशित हो चुकी थी किन्तु हिन्दी की प्रथम श्रेष्ठ कहानी चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' लिखित 'उसने कहा था' का प्रकाशन १९१५ ई० में हुआ । इस युग के अन्य महत्वपूर्ण कहानीकार विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', सुदर्शन, राधिका रमण सिंह, जी० पी० श्रीवास्तव, चतुरसेन शास्त्री हैं । उपन्यास विधा की तरह कहानी के क्षेत्र में भी प्रेमचन्द्र ने महत्वपूर्ण योगदान दिया ।१९१५ ई० में प्रकाशित इनकी कहानी 'पंच परमेश्वर' में मानव मन के अन्दर छिपे देवत्व को उजागर करने का प्रयत्न किया गया है । सामाजिक समस्याओं, मानवीय भावनाओं एवं राष्ट्रीय आदर्श की स्थापना से युक्त कहानियों की रचना करके प्रेमचन्द्र ने कहानी विधा को नया आयाम दिया । जयशंकर प्रसाद भी द्विवेदी युग से ही कहानियों का सृजन कर रहे थे । उनकी कहानियों में भावनात्मक संघर्ष, मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व का आधिक्य मिलता है । 'आकाश दीप', 'पुरस्कार', 'इन्द्रजाल', 'छाया', 'ममता', 'गुण्डा', आदि इनकी प्रसिद्व कहानियाँ है ।

निबन्धः–

निबन्ध के माध्यम से इस युग के निबन्धकारों ने जहाँ सामाजिक चेतना फैलायी वहीं राष्ट्रीय भावना को बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया । इस विधा को बढ़ाने में स्वयं महावीर

प्रसार द्विवेदी ने अप्रतिम योगदान दिया । 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से उन्होंने इस विधा में लेखन के लिए लेखकों को प्रोत्साहित किया । द्विवेदी जी ने ऐतिहासिक विषय पुरातत्व एवं समीक्षा संम्बन्धी अनेकों उपयोगी निबन्धों की रचना की । निबन्ध के क्षेत्र मे उनके द्वारा बेकन के निबन्धों का हिन्दी अनुवाद से निबन्ध विधा और समृद्ध हुयी । इस युग की अन्य पत्र - पत्रिकाओं मे यथा 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'समालोचक', 'इन्दु', 'मर्यादा', तथा 'प्रभा' में विभिन्न विषयों से सम्बन्धित निबन्ध छपा करते थे । बालमुकुन्द गुप्त, महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दर दास, रामचन्द्र शुक्ल, सरदार पूर्णसिंह, चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' तथा माधवप्रसाद मिश्र आदि ने महत्वपूर्ण निबन्धों की रचना की है । इन्होंने सामाजिक एवं नैतिक विषयों से परिपूर्ण निबन्धों की रचना की । इनके कुछ महत्वपूर्ण निबंधों के नाम इस प्रकार हैं - 'आचरणकी सभ्यता', 'सच्ची वीरता', 'मजदूरी और प्रेम'। बालमुकुन्द गुप्त ने सम - सामयिक राजनीति को निबन्ध के बिषय के रूप में चुना । व्यंग्यात्मक भाषा और तीब्र राष्ट्रीय भावना इनके निबन्धों की विशेषता हैं । 'शिव शम्भु का चिट्ठा' इनका महत्वपूर्ण निबन्ध है । आलोच्य युगीन गद्य साहित्य के विवेचनात्मक सर्वेक्षण के आधार पर कहा जा सकता है कि इस युग के साहित्य सृजन का प्रेरक तत्व राष्ट्रीय सांस्कृतिक जागरण ही था । भारतेन्दुयुगीन जागरण ने साहित्य धारा को नये पथ पर मोड़ दिया और साहित्य तथा समाज के अन्तराल को कम कर दिया । यही जागरण द्विवेदीयुगीन साहित्य के प्रत्येक विधा का अनिवार्य अन्तर्वती प्रवाह बन गया । निबन्ध हो या अलोचना, कहानी हो या उपन्यास, नाटक हो या एकांकी, इनके कलात्मक परिधान के भीतर राष्ट्रीय सांस्कृतिक जागरण की चेतना अवश्य परिलक्षित होती है । इस जागरण ने साहित्य के मूल्यों में आमूल - चूल परिवर्तन कर दिया । शास्त्रीय रूढ़ीयाँ टूटने लगे । साहित्य सृजन का उद्देश्य मनोरंजन से हट कर जीवन के त्याग और आदर्शों की ओर मोड़ना हो गया । इस तरह हिन्दी प्रदेश की जनता अपने को नये युग और परिवेश के अनुकूल बना रही थी । इन सब के कारण हिन्दी साहित्य का प्रवेश सभ्य और शिष्ट समाज के योग्य समझा जाने लगा । निष्कर्षतः प्रत्येक दृष्टिकोण से हिन्दी व्यापक प्रतिष्ठा अर्जित कर एक नयी ऊँचाई प्राप्त कर रही थी ।

(ग) प्रवृत्तियाँ :—

तत्कालीन परिस्थितियों का साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा । विभिन्न रचनाओं से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, समस्याओं को रचनाकारों ने अपना प्रमुख कार्य विषय बनाया । युग नया करवट ले रहा था । घिसी - पिटी मान्यतायें जर्जरित भवन के समान झर रही थीं। नयी मान्यताओं से नये युग के निर्माण की नींव डाली जा रही थी । इससे युग के साहित्यिक प्रवृत्तियों में व्यापक बदलाव आया जो निम्न लिखित हैं -

विषय की व्यापकता :

रीति कालीन स्थूल श्रृंगारवाद एवं हास - परिहास मनोरंजन से हिन्दी साहित्य को निकाल कर राष्ट्रवाद, मानव कल्याण, सामाजिक विकास से प्रेरित उद्देश्य पूर्ण रचना विधान का क्रमिक विकास द्विवेदी युग की प्रमुख विशेषता है । आचार्य द्विवेदी तत्कालीन साहित्यकारों को उत्कृष्ट साहित्य रचना के लिए सदा प्रेरित करते रहते थे । साहित्य देश के उत्थान में कैसे योगदान दे सकता है और उसकी भूमिका किस प्रकार क्रांतिकारी हो सकती है, इस सम्बन्ध में द्विवेदी जी लिखते है - ''आँख उठा कर जरा और देशों और जातियों की ओर देखिये । आप देखेगें कि साहित्य ने वहाँ की सामाजिक और राजकीय स्थितियों में कैसे - कैसे परिर्वतन कर डाले हैं । साहित्य ने ही वहाँ समाज की दशा कुछ की कुछ कर दी है । शासन प्रबन्ध में बड़े - बड़े उथल पुथल कर डाले हैं ; यहाँ तक की अनुदार धार्मिक भावों को भी जड़ से उखाड़ फेका है । साहित्य में जो शक्ति छिपी रहती है वह तो, तलवार और बम के गोलों में भी नही पायी जाती । यूरोप में धार्मिक रूढ़ियों का उन्मूलन साहित्य ने ही किया है; जातीय स्वतंत्रता के बीज उसी ने बोया है; व्यक्तिगत स्वतंत्रता के भावों को भी उसी ने पाला - पोसा और बढ़ाया है । पतित देश का पुनरुत्थान भी उसी ने किया है । पाप की प्रभुता को किसने कम किया है ? फ्रांस में प्रजा की सत्ता का उत्पादन और उन्नयन किसने किया है? पदाक्रांत इटली का मस्तक किसने ऊँचा उठाया है? साहित्य ने, साहित्य ने, साहित्य ने ।''[१]

---

१. 'साहित्य की महत्ता' - महावीर प्रसाद द्विवेदी ।

इस प्रकार द्विवेदी जी साहित्य को समाजोपयोगी बनाने के लिए पश्चिम के क्रांति का उदाहरण देकर साहित्यकारों को अभिप्रेरित करते रहे ।

वे साहित्य के विविध विषयों के पक्षधर थे । 'कवि कर्त्तव्य (१९०१ ई०) लेख में उन्होंने साहित्यिक मानदण्डों का जो सारगर्भित विश्लेषण किया उसमें तत्कालीन समग्र साहित्य के प्रवृत्ति अन्तर्निहित हैं । वे लिखते हैं - ''कविता का विषय उपदेशक और मनोरंजक होना चाहिए । यमुना के किनारे केलि कौतूहल अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका । अब न 'परकीयाओं' पर प्रबन्ध लिखने की कोई आवश्यकता है और ही न 'स्वकीयाओं' के गतागत की पहेली बुझाने की । चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु, भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य, बिन्दु से लेकर समुद्र पर्यन्त जल ...... अनन्त आकाश .... अनन्त पृथ्वी .... अनन्त पर्वत .... अनन्त जंगल सभी पर कविता हो सकती है, सभी से उपदेश मिल सकता है और सभी के वर्णन से मनोरंजन हो सकता है, फिर क्या कारण है कि इन विषयों को छोड़ कर स्त्रियों की चेष्टाओ का वर्णन करना ही कोई - कोई कवि कविता की चरम सीमा समझते हैं .... केवल अविचार और अन्ध परम्परा ।''

उपर्युक्त विचारो के आलोक में देखा जा सकता है कि द्विवेदी जी संसार में व्याप्त सभी चर अचर विषयों को साहित्य का विषय वस्तु मानते हैं । द्विवेदी युग में साहित्य के विषय वस्तु का और विस्तार हुआ । मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं पर साहित्य रचा जाने लगा । एक ओर इतिहास प्रेरणा लेकर उसे आधुनिक संदर्भ में रखा गया, तो दूसरी ओर तत्कालीन समस्याओं को विषय वस्तु के रूप में चुना गया । पहले काव्य रचना, गद्य रचना के लिए विशिष्ट वर्ग का चुनाव होता था । अब जनसाधारण और सर्वसाधारण से सम्बन्धित रचनायें होने लगीं । समान्य से सामान्य व्यक्ति को केन्द्र में रख कर साहित्य रचना होने लगी । नारी को भोग की वस्तु की घेरे से बाहर निकाला गया । उसे अबला से सबला का रूप दिया गया । द्विवेदी युग में सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुयी कि अब तक जिन नारी पात्रों को साहित्य में उपेक्षित किया गया था, उनपर काव्य रचनाये हुयीं । यशोधरा, उर्मिला, विष्णु प्रिया, माण्डवी हिडिम्बा आदि को एक नये रूप में प्रस्तुत किया गया । पुरुष द्वारा उपेक्षित ये नारी पात्र पुरुष के उत्थान की छिपी शक्ति के रूप में चित्रित किये

गये।

साहित्य में आलौकिकता की जगह लौकिकता को स्थान मिला। लौकिकता में भी मानवीयता, आदर्शवाद और यथार्थवाद को ही आश्रय मिला। अब कल्पना को छोड़ कर यथार्थ के कठोर धरातल पर साहित्य सृजन होने लगा। तत्कालीन सभी साहित्यकारों ने चाहे वे काव्य रच रहे हों या गद्य, लोकमंगल और लोकरक्षा को ही मुख्य ध्येय बनाया गया। साहित्य विशिष्ट वर्ग के प्रासाद से उतर कर सर्वहारा के झुग्गी - झोपड़ी तक पाँव पसार रही थी।

राष्ट्रीय , देश भक्ति, सुधार :—

अंग्रेजों की शोषण नीति से जनता त्रस्त थी। देश का धन एक तरफ विदेश जा रहा था, तो दूसरी ओर देशी कुटीर उद्योग नष्ट हो रहे थे। पश्चिम के सम्पर्क से जनता को पता चला कि उन्हीं के देश में उनके अधिकारों को दबाया जा रहा है, जिन्हें वर्षों पहले यूरोपीय जनता प्राप्त कर चुकी थी। भारतीय नेताओं से लेकर साहित्यकारों तक और मजदूरों से किसानों तक सभी ने जालिम शासन को उखाड़ फेंकने के लिए कमर कस लिया। साहित्यकारों ने राष्ट्रीय जागरण के प्रचार के लिए लेखन शुरू कर दिया। अंग्रेजी सरकार के राष्ट्रीय भावना के विरोधी होने के बाद भी आचार्य द्विवेदी; कवियों और लेखकों को भयमुक्त हो कर राष्ट्रीय भावनाओं से ओत - प्रोत रचना करने के लिए प्रेरित करते रहे। तत्कालीन सभी कवियों ने देश भक्ति एवं सुधार से युक्त कविताएँ लिखकर राष्ट्र को उन्नति की ओर ले जाने का प्रयास करते रहे। जन्म भूमि के प्रति प्रेम प्रकट करते हुए आचार्य द्विवेदी लिखते हैं -

'जन्म भूमि की बलिहारी है।
यह सुरपुर से भी प्यारी है।'[१]

इसी परिप्रेक्ष्य में मनन द्विवेदी ने भी लिखा है -

---

१. द्विवेदी काव्य माला' (महावीर प्रसाद द्विवेदी) पृ० ३६९

'ऐसी मातृभूमि मेरी है स्वर्गलोक से भी न्यारी ।
जिसके पद कमलों पर मेरा तन मन धन सब बलिहारी ।।'

राष्ट्र गायक मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के सर्वश्रेष्ठ कवि थे परिस्थितियों के अनुकूल उन्होंने भी समय को वाणी प्रदान की । 'मातृभूमि' नामक कविता में वे कहते हैं -

'जय जय भारत भूमि भवानी ।
अमरों ने भी तेरी महिमा बारम्बार बखानी ।।'[१]

राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार हो रहा था । राष्ट्रनेता देश को परतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्त कराना चाहते थे । एक ओर कवियों ने देश को विश्व में श्रेष्ठ माना, तो दूसरी ओर यह आत्मचिन्तन करने के किये भी कहा कि आखिर हम क्यों गुलाम हुए । भारत की श्रेष्ठता के बारे में सियाराम शरण गुप्त ने लिखा -

'पृथ्वी का श्रेष्ठ सितारा है,
भारत सर्वस्व हमारा है।'

इसी सन्दर्भ में मैथिली शरण गुप्त कितने विश्वास के साथ घोषणा करते हैं -

भूलोक का गौरव, प्रकृति का पुण्यलीला स्थल कहाँ ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है ?
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन ? भारतवर्ष है ।। [२]

\+ + + + + + + + + +

'धरती हिलकर नीदं भगा दे
बज्रनाद से व्योम जगा दे
दैव, और कुछ आग लगा दे। [३]

इसी भाव भूमि पर श्रीधर पाठक की यह रंचना पठनीय है-

---

१. मंगल घट (मैथिली शरण गुप्त) पृ० ३३
२. भारत भारती - मैथिली शरणुप्त
३. स्वदेश संगीत - मैथिली शरण गुप्त

'वन्दनीय वह देश जहाँ के देशी निज अभिमानी हों ।
बान्धवता में बँधे परस्पर परना के अज्ञानी हों ।।'

कविवर नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने स्वतंत्रता-प्राति के लिये क्रान्ति एवं आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा दी -

'देश भक्त वीरों मरने से नेक नहीं डरना होगा ।
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा ।'[१]

देश की हीन, दशा - धैर्य, गाम्भीर्य, शौर्य तथा कला कौशल के अभाव - पर भी कवियों ने क्षोभ व्यक्त किया । ठाकुर गोपालशरण सिंह की काव्य पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं -

''वह धीरता कहाँ है गम्भीरता कहाँ है ?
वह वीरता हमारी, है वह कहाँ बड़ाई ?
क्या हो गयी कलायें कौशल सभी हमारे ?
किसने शताब्दियों की ली छीन सब कमाई ?''

१९१४ ई० में माखन लाल चतुवेर्दी ने लिखा -

''क्यों पड़ी परतन्त्रता की बेड़ियाँ,
दासता की हाय हथकड़ियाँ पड़ी ।
न्याय के 'मुह बन्द' फाँसी के लिये,
कंठ पर जँजीर की लड़ियाँ पड़ी ।।''

जागरण और अभियान गीतों द्वारा कवियों ने भारतीय जनमानस को अन्यायी शासक के खिलाफ तैयार किया । देश की आर्थिक विपन्नता, सामाजिक कुरीतियों, रूढ़ प्रथाओं तथा धार्मिक आडम्बरों का द्विवेदी युगीन कवियों ने स्पष्ट शब्दों में प्रत्याख्यान किया । स्वेदशी वस्तुओं के प्रयोग तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार पर बल दिया । मातृभूमि की महिमा का गान भी देशभक्ति का अंग है, जिसकी ओर अनेक कवियों ने आग्रह पूर्वक ध्यान दिया है । रूपनारायाण पाण्डेय कहते हैं -

---

१. बलिदान गान - नाथूराम शर्मा 'शंकर'

'उठो उठो क्यों शिथिल पड़े हो? देखो सुदिन सबेरा है,'[१]

\+ + - + + +

'न होगी हैट नैकटाई, न कालर और पतलूने,
हम इंग्लिश कोट को फिर से अंगरखा करके छोड़ेंगे।। '[२]

समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने के लिये साहित्यकारों ने रचनायें की। उपन्यास, निबन्ध, नाटक, कहानी एवं लेखों के माध्यम से यह कार्य हुआ। काव्य रचनाओं से लोगों को सही और गलत का ज्ञान कराया गया। भारतीय समाज को केन्द्र में रखकर रचनायें हुयीं। समाज को नये दृष्टि से देखने का यह प्रथम प्रयास था। आर्यसमाज, ब्रह्म समाज, रामकृष्ण मिशन और थियोसोफिकल सोसाइटी आदि के द्वारा सामाजिक सुधार के लिए आन्दोलन चलाये गये। राष्ट्रीय जन आन्दोलन, राजनीतिक उथल - पुथल मानवतावादी दृष्टिकोण द्वारा सामाजिक काव्य रचना की प्रवृत्ति का प्रसार हुआ। विषयों का नया भण्डार मिला। विधवा, किसान, नारी, दुर्भिक्ष, दलित, बाल और वृद्ध विवाह, निर्धनता, छुआ - छूत, दहेज, दम्भ, पाखण्ड, आडम्बर, छलकपट, अविद्या, धार्मिक और नैतिक पतन, शिक्षा, पर्दाप्रथा, पुजारी, पण्डे, तीर्थ, रईसों की विलाशिता, हिन्दू - मुस्लिम समस्या आदि न जाने कितने विषय थे जिन पर सहित्यकारों ने लेखनी चलायी और सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन की माँग प्रस्तुत की।

बाल विधवाओं की दीन - हीन दशा का कारुणिक चित्रण करते हुए श्रीधर पाठक लिखते हैं -

''दुखी बाल विधवाओं की है जो गती।
कौन सके बतला, किसकी इतनी मती।।
दुःख सुख मरना जीना एक समान है।
जिनके जीते जी दी गयी तिलांजलि।''[३]

हिन्दू समाज की कठोर निष्ठुरता पर वे आगे लिखते हैं -

''बाल विधवा श्रापवश यह भूमिका पातक भई।
होत दुःख अपार सजनी निरखि जग निठुराई।'[४]

---

१. बलिदान गान - रूप नारायण पाण्डेय, पृ० २४८
२. ''पराग देश सम्बन्धी प्रोत्साहन'' - रूपनारायण पाण्डेय, पृ० २०
३. 'मनो विनोद' - श्रीधर पाठक, पृ० ७६
४. वही, पृ० १७०

कविवर नाथूराम शर्मा ने जाति प्रथा के कठोर और उलझी हुयी व्यवस्था पर तीखा प्रहार करते हुए इनको सुलझाने का संकल्प लेते हुए लिखा है कि -

"जाति पाँति के धर्म जाल में उलझे पड़े गँवार ।
मै इन सबको सुलझा दूँगा, करके एकाकार ।"[१]

गुप्त जी ने 'भारत भारती' में अपनी सुसम्पन्न लेखनी को विराट फलक प्रदान करते हुए समाज के प्रत्येक पक्ष का स्पर्श किया -

"हिन्दू समाज कुरीतियों का केन्द्र जा सकता कहा ।
ध्रुव धर्म पथ में कुप्रथा का जाल सा है बिछा रहा ।।"

इस प्रकार रामकृष्ण मिशन आदि के द्वारा चलाये गये सामाजिक सुधारों से अनुप्राणित होकर तत्कालीन कवियों ने समाज को एक नये राह पर लाने के लिए महान कार्य किया ।

मानवतावादी दृष्टिकोण :—

भारतेन्दु काल से ही भारतीय जन समाज में एक युगान्तकारी परिवर्तन प्रारम्भ हो गया था । किसी भी बात को अन्ध श्रद्धा या अगाध विश्वास के आधार पर न मान कर तर्क की कसौटी पर कसने के बाद, मानने की वैज्ञानिक चेतना का विकास होने लगा । खण्डन मण्डन, तर्क - विर्तक और बौद्धिक जागरण के फलस्वरूप सत्य के द्वार तक दस्तक देने की प्रवृत्ति जाग गयी । नी र- क्षीर विवेक की इस प्रवृत्ति ने साहित्य जगत को भी प्रभावित किया । पश्चिमी विज्ञान, शिक्षा एवं साहित्य ने साहित्यकारों को विषयों को देखने की एक नवीन दृष्टि एवं एक नया तेवर प्रदान किया । इसी के आलोक में साहित्यकारों ने स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, राममोहन राय आदि के मानवतावादी चिन्तन से अनुप्राणित होकर मनुष्यता में ही देवत्व का

---

१. सरस्वती, खण्ड संख्या ०५ सन् १९०८ ई० - नाथूराम शर्मा

आरोपण किया । साहित्य में इस विचार धारा को हम स्पष्ट रूप में देख सकते हैं । राम और कृष्ण अब देवताओ के रूप में नही बल्कि मानवीय रूप में चित्रित होने लगे । 'साकेत' और 'प्रिय प्रवास' में रामकृष्ण को मानवीय धरातल पर उतार कर जन सामान्य के आदर्शों के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है । 'पंचवटी' के लक्ष्मण का कथन यह दर्शाता है कि मनुष्यता के द्वारा ही देवत्व की भी उत्पत्ति होती है -

"मै मनुष्यता को सुरत्व की,
जननी भी कह सकता हूँ।" [१]

साहित्य में मानवीय भावना किस प्रकार जाग्रत हो रही थी वह द्विवेदी युगीन कवि 'ठाकुर गोपाल शरण सिंह' की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है -

"मानव का जीवन ही जग में
मानवता का माप हुआ ।
भव्य भावनाओ का आकार
बन कर काव्य कलाप हुआ।"

द्विवेदी युग के साहित्य में मानवता को रूढ़िगत धर्म से भी बड़ा माना गया । मन्दिरों के भव्यतम् प्राचीरों में धर्मकपाटों से बन्द, भोग प्रसादों का सेवन करने वाले कैद नारायण को वहाँ से मुक्त करके दीन, हीन, दलीत, किसान, मजदूर और दरिद्रनारायण में स्थापित किया गया । इनकी सेवा को ही ईश्वर - सेवा का ही रूप माना गया । कृषक, मजदूर, दलित आदि का कारुणिक चित्रण काव्य के वर्ण्य विषय बने । किसनों की दीन - हीन दशा पर मैथिलीशरण गुप्त लिखते है -

"पानी बना कर रक्त का, कृषि कृषक करते हैं यहाँ ।
फिर भी अभागे भूख से, दिन रात मरते हैं यहाँ ।'

गया प्रसाद शुक्ल मजदूरों का पूँजीपतियों द्वारा शोषण का मार्मिक चित्रण किया है -

"खपाया किये जान मजदूर, पेट भरना पर उनका दूर ।
उड़ाते माल धनिक भरपूर, मलाई, लड्डू, मोतीचूर ।" [२]

---

१. 'पंचवटी' - मैथिली शरण गुप्त
२. 'मर्यादा' - गश प्रसाद शुक्ल 'सनेही' पृ० ४९

वस्तुतः मानव सुलभ सहानुभूति, स्वामी विवेकानन्द जैसे महापुरुषों के विचारों एवं भावधारा का प्रेरक स्पर्श पाकर काव्यधारा के रूप में जीवंत हो उठे । इसी भावना से प्रेरित होकर 'हरिऔध' ने उच्चतर जातियों द्वारा निम्न जातियो के प्रति किये गये अन्याय और दुर्व्यवहार का हृदयस्पर्शी उल्लेख किया है :

"आप आँखे खोल कर के देखिये,
आज जितनी जातियाँ है सिर धरी ।
पेट में उनके पड़ी दिखलायेगी,
जातियाँ कितनी सिसकती या मरी ।"

'सरस्वती' उस युग की जन चेतना की पत्रिका बन गयी थी। लेखों के माध्यम से लेखकों ने जन-जागरण का कार्य किया । जून १९१४ ई० में 'सरस्वती' में द्विवेदी जी ने "हमारे गरीब किसान और मजदूर' शीर्षक से कविता छापी । कवि थे 'जनार्दन भट्ट' इसमें अमीरी - गरीबी के रूप का विश्लेषण किया गया है । वर्ग चेतना का यह प्रथम प्रयास था :

"सबके होकर रहो, सहो सबकी व्यथा,
दुखिया होकर सुनों, सभी की दुःख कथा ।
परहित में रत रहो, प्यार सबको करो
जिसको देखो दुःखी, उसी का दुःख हरो ।
बसुधा बने कुटुम्ब, प्रेम धारा बहे,
मेरा तेरा भेद, नही जग में रहे ।।"

इस प्रकार द्विवेदी युगीन साहित्य में जहाँ नये - नये विषयों का समावेश हुआ वही पुरानी सड़ी - गली मान्यताओं की जगह प्रगतिशील विचारधारा का प्रवेश हुआ जिससे अनुप्राणित हो लेखकों और कवियों ने साहित्य रचना कर समाज और राष्ट्र को प्राचीन गौरव और गरिमा प्रदान करते हुए आगे बढ़ाने का महती कार्य किया ।

द्विवेदी युगीन साहित्य का :—

साहित्य समाज का दर्पण होता है। हिन्दी साहित्य के उत्थान का

सम्बन्ध भारत की तत्कालीन बदलती हुयी समाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों से है । द्विवेदी युग से हिन्दी गद्य की विविध विधाओं का विकास हुआ । एक ओर राजनीतिक उत्थान पतन का दौर चल रहा था, तो दूसरी ओर साहित्य में निरन्तर विकास का रूप भी उभर रहा था । इस युग में साहित्य सृजन का प्रेरक तत्व राष्ट्रीय सांस्कृतिक जागरण था । इस जागरण ने साहित्य के मूल्यों में परिर्वतन किया । शास्त्रीय रूढ़ियॉं टूटीं, साहित्य का उद्देश्य व्यापक जनसमुदाय को प्रभावित करना और उसे उदात्त मानवीय मूल्यों से युक्त आदर्श जीवन की ओर मोड़ना माना गया । साहित्य धनाढ्य रसिको के रंगमहल की वस्तु न होकर समस्त शिक्षित जनता की वस्तु बन गया । नयी जीवनदृष्टि ने नई भाषा को माध्यम बनाया । खड़ीबोली पूर्णतया प्रतिष्ठित हुयी । उसे पण्डिताऊपन और ठेठ गँवारूपन से मुक्त करके माँजा सँवारा गया । भाषा को युग की नयी चेतना की अभिव्यक्ति के लिए सक्षम बनाने की चेष्टा की गयी । अपने सीमित साधनों को संगठित करके साहित्यकारों ने योजनाबद्ध रूप में साहित्य के आभावों के पूर्ति का प्रयत्न किया । साहित्य का स्वर क्रमशः गम्भीर हुआ । उसमें दायित्व बोध जागा। साहित्य को शिष्ट समाज में प्रवेश पाने के योग्य समझा जाने लगा । हिन्दी को व्यापक प्रतिष्ठा प्राप्त हुयी । हिन्दी का प्रचार राष्ट्रीय विचारधारा का प्रचार बन गया । बड़े - बड़े नेताओं ने हिन्दी को अपनाया । पत्र - पत्रिकाओं का प्रकाशन बढ़ा ।

द्विवेदी जी ने हिन्दी भाषा को अनुवाद के द्वारा उत्पन्न अराजकता के वातावरण से बाहर निकाला । साहित्य को विषयों की परिसीमा से बाहर निकाला । साहित्य में मानवतावादी दृष्टि कोण का प्रचार हुआ । साहित्य में सर्वहारा वर्ग को स्थान दिया गया । चाहे मजदूर हो या किसान, नारी हो या दलित सभी की समस्याओं को साहित्य में स्थान दिया गया ।

द्विवेदी युग की कविता राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता है । उस समय के साहित्य की सबसे बड़ी माँग राष्ट्रीयता थी । देश को जालिम विदेशी शासन से मुक्त कराना सबसे बड़ी आवश्यकता थी । रचनाओं के माध्यम से लोगो में राष्ट्रीय भावना फैलाकर साहित्यकारों ने स्वाधीनता आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । उस समय रचनाकारों की रचनायें लोगो के लिए प्रेरणा स्रोत बन गयीं । इस युग की राष्ट्रीयता, साम्प्रदायिकता और प्रान्तीयता से ऊपर अति उदार व्यापक राष्ट्रीयता है । मातृभूमि के लिए सर्वस्व बलिदान, स्वार्थ त्याग तथा पारस्सपरिक

वैमनस्य को दूर करने की अमोघ प्रेरणा देकर इन कवियों ने असंकीर्ण राष्ट्रीय भावना को विकसित किया तथा तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलनों को बल प्रदान किया।

इस युग की कविता का सांस्कृतिक पक्ष अत्यन्त सबल है। उसी में इसकी शक्ति निहित है। उन्होंने शुभ - पक्ष को प्रोत्साहित किया। अशुभ - पक्ष को तिरस्कृत किया। जहाँ सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक आडम्बरों तथा निरर्थक रूढ़ियो पर जोरदार प्रहार किये, वहाँ अपनी परम्परा के उपयोगी तत्वों का सबल समर्थन और पोषण भी किया।

प्रस्तुत युग में एक मानवतावादी दृष्टिकोंण गृहीत हुआ। सामान्य मानव के गौरव की प्रतिष्ठा पहली बार इसी युग में हुयी। महिमामण्डित ही नही क्षुद्र और तुच्छ भी काव्य का विषय बना। इस प्रकार द्विवेदी युग में काव्यभूमि का अद्भुत विस्तार हुआ। आचार्य द्विवेदी के अथक प्रयत्नो से गद्य और पद्य की भाषा का एकीकरण 'खड़ी बोली'- जो बोलचाल की भाषा थी - के रूप में हुआ। शनैः - शनैः उसका स्वरूप निश्चित, सुघड़ और मधुर बनता चला गया। काव्य में सदुपदेश और उच्चादर्शो का समावेश अन्त तक बना रहा।

सामान्यतया द्विवेदी युगीन काव्य सांस्कृतिक पुनरुत्थान, उदार राष्ट्रीयता, जागरण सुधार, एवं उच्चादर्शों का काव्य है। इसमें विषयगत अपार वैविध्य एवं व्यापकत्व मिलता है। सभी काव्य रूपों का सफल प्रयोग इस युग में हुआ। राष्ट्र के उद्बोधन एवं विभिन्न संस्कारों आदि के कारण हिन्दी काव्य के इतिहास में इस युग का अवमूल्यन नही किया जा सकता है।

इस प्रकार द्विवेदी युग में हिन्दी साहित्य को एक नया आयाम मिला।

चतुर्थ अध्याय

रामकृष्ण – विवेकानन्द
भावधारा का
द्विवेदी युगीन काव्य पर प्रभाव

(अ) धार्मिक प्रभाव

(ब) राष्ट्रीय प्रभाव

(स) सामाजिक प्रभाव

(द) आर्थिक प्रभाव

द्विवेदी युग के पूर्व कविता के क्षेत्र में मुख्यतः श्रृंगार, नायिका भेद एवं ज्ञान के पाण्डित्यपूर्ण प्रदर्शन की भावना प्रमुख रूप से व्याप्त थी। उन्नीसवीं शताब्दी का अन्त होते-होते यह हवा बदलने लगी। वैज्ञनिक दृष्टिकोंण के प्रसार से नवजागरण की लहर दौड़ गयी। राष्ट्र के उत्थान की भावनाओं के विकास से राजनीति के क्षेत्र में क्रान्ति फैल गयी। अंग्रेजों की नीतियों से जनता के अन्दर आक्रोश बढ़ता ही गया। इस प्रकार १९०० से १९२०ई० के बीच जितनी भी राजनीतिक घटनाएँ घटी उसका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर भी पड़ा। इसके साथ धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में भी बड़ा परविर्तन हो रहा था। यह परिवर्तन तत्कीलन समाज सुधारक एवं समाज सुधार आन्दोलनों द्वारा उपस्थित हुआ। रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, राम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन, एनीबेसेन्ट जैसे समाज सुधारक नेताओं ने राष्ट्रीय सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक पुनरुद्धार के लिये महत्वपूर्ण कार्य किये। रामकृष्ण मिशन, ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, थियोसॉफिकल सोसाइटी आदि संगठनों के द्वारा अपने- अपने तरीकों से सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों को दूर करने का सार्थक प्रयत्न किया जा रहा था। छुआ- छूत, बाल विवाह, वर्ण - भेद, शिक्षा का अभाव तथा अन्धविश्वास आदि कुरीतियॉं समाज को खोखला कर रही थीं। विवेकानन्द सदृश तत्कालीन समाज उद्धराकों ने इन कुरीतियों को नष्ट करने के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनके द्वारा राष्ट्रीय जागरण एवं राष्ट्र की स्वतन्त्र कराने की प्रेरणा ने लोगों को जाति, धर्म और वंश से ऊपर उठ कर राष्ट्रीय विकास के कार्यो में प्रेरित किया। हिन्दू-मुस्लिम एकता, हरिजनोद्धार एवं मानवता के कार्यो के लिए जनमानस को रामकृष्ण एवं विवेकानन्द आदि नेताओं ने नया चिन्तन प्रदान किया। इन सबके प्रभाव से पुरानी परम्पराओं एवं मान्यताओं की बेड़ियॉं टूटने लगीं और लोग एक नयी दिशा की ओर उन्मुख हुए।

द्विवेदी -युगीन काव्य में रामकृष्ण- विवेकानन्द भावधारा के प्रभाव का अवलोकन - धार्मिक ,राष्ट्रीय, सामाजिक एवं आर्थिक वर्गो में विभाजित कर- किया जा सकता है -

(अ) धार्मिक प्रभाव

इस युग में पौराणिक धर्म की प्रमुखता के कारण बहुदेववाद, यात्रा, ब्रत,

कर्मकाण्ड, मूर्तिपूजा और त्यौहारों का बोलबाला था। धर्म अपने मूल प्रकृति से दूर होकर अनेक जटिलताओं में उलझ गया था। पढ़े- लिखे लोगों पर पश्चिम के प्रभाव के कारण अनीश्वरवाद एवं नास्तिकता का प्रभाव बढ़ रहाथा। प्रत्येक धर्म,मत, पन्थ और सम्प्रदाय आपस में उलझ कर जनता के समक्ष धर्म की गलत व्याख्या प्रस्तुत कर रहे थे। संक्षेप में धर्म पतनोन्मुख हो चुका था ऐसे विखराव के युग मे रामकृष्ण देव अपीन सहज, सहल आडम्बरहीन पूजा पद्धति के द्वारा- धर्म की जटिलता के पाश में जकड़े हुए- लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं इन्होंनें सभी धर्मों को एक ही लक्ष्य तक पहुँचने के विवधि मार्ग बताते हुए, उनका समन्वय किया। अनीश्वरवादी एवं नास्तिकों का सन्देह दूर करते हुए इन्होंनें पूरे विश्वास से कहा कि, ईश्वर है और ईश्वर की प्राप्ति ही जवीन का चरम् लक्ष्य है। वह ईश्वर सामाजिक मूल्यों की उपेक्षा करके पहाड़ या गुफाओं में बैठने से नहीं मिलेगा। वह तो प्रत्येक जीव में विद्यमान है। रामकृष्ण देव कहते हैं -" जीव ही शिव है। जीव की सेवा ही ईश्वर की सच्ची आराधना है।" धर्म के इन्हीं मूल तत्वों को आधार बना कर विवेकानन्द जीवन पर्यन्त मानव कल्याण एवं मानवहित का कार्य करते रहे। रामकृष्ण देव माँ काली के सगुण रूप के अनन्य भक्त थे। वे पूर्ण समर्पण भाव से अपनी इष्ट देवी की आराधना तथा वन्दना किया करते थे। इनके अनुसार आर्त होकर समर्पण भाव से पुकारने पर ही ईश्वर की कृपा मिलती है। इससे प्रभावित होकर द्विवेदी युग के कवियों ने आर्त एवं समर्पण भाव से परिपूरति हो ईश्वर विषयक अनेक रचनायें की। शिवकुमार त्रिपाठी की 'आह्वान' कविता में यह भाव देखा जा सकता है -

'दयामय क्यों हो गये कठोर।
हाय! तनिक भी पड़ी न मुझ पर दया दृष्टि की कोर।
दैन्य और दुःख झन्झानिल मुझे रहा झकझोर।
तो भी आप बने हैं निश्चल चले न मेरी ओर॥'[१]

उपर्युक्त कविता में कवि ईश्वर की कृपा प्राप्त करने के लिए अर्त भाव से उसे पुकार रहा है।

अनीश्वरवाद एवं नास्तिकता पर प्रहार करते हुए ईश्वर एवं उसकी कृपा पर दृढ़ विश्वास व्यक्त करते हुए रामकृष्ण देव- भावधारा से अनुप्राणित होकर मैथिलीशरण गुप्त' नाम का

---

१. 'सरस्वती' - वर्ष १९१८ अंक - जून पृ० २८१

साहरा' शीर्षक से अपनी भावना इस तरह व्यक्त करते हैं -

' किस पाप पंक से है मानस मलिन हमारा,
जिससे विहार उसमें होता नहीं तुम्हारा।
संकोच कर रहे हैं पद-पद्म क्यों तुम्हारे,
क्या धो उन्हें न देगी अविराम अश्रु धारा ।।''[१]

याचना के साथ-साथ कवि को प्रभु की कृपा पर पूर्ण विश्वास भी है और वह प्रभु के सहारे के अतिरिक्त किस अन्य सहारे की कामना भी नही करता है:-

'' अनुचित कभी नही है यह याचना हमारी,
तुमने कृपालु होकर किसको नही उबारा।
हे देव! हे दयाधन!! तुम भूल क्यों न जाओ,
है बस हमें तुम्हारे शुभ नाम का सहारा ।।''[२]

रामकृष्ण के ईश्वर को मन-प्राण से व्याकुल होकर पुकारने की बात को 'विरहाकुल' कविता में इस प्रकार व्यक्त किया गया है :-

'' प्रभो तुम्हारे शुभागमन की सुनी न मैंने कुछ भी बात,
निज प्रण के पक्के हो प्यारे आज हो गया मुझको ज्ञात।
नटवर यह वियोग का अभिनय बन्द करो, है चित्त अशान्त,
क्या मेरे जीवन नाटक का अन्तिमांक होगा दुःखान्त ।।''[३]

इस कविता में कवि अपने हृदय की वियोग जनित वेदना को ईश्वर के पाद - पद्मों में समर्पित करते हुए मिलन की आंकाक्षा रखता है।

ईश्वर को सर्वशक्तिमान और सर्वव्याप्त मानते हुए अपने जीवन-मृत्यु, उत्थान - पतन, यश - अपयश, सुख और दुःख सभी भावों को, उसी को समर्पित कर लोचनप्रसाद पाण्डेय 'ईश विनय' कविता के माध्यम से अपनी भावना इस तरह व्यक्त करते है -

---

१- सरस्वती वर्ष १९१४ अंक - सितम्बर पृ० ५०८
२. वही
३. सरस्वती वर्ष १९१८ अंक - सितम्बर पृ० २०२

'तूने साराजगत बनाया,
अनुपम दृश्य हमें दिखलाया।
सूरज,तारे, चाँद बनाये,
जल,थल, अनल, पवन प्रकटाये।

जीना-मरना तेरे हाँथ,
अधःपतन, उन्नति तव साथ ।
यश - अपसश का तू ही दाता,
रोग - शोक भव - भय दुख त्राता।।''[१]

ईश्वर की विराटता व्यापकता, सर्वशक्ति सम्पन्नता आदि विभूतियों से अभिभूत हो कर उस जगत नियन्ता की शक्ति का वर्णन करते हुए अयोध्यासिंह उपाध्यय 'हरि औध' 'प्रभुप्रताप' नामक कविता में लिखते है :-

''चाँद वो सूरज गगन मे घूमते हैं रातदिन,
तेज वो तुमसे दिशा होती है उजली वोमलिन ।
वायु बहती है, धरा उठती है अगिन,
फूल होता है। अचानक बज्र से बढ़ कर कठिन ।
जिस निराले काल के भी काल के कौशल के बल,
वह करे सब काल में संसार का मंगल सकल ।।''[२]

आगे कवि उसके सामथर्य कावर्णन करते हुए लिखता है-

''क्यानही है हाथ में उसके वह क्या करता नही,
चाहता जो कुछ है वह फिर वह कभी टरता नहीं ।
सुख नही पाता है वह जिस परहै वह ठरता नही,
कौन फिर उसको भरे जिसको है वह भरता नहीं ।
जिसकी है करतूत उसकी वह निराली है सभी,
उसके भेदों का पता कोई नहीं पाता कभी।।''[३]

---

१. सरस्वती वर्ष १९०८ अंक - जनवरी पृ० १८
२. वही १९०७ मई पृ० २०६
३. वही

जो काल के साथ रमण करे वही काली है मानते हुए रामकृष्ण देव माँ काली को उद्भव सिथित संहार कारिणी तीनो रूपों मे देखते थे। ईश्वर के स्रष्टा, पालनकर्त्ता एवं संहारकर्ता तीनों रूपों का महत्व द्विवेदी युगीन कवियों ने भी समझा हैं, एक तरफ वह सर्जक हैं तो दूसरी तरफ घ्वंस का कारण भी। सम्पूर्ण सृष्टि उसकी लीला का विलास है।इसी बात को अयोध्या सिंह उपाध्याय इस तरह व्यक्त करते हैं -

कितने ही सुन्दर बसे नगरों को देता है उजाड़
धूल कर देता है ऊँचे-ऊँचे कितने ही पहाड।
एक झटके मे करोड़ों पेड़ लेता है उखाड़,
इस सकल ब्रह्मांड को पलभर में सकता है विगाड़।

उसके भय से कांपते है देवता भी रात-दिन
मोम हो जाता है वह भी जो है पत्थर से कठिन।
राज पाकर जिसको करते देखते थे हम विहार,
माँगता फिरता है वह कल भीख हाथों को पसार।

एक टुकड़े के लिए जो घूमता था द्वार-द्वार,
आज धरती है कँपाती उसके धौंसे की हुँकार।
नित्य ऐसी कितनी ही लीला किया करता है वह,
रंक करता है कभी सिर पर मुकुट धरता हैं वह ।।''[१]

ईश्वर से अमृत-लाभ की अभिलाषा करते हुऐ श्रीधर पाठक उससे याचना करते हैं -

''जय -जय श्रीश हे! भुवन-भूपति,भूत गति,
जय करुणा निधे, जगत कारण, सत्य सखे।
सुहृद त्रिधाम के सकल सद्गुण मन्दिर हे !
नित-नित दे हमें, अमृत-जीवन ज्योति हरे।।''[२]

'संसार में रहते हुए सांसारिक सुखों के मध्य ईश्वरीय सत्ता की अनुभूति करते रहना चाहिए। रामकृष्ण देव की इस बात को श्रीधर पाठक इस प्रकार व्यक्त करते है -

---

१- सरस्वती वर्ष१९०७ अंक - मई पृ० २०६
२. भारत गीत - श्रीधर पाठक

"सारा सांसारिक सुख पाकर ईश्वर को पहिचानो हौ।
उसकी विद्यमानता सत्ता वस्तु मात्र में जानो हौ।"[१]

ईश्वर के सगुण रूप माधुर्य में आप्लावित होकर माखनलाल चतुर्वेदी अपनी विरह वेदना इस तरह प्रकट करते हैं -

"श्याम लोचन मनबस गयो रे।
मधुर बैने कर सैन नैन सो छीन लीन मन चैन फेन सो,
कुछ न सुहावत सुधिन रैन सो जब हरि हँसि गयो रे ।।"[२]

अपनी विपत्ति एवं संकट से मुक्ति के लिए माखनलाल जी ईश्वर से सहयोग की अभिलाषा भी रखते हैं -

"नटवरचल चल।
इस बार पड़ी मझधार,
उठा पतवार, अरे करतार।
यह रण तंरगिणी रही मचल
नटवर चल चल ।।"[३]

द्विवेदी युगीन काब्य में ईश्वर के सगुण साकार रूप की भक्ति परक रचनाओं के साथ-साथ स्वामी विवेकानन्द के प्रभाव से उसके निर्गुण - निराकार एवं अद्वैत भाव का दर्शन भी समान रूप से मिलता है। ईश्वर के अभेद एवं अनन्त रूप को किसी भी सीमा में न बाँधकर उसका वर्णन व्यापक रूप में करते हुए 'हरिऔध' लिखते हैं -

" हे प्रभो है भेद तेश शिव भी पाता नहीं,
शेष , शिव,सनकादि को भी अन्त दिखलाता नहीं।"[४]

प्रत्यग चैतन्य आत्मा समष्टि चैतन्य आत्मा का ही स्वरूप है। अविद्या एवं अहं भाव के कारण भेद बुद्धि उप्रन्न होती हैं इसी भाव को अपनी कविता के माध्यम से व्यक्त करते हुए

१. जगत सच्चाई सार - श्रीधर पाठक पृ० ३
२. माखनलाल चतुर्वेदी ग्रन्थावली - ६ ३. वही
४. सरस्वती, वर्ष-१९०७ अंक-मई पृ० २०६

बद्रीनारायण भट्ट लिखते हैं -

"सागर में तिनका है बहता,
उछल रहा है लहरों के बल।
मैं हूँ, मैं हूँ कहता।
धोखे ही धोखे में मित्रों।
अपने को खोयेगा,
जिस गोदी में उछल रहा है
उसमें ही सोवेगा ॥"[१]

संसार के मायाजाल में आवद्ध जीव, जो अपना मूल स्वरूप विस्मृत कर चुका है, उसे उसके स्वरूप कास्मरण दिलाते हुए राधकृष्ण दास बताते हैं -

" हे राजहंस यह कौन चाल।
तू पिंजर बह चला होने, बनने अपना ही आप काल,
यह है कंचन का बना हुआ, तू इसमें मोहित मना हुआ।
कनकावश प्रभावि मानव भी है, उसको विस्मृत भर कर मराल।"[२]

यहाँ कवि का यह आशय है कि -आत्मा का सच्चा निवास यह संसार नहीं है।

'तस्यचाचकः प्रणवः' ओम् परमात्मा का वाचक है। उस ओम्कार को जानकर ही सर्वव्याप्त ब्रह्म को पहचाना जा सकता है। नाथूराम शर्मा शंकर ' इसी बात को व्यक्त करते हुए लिखते हैं -

" ओमक्षर अखिलाधार
जिसने जान लिया।
एक अखण्ड, अकाय, अभंगी, अद्वितीय, अविकार,
व्यापक ब्रहन, विशुद्ध विधाता विश्व - विश्व भरतार
को पँहचान लिया।"[३]

---

१. सरस्वती, वर्ष - १९१८ खण्ड - १९ संख्या - ५
२. वही
३. शंकर सर्वस्व - गीतावली, नाथूराम शर्मा, पृ० ४

ईश्वर को प्रियतम मानते हुए जीवन भर उसके निकट रह कर भी उसके मूल सवरूप को भी न पहचान पाने की वेदना राम नरेश त्रिपाठी इस रूप में प्रकट करते हैं –

' रहकर निपट निकट जीवन भर,
प्रियतम को पहचान न पाई ।
यौवन के दिन व्यर्थ बिनाये,
प्रियतम की न कभी सुधि आयी ।।''[१]

ईश्वर के अलख, निरंजन, अद्वैत, शुद्ध - बुद्ध, चैतन्य स्वरूप का उल्लेख करते हुए नाथूराम शर्मा शंकर कहते हैं -

'' पूरण पुरुष परम सुखदाता,
हम सब को करतारहै ।
मंगल मूल अमंकल हारी,
अगम अगोचर अज अविकारी ।
शिव सच्चिदानन्द अविनाशी,
एक अखण्ड अपार है ।
बिन कर करे चरण बिन डोले,
बिन दृग देखे मुख बिन बोले ।
बिन श्रुति सुने नाक बिन सूंघे,
मन बिन करत विचार है ।''[२]

अपनी एक अन्य रचना में संसार के विभिन्न भ्राँन्ति पूर्ण भेदों को इसी अभेद सत्ता का विस्तार मानते हुए वे लिखते हैं -

'' एक शुद्ध सत्ता में अनेक भाव भासते हैं,
भेद भावना मे भिन्नता का न प्रवेश है ।
नानाकर द्रव्य गुणधारी मिले नाचते हैं,
अन्तर दिखाने वाले देश का न लेश है ।।''[३]

---

१. 'मानसी' - प्रियतम - रामनरेश त्रिपाठी पृ० २६
२. शंकर सर्वस्व - करतार कीर्तन - नाथूराम शर्मा पृ० ५
३. वही, ब्रह्मविवेकाष्टक - वही पृ० ४१

उपर्युक्त सन्दर्भ में यह द्रष्टवय है कि रामकृष्ण देव कहते थे कि - जो निर्गुण है, वे ही सगुण हैं । जिनका नित्य है, उन्हीं की लीला है । मोम के बगीचे में सब मोम का है, परन्तु रूप अनेक हैं । जो सत्ता अरूप है वही रूप हो जाता है, जैसे -एक ही जल 'वाष्प' और'बर्फ' दानों रूपों में रूपान्तरित होता है उसी तरह भाक्ति रूपी हिम से भक्त उसे बर्फ (संगुण-साकार) की तरह बना लेता है । ज्ञान सूर्य के उदय से वह बर्फ पिघल कर जल का, फिर जल ही हो जाता है । अन्ततः सगुण और निर्गुण में कोई भेद नही है । तात्विक दृष्टि से देखने पर वे एक ही हैं । इसी भावधारा को विवेकानन्द ने ग्रहण किया और द्विवेदी युगीन अन्यान्य कवियों में भी इसी का प्रभाव व्यापक रूप से दृष्टिगोचर होता है । नाथूराम शर्मा की इस कविता में यह भाव प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है -

यों शुद्ध सच्चिदानन्द
ब्रह्म को बतलाता है वेद ।
केवल एक अनेक बना है,
निर्विवेक सविवेक बना है;
रूपहीन बन गया रंगीला;
लोहित,श्याम सफेद ॥''[१]

नववेदान्त

रामकृष्ण देव और विवेकानन्द का धर्म समाज से पलायन कर हिमालयगामी या गुफावासी हो कर नाक दबा कर केवल अपना उत्थान कर लेने का विरोध करता है । इनके अनुसार प्रत्येक जीव अव्यक्त ब्रह्म है एवं उसकी सेवा ही ईश्वर की वास्तविक पूजा है । दीन में ही दीनानाथ को देखना उनके धर्म का मूल है । शोषित - पीड़ित, दीन - दुःखियों की उपेक्षा करके धर्म लाभ नही किया जा सकता है । एक बार विवेकानन्द ने जब अपने गुरू रामकृष्ण देव से समाधि सुख की इच्छा प्रकट की तो उनके इस स्वकेन्द्रित उत्थान की भावना पर धिक्कारते हुए रामकृष्ण देव ने उन्हें जन - सेवा के कार्यो के लिये प्रेरित किया । गुरू की इसी प्रेरणा से अभिप्रेरित होकर

---

१. शंकर सर्वस्व - विश्वरूप ब्रह्म - नाथूराम शर्मा पृ० ५

उन्होंने जीवन पर्यन्त दीन - दु:खियों के उत्थान का कार्य किया । उनके अनुसार भूँखों को रोटी देना ही सबसे बडा धर्म है, पड़ोसी भूँखा हो तो मन्दिर में प्रसाद चढ़ाना अपराध हैं । धर्म को उसके व्यापक रूप में, जन - जन के उत्थान के रूप में देखना ही नव वेदान्त है । इस भाव को रामकृष्ण एवं विवेकानन्द के वक्तृत्व एवं कर्तृत्व में व्यापक रूप से देख जा सकता है ।

रामकृष्ण एवं विवेकानन्द के नववेदान्त का द्विवेदी युगीन कवियों पर गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता हैं । इनकी रचनाओं में मानवीय संवेदना, दीन - दु:खी के प्रति प्रेम, एवं शोक्षित पीड़ित के उत्थान की बात व्यापक रूप में अभिव्यंजित हुई है । रामनरेश त्रिपाठी की 'अन्वेषण' नामक कविता में जन - जन में ईश्वर को देखने का विलक्षण भाव प्रकट हुआ है, उनके अनुसार दरिद्र नारायाण का स्मरण ही नारायण का यथार्थ चिन्तन है -

'' मैं ढूढता तुझे था जब कुंज और वन में,
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में ।
तू आह बन किसी की मुझ को पुकारता था,
मैं था तुझे बुलाता संगीत मे भजन में ।

मेरे लिये खड़ा था दु:खियों के द्वार पर तू,
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में ।
बनकर किसी के आँसू मेरे लिये बहा तू,
आँखे लगी थी मेरी तब मान और धन में ।

बाजे बजा-बजा के मैं था तुझे रिझाता,
तब तू लगा हुआ था पतितों के संगठन में ।
मैं था विरक्त तुझसे जग की अनित्यता पर
उत्थान भर रहा था तब तू किसी पतन में ।''[१]

उक्त कविता के माध्यम से कवि बताना चाहता है कि ईश्वर का निवास कुंज और वन में न हो कर दीन - दुखियों के झोपड़े में है, उसे संगीतमय भजन एवं कीर्तन के द्वारा नहीं अपितु किसी के आँसुओं को पोंछ कर प्राप्त किया जा सकता है । कवि आगे कहता है कि -

---

१. मानसी - अन्वेषण - रामनरेश त्रिपाठी पृ० १

" बेबस गिरे हुओं के तू बीच में खड़ा था,
मैं स्वर्ग देखता था झुकता कहाँ चरन में ।
तूने दिये अनेकों अवसर न मिल सका मैं,
तू कर्म में मगन था मैं व्यस्त था कथन में ।

तेरा पता सिकन्दर को मैं समझ रहा था,
पर तू बसा हुआ था फरहाद कोहकन में ।
क्रीसस की हाय में था करता विनोद तू ही,
तू अन्त में हँसा था महमूद के रुदन में ।
प्रह्लाद जानता था तेरा सही ठिकाना,

तू ही मचल रहा था मंसूर की रटनमे ।
अखिर चमक पड़ा तू गाँधी की हड्डियों में,
मैं था तुझे समझता सुहराव की लतन में ।
कैसे तुझे मिलूँगा जब भेद इस कदर है,
हैरान हो के भगवान आया हूँ मैं शरण में ।"[१]

उपर्युकत पंक्तियों में कवि ने पारम्परकि रूढ़िवादी कर्मकाण्डीय अवाधारणाओं का खण्डन करते हुए ईश्वर की प्राप्ति हेतु मानवीय भावनाओं, एवं कर्तव्य कर्मों को ऊँचा स्थान प्रदान किया है ।

ईश्वर को मन्दिर - मास्जिद, गिरजा और गुरुद्वारे से दूर दीन - दुःखियों की भूँख और प्यास में देखने की बात 'राम कहाँ मिलेंगे' कविता में कुछ इस तरह से व्यक्त हुई है -

ना मन्दिर में ना माजिस्द में,
ना गिरजे के आस-पास में ।
ना पर्वत ना नादियों मे,
ना कुंजो में ना उपवन के,
शन्ति - भवन या सुख निवास मे ।

---

१. मानसी - अन्वेषण - रामनरेश त्रिपाठी पृ० २ - ३

ना गाने में, ना बाने मे,
ना आँसू में नहीं हास में ।
ना छन्दों में ना प्रबन्ध में ।
अलंकार ना अनुप्रास मे ।
खोज ले कोई, राम मिलेंगे ।
दीनजनों की भूँख प्यास में ।[१]

स्वामी विवेकानन्द अपने जीवन के अन्तिम समय के कुछ दिन पहले एक भूखें को अपना भेजन कराकर आह्लादित हुए थे । उक्त कविता में वही दर्शाया गया है । दीन जनों के प्रति द्विवेदी -युगीन कवियों का हृदय अत्यधिक कोमल है । 'आकांक्षा' नामक कविता में यह भाव कुछ इस तरह देखा जा सकता है -

'' दु:खी दिलतों में हम आशा की किरन होते,
होते पछतावा अविवेकियों के मन में ।
मानते विधाता का बडा उपकार हम,
होते गाँठ के धन कहीं जो दीन जन के ।''[२]

यहाँ कवि गरीबों के अर्था भाव की स्थिति में उसका धन बनने पर अपने को धन्य मानता है ।

राजा और रंक की समानता ही मानवता है । सभी जीवों में अभेद दृष्टि रखना ही मानवता का मेरुदण है । जय शंकर प्रसाद की 'नमस्कार' नामक कविता में यही भाव मुखारित हुआ है —

'' जिस मन्दिर का द्वार सदा उन्मुक्त रहा है,
जिस मन्दिर में रंक नरेश समान रहा है ।
जिसका है आराम प्रकृति कानन ही सारा,
जिस मन्दिर के दीप इन्दु, दिनकर और तारा,
उस मन्दिर के नाथ को, निरुपम निर्मल स्वस्थ को,
नमस्कार मेरा सदा पूरे विश्व गुहस्थ को ।''[३]

---

१. मानसी - अन्वेषण - रामनरेश त्रिपाठी पृ० २७
२. वही, पृ० १५
३. इन्दु - कला - ४ यंख्या - २ पृ० ९

सर्वव्यापी ईश्वर को कहीं खोजने या ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है । वह परमेश्वर तो जन - जन में विद्यमान है उसकी इस विद्यमानता की अनुभूति सरल स्वभाव से युक्त किसान एवं परिश्रमशील श्रमिक में सहजता से की जा सकती है । मुकुटधरपाण्डेय की इस कविता में यही भाव व्यक्त किया गया है –

" खोज में हुआ वृथा हैरान,
यहाँ ही था तू हे भगवान ।
दीन-हीन के अश्रु नीर में,
पतितों के परिताप पीर में ।
सरल स्वभाव कृषक के हल में,
श्रम सीकर से सिंचित धन में ।
तेरा मिला प्रमाण ।"[१]

ईश्वर को विभिन्न पंथ, मत तथा मन्दिर एवं वाह्य - आडम्बरों में खोजने की अपेक्षा साधारण कुटी में दरिद्र नारायण के रूप में उसका दर्शन करना सरल और सुगम है । मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी निम्न काव्य पंक्तियों मे इन्हीं भावों का अवगुठान किया है -

" तेरे घर के द्वार बहुत है, किससे होकर आँऊ मैं,
सब द्वारों पर भीड़ बहुत है कैसे भीतर जाऊँ मैं ।
द्वार पाल भय दिखलाते हैं,
कुछ भी जन जाने पाते हैं,
शेष सभी धक्के खाते हैं,
कैसे घुसने पाऊँ मैं ।
....
कुटी खोल भीतर आता हूँ,
तो वैसा ही रह जाता हूँ,
तुझको यह कहते पाता हूँ,
अतिथि कहो क्या लाऊँ मै ।।"[२]

इस धरती से परे अन्यत्र किसी दूसरे स्वर्ग की कल्पना करना व्यर्थ है । यहीं सभी

---

१. सरस्वती, वर्ष - १९१७ खण्ड - १८ संख्या - ६
२. वही, स्वयमागत वर्ष - १९१८ अंक - नवम्बर पृ० २२७

को सुखी और सम्पन्न बना कर स्वर्ग को साकार किया जा सकता है । ' साकेत' के मानवतावदी राम जनमानस को यही सन्देश देते हैं -

> ''सन्देश नहीं मैं यहाँ स्वर्ग का लाया,
> इस धरती को ही स्वर्ग बनाने आया ।।''[१]

इस तरह हम देखते हैं कि द्विवेदी -युगीन काव्य में रामकृष्ण देव एवं विवेकानन्द की धर्मिक भावधारा के सभी तत्व व्यापक रूप में विद्यमान हैं । आर्तभाव से ईश्वर की आराधना और वन्दना, ईश्वर को पाने की इच्छा,ब्रह्मांड के कण कण में ईश्वर का अनुभव करना एवं दीन - दुःखी की सेवा करना ही उसकी सच्ची पूजा है, आदि भव द्विवेदी युगीन काव्य में विस्तृत रूप से वर्णित हैं ।

(ब) राष्ट्रीय –भावधारा

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का आरम्भ भारतेन्दु युग से ही होन लगाा था किन्तु उसमें वह उमंग नही थी जो द्विवेदी युग मे देखी जाती है । नयी चेतना और नए दृष्टिकोण के प्रसार से समाज में जनजागरण की लहर दौड़ गयी । अंग्रेजों के दमन और शोषणकारी नीति से जनता त्रस्त थी । राष्ट्र के उत्थान की भावनओं के विकास से राजनीतिक क्षेत्र में भी क्रान्ति फैल गयी । जन- मानस मे स्वराज्य और स्वतन्त्रता की भावना प्रबल होने लगी । इसके लिए तत्कालीन समाज सुधारक और राजनेताओं ने महत्वूपर्ण कार्य किया महातमा गाँधी, लोकमान्य तिलक, दादाभाई नौरोजी, गोपालकृष्ण गोखले आदि राजनेताओं ने देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति एवं इसके उद्धार के लिए सार्थक प्रयत्न किया । स्वामी विवेकानन्द ने मूलतः संन्यासी होते हुए भी राष्ट्र के उद्धार उसकी स्वतन्त्रता एवं उन्नति के लिएअपने ओजस्वी विचारों द्वारा देश में राष्ट्रीयता की एक नयी स्फूर्ति तथा नया प्राण फूंक दिया । देश के उत्थान के लिये प्रत्यक्ष रूप से कार्य करने वाले राजनेता

---

१. साकेत - मैथिलीशरण गुप्त

भी विवेकानन्द की राष्ट्रीय भाव धारा से पूर्णतः प्रभावित हुए।

इस प्रकार १९०० से १९२० के बीच जितनी भी राजनीतिक घटनाएँ घटीं और इसके लिए जो भी वैचारिक भाव कारण बने, उनका सीधा प्रभाव द्विवेदी युग के काव्य में देखा जा सकता है। राष्ट्रीयता, देश प्रेम, राष्ट्रोत्थान की भावना, अतीत गौरव, देश की अवनति और अवदशा पर क्षोभ तथा स्वाधीनता की इच्छा आदि भाव- श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा शंकर, महाबीरप्रसाद द्विवेदी, मौथिलीशरण गुप्त, सनेही जैसे सहित्सकारों की रचनाओं में स्पष्ट देखा जा सकता है।

स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में भारत एक निर्जीव भौगोलिक भू भाग न होकर करोड़ों लोगों की ममतामयी माँ सदृश है। वे भारत भूमि मे मातृभाव का दर्शन करते थे, जिसे उन्होंने, समय - समय पर अपने कर्तृत्व एवं वक्तृत्व के द्वारा प्रदर्शित किया। देश के प्रति यही मातृभाव द्विवेदी युग के कवियों में भी सहज ही देखा जा सकता है। सियाराम शरण गुप्त की इस कविता में यही मातृभाव मुखरित हुआ है -

"हे! हम सब की मातृभूमि भयहारिणी माता,
बस तेरा ही रूप हमें जी से है भाता।
तेरा सा सौन्दर्य सृष्टि में दृष्टि न आता,
तेरी शोभा देख स्वर्ग भी है सकुचाता।"[१]

अन्यत्र गिरिधर शर्मा की एक कविता में ऋषियों (विवेकानन्द आदि) द्वारा जन्म भूमि को मातृ सदृश कहते हुए उद्धृत किया गया है -

"सब प्रकार बड़ी सुरलोक से,
जनम भू, जननी ऋषि भी कहे।
हम भला मुक्ति न पाये क्यों,
अटल भक्ति करें यदि मात की॥"[२]

---

१. मौर्य विजय - सियाराम शरण गुप्त पृ० १३
२. प्रभा, वर्ष-१९१३, अंक-जुलाई पृ० १८९

आगे कवि इस मातृदेवी के चरणों में अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए प्रेरित करता है -

''कमर तो कस लो दृढ हो उठो,
न अब भी कुछ दुर्लभ है हमें।
चरण -वन्दन में निज मान के,
सब समर्पण जीवन को करें।''[१]

जन्म भूमि होने के कारण इसके प्रति अतिशय स्नहे और प्रेम रखते हुए द्विवेदी युग के कवियों ने श्रद्धा एवं भक्ति से परिपूरित हो अनेक रचनाओं में देश की वन्दना की। कविवर रूप नारायण पाण्डेय की कविता में यह भाव देखाजा सकता है -

'' पुण्य-भूमि है, स्वर्गभूमि है,
जन्म भूमि है देश यही।
इससे बढ कर या ऐसी ही
दुनिया में है जगह नही।''[२]

देश को सर्वस्व मानते हुए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं -

'' इष्टदेव आधार हमारे,
तुम्हीं गले के हार हमारे,
जै जै-जै-जै -देश,
जै-जै- सुभग सुवेश।''[३]

अपने देश को संसार में सबसे श्रेष्ठ और सबसे प्रिय मानते हुए श्रीधर पाठक अपनी भावना इस तरह से व्यक्त करते हैं -

'' जय-जय-प्यारा भारत देश,
जय-जय प्यारा जग से न्यारा,

---

१. प्रभा, वर्ष-१९१३, अंक-जुलाई पृ० १८९
२. सरस्वती, वर्ष-१९१६ भाग-१४ संख्या-६
३. द्विवेदी काव्यमाला - महावीरप्रसाद द्विवेदी, पृ० ४५४

शोभित सारा देश हमारा,
जगत मुकुट जगदीश दुलारा,
जय सौभाग्य सुरेश।
जय-जय प्यारा भारत देश।''[१]

एक अन्य स्थल पर वे देश की वन्दना कुछ इस तरह से करते हैं -

''जय भारत-जय भारत,
जय मम प्राणपते।
जय संसार शिरोमणि,
करुणाऽगार मते।''[२]

राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त देश में दैवी भाव का आरोपण करते हुए, उसकी बन्दना करते हुए लिखते हैं -

'' जय भारत भूमि भवानी।
अमरों तक ने तेरी महिमा बारम्बार बखानी।
तेरा चन्द्रवदन वर विकसित शन्ति सुधा बरसाता है,
मलयानिल निःश्वास निराला, नवजीवन सरसाता है।
हृदय हरा कर देता है, यह अंचल तेरा धानी,
'' जय भारत भूमि भवानी।[३]

श्रीधर पाठक ने भारत को महिमा मण्डित करते हुए उसे न केवल इस धरा पर अपितु तीनों लोकों मे वन्दनीय माना है -

त्रिभुवन वन्द्य भारत धाम।
त्रिभग सम्पति सुकृत सुखथल त्रिजग छवि अविराम,
सुरुचि सुमति सनेह शुचिता पुंज मंजुल नाम,
वीर गेह अमेय विक्रम ध्येय ध्रुव गुणधाम,
त्रिभुवन वंद्य भारत धाम॥''[४]

---

१. भारतगीत - देश वन्दना - श्रीधर पाठक पृ० १९ २. वही पृ० ६५
३. सरस्वती - मातृभूमि, वर्ष - १९१८, अंक - दिसम्बर, पृ० २८३
४. भारतगीत - भारत धाम - श्रीधर पाठक

व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठ कर देश के प्रति अनन्य प्रेम का जो सन्देश स्वामी विवेकानन्द ने जन - जन तक प्रचारित किया, उसी भावना से ओत - प्रोत होकर द्विवेदी युगीन कवियों ने अपनी रचनाओं मे उसे महत्वपूर्ण स्थान दिया। राम नरेश त्रिपाठी की इस कविता में देश - प्रेम का उदात्त भाव देखा जा सकता है -

"जब तक रहे फड़कती नस एक भी वदन में,
हो रक्त बूंद भर भी जब तक हमारे तन में।
छीने न कोई हमसे प्यारा वतन हामरा,
छूटे स्वदेश ही की सेवा में तन हमारा।"[१]

देश प्रेम को ऊँचाई देते हुए उसके लिये तन, मन और धन सब कुछ न्यौछावर करने को गिरिधर शर्मा प्रेरित करते हैं -

"भारत माता यही हमारी,
है यह हमको अतिशय प्यारी।
इसकी बार - बार बलिहारी।
तन-मन, धन सब इस पर वारी।"[२]

रामचरति उपाध्याय ने अपनी 'विनय' नामक कविता में देशप्रेम की भावना को पराकाष्ठा पर पहुँचाते हुए स्वर्ग की कामना एवं नर्क के भय को भी बौना कर दिया -

"भारत में ही जन्म -मरण हो,
भारत ही मे वास।
रहना मुझको पड़े न पल भर
बनकर पर का दास। ....
कभी न छूटे अपना देश।
नहीं स्वर्ग की मुझे चाह है।
नहीं नरक की भीति।
बढ़ती रहे सदा मेरी बस
जन्म भूमि में प्रीति।।[३]

---

१. मानसी - स्वदेश गीत, रामनेश त्रिपाठी, पृ० १०९
२. सरस्वती - भारत माता, वर्ष - १९०७, अंक - नवम्बर, पृ० ४६५
३. प्रभा, वर्ष - १९१५, अंक - मार्च पृ० १९

यहाँ यह द्रष्टव्य है कि स्वामी विवेकानन्द देश के प्रति अगाध प्रेम रखते थे। देश से दूर रहने पर वे अपनी मातृभूमि के वियोग में, उसके दुःखों का स्मरणकर विलख-विलख कर रोते थे।

रामचरित उपाध्याय ने अपनी 'देवदूत ' नामक कविता में एक ऐसे देशभक्त भारतीय का वर्णन किया है, जिसे देश प्रेम के कारण स्वर्ग में वास मिला किन्तु देश से दूर होने के दुःख से वह स्वर्ग के सुख और विभूति को तुच्छ समझता है -

''देश हितंकर कर्मो से वह,
धरती पर विख्यात रहा।
अति पुनीत उसक़ा जीवन था,
यश उसका अवदात रहा।

इसीलिये ईश्वर ने उसको,
दिया हर्ष से स्वर्ग निवास।
देश ब्रत सुख का साधन है।,
दुःख हेतु है काम विलाश।''[१]

उस भारतीय देशभक्त ने अपने अनन्य देशप्रेम के कारण स्वर्ग प्राप्ति की इस ईश्वरीय कृपा को, ईश्वरीय दंड के तुल्य समझा —

'' ईश कृपा को भारतीय ने,
दैव कोप के सम जाना।
स्वर्ग लोक से शत गुंण बढ़कर,
अपने भारत को माना।
कर्म विवश हो किन्तु वहाँ पर,
उसको रहना था चिरकाल,-
हाल न पाकर जन्मभूमि का
वह मन ही मन हुआ बेहाल।''[२]

---

१. देवदूत, रामचरित उपाध्याय पृ० २
२. वही

कवि माखन लाल चतुर्वेदी ने अपनी कविता 'पुष्प की अभिलाषा' में पुष्प को माध्यम बनाकर देश भक्ति एवं देश भक्तों के प्रति दिव्यतम् भावों का प्रकटन किया है -

"चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों मे गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी माला में विंध प्यारी को ललचाऊँ।
चाह नही सम्राटो के शव पर हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ।

मुझे तोड़ लेना बनमाली,
उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ जावें वीर अनेक ।।"[१]

गौरवमय अतीत से प्रेरणा लेकर ही राष्ट्र उन्नति की सीढियाँ चढ़ता है। इस सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं -"आपना विकास जितना भविष्य को देखकर करने की आवश्यकता है, हमें उतना ही इपने इतिहास का पुनरावलोकन भी करना चाहिये,तभी हमारा विकास चिरस्थायी और मानवीय होगा। हमें ऐतिहासिक भूलों से कुछ न कुछ सीखने की जरूरत है।"[२] राष्ट्र के नवनिर्माण के सम्बन्ध में इतिहास के महत्व को रेंखाकित करते हुये वे कहते हैं-" जिस राष्ट्र का कोई अपना इतिहास नही हैं वह इस संसार में अत्यन्त हीन और नगण्य है । ...... इसीतरह राष्ट्र का गौरवमय अतीत राष्ट्र को नियंत्रण मे रखता है।"

द्विवेदी युग के कवियों ने भी अतीत गौरव के महत्व को समझकर इसे राष्ट्रीय प्रगति का अनिवार्य अंग मानते हुये , अपनी रचनाओं में पर्याप्त महत्व दिया है । 'मैथिली शरण गुप्त' अपनी पुस्तक 'भारत-भारती' में अतीत के गौरवमय इतिहास का वर्णन करते हुये लिखते हैं—

:"भूलोक का गौरव प्रकृति का पुण्य लीला स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उसका कि जो ऋषि-भूमि है, वह कौन ? भारत वर्ष है।"[३]

---

१. युगचरण - माखन लाल चतुर्वेदी,
२. विवेकानन्द साहित्य - ३
३. भारत भारती - अतीत खण्ड पृ० १०

अपने पूर्वजों की धर्म परायणता वीरता और त्याग का वर्णन करते हुए गुप्त जी लिखते हैं -

उन पूर्वजों की कीर्ति का वर्णन अतीत अपार है,
गाते नही उनके हमीं गुँण गा रहा संसार है ।
वे धर्म पर करते निछावर तृण-समान शरीर थे,
उनसे वही गम्भीर थे, वरवीर थे,ध्रुव धीर थे।
उनके अलौकिक दर्शनों से दूर होता पाप था,
अति पुण्य मिलता था तथा मिटता हृदय का ताप था ।
उपदेश उनके शन्तिकारक थे निवारक शोक के,
सब लोक उनका भक्त था, वे थे हितैषी लोक के।।''[१]

भारत में प्रीचन-काल के ऋषियों, मुनियों राजाओं की महिमा का वर्णन करते हुए महाबीर प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं।

''जहॉं हुये व्यास मुनि प्रधान,
रामादि राजा आदि कीर्तिमान ।
जो थी जगत पूजित धन्यभूमि,
वही हमारी यह आर्य भूमि।।''[२]

भारत का अतीत, धर्म-अर्धम के विवेक से युक्त था। इस काल मे समाज का सभी वर्ग धर्म परायण था। धर्म इनके जीवन की धुरी थी। रूपनारयण पाण्डेय अपनी कविता में अतीत की उस गौरवमय धार्मिकता का वर्णन इस तरह करते हैं -

''धर्माधर्म विवेक युक्त थे यहॉं सभी जन,
वेद-शास्त्र से ले पुराण तक धर्म ग्रन्थ हैं,
एक धर्म के लिए अनेकों चले पन्थ हैं ।
जो कुछ है सो धर्म है यही यहॉं सिद्धान्त था ।
अन्त्यज भी इस देश का धर्मभीरु और शान्त था।।''[३]

अतीत में यह देश आर्थिक रूप से सम्पन्न , धन- धान्य से परिपूर्ण एवं ज्ञान- विज्ञान

---

१. भारत भारती - अतीत खण्ड पृ० ११
२. द्विवेदी काव्यमाला पृ० ४०६
३. सरस्वती वर्ष - १९१३ अंक - जुलाई पृ० ३८४

से युक्त था और अधर्म, अज्ञान तथा विपन्नता का यहाँ अभाव था। देश के इस गौरवपूर्ण स्थिति का वर्णन करते हुए सियाराम शरण गुप्त कहते हैं -

"भरत भाग्याकाश स्वच्छ था, सुप्रसन्न था,
था सर्वत्र सुकाल, विपुल धन और अन्न था।
फैला था आलोक ज्ञान रूपी दिनकर का,
हटा रहा था अन्धकार जो भूतल भर का ॥"[१]

गौरवमय अतीत के सापेक्ष वर्तमान के अधःपतन पर दुःख और क्षोभ व्यक्त करते हुए मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं -

"हम कौन थे, क्या हो गये हैं ?
और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिलकर
ये समस्यायें सभी।"[२]

इस तरह हम देखते हैं कि -स्वामी विवेकानन्द ने अपने गौरवमय अतीत का जिस प्रकार गुणगान करते हुए, उससे प्रेरणा लेकर वर्तमान का सुधार तथा वैभवपूर्ण भविष्य के निर्माणकी बात की थी उसे द्विवेदी युगीन कवियों ने अपनी कविताओं में सशक्त रूप से व्यक्त किया।

स्वामी विवेकानन्द भारत की वर्तमान दशा से क्षुब्ध थे। राष्ट्र अपने गौरवमय अतीत से दूर अवनति और अवदशाअ को प्राप्त हो चुका था। अंग्रेजों की गुलामी में उनके दमन और शोषण से भारतीय जनता त्रस्त थी। सूखा, अकाल महामारी और भ्रष्टाचार से स्थिति और भी नारकीय हो गयी थी। अविद्या तथा अज्ञानता के अन्धकार में देश डूब गया था। आलस्य अकर्मण्यता का बोलबाला था। छुआ-छूत, जाति-पाति, धार्मिक अन्धविश्वास, आदि कुप्रथाओं ने जीवन को कठोर और संवेदनहीन बना डाला। मानवीय मूल्यों का ह्रास हो चुका था। स्वामी विवेकानन्द ने समाज के शिक्षित और समृद्ध वर्ग का ध्यान आकृष्ट कराकर इसमें सुधार के लिये इन्हें प्रेरित किया। द्विवेदी युगीन कवियों ने इस भाव से प्रभावित होकर अपनी कविता के माध्यम

---

१. मौर्य विजय — सियाराम शरण गुप्त — पृ० ६
२. भारत भारती — अतीत खण्ड — पृ० १०

देश की दयनीय अवस्था का वर्णन करते हुए महाबीर प्रसाद द्विवेदी उसके अधः पतन पर गहरा क्षोभ व्यक्त करते हैं -

" जब कोई पीड़ित होता है,
उसे देख सब घर रोता है।
देश दशा पर प्यारे भाई,
आयी कितनी बार रुलाई।।"[१]

इसी बात को राम चरित उपाध्याय अपनी कविता में इस तरह व्यक्त करते हैं -

"ज्ञान से, मान से, शक्ति से हीन हो,
दान से , ज्ञान से, भक्ति से हीन हो,
आलसी भी महामूढ़ प्राचीन हो,
सोच देखो सभी से तुम्हीं दीन हो।
अंग को आँसुओं से भिगोते रहो,
क्यों जगोगे, अभी देश सोते रहो ।।"[२]

उक्त कविता में देश की अकर्मण्यता आदि पर व्यंग करते हुए तीखा प्रहार किया गया है । देश की वर्तमान अवदशा का वर्णनकर उसमें सुधार के लिए प्रेरित करते हुए लक्ष्मीधर बाजपेयी लिखते है -

"दशा देश की देखो मित्र,
क्या से क्या है हुई विचित्र ।
इसका भी कर खूब विचार,
भारत का तुम करो सुधार ।।"[३]

भारत की अवदशा का, सगुण साकार रूप में अनुभव करके मनोहर प्रसाद मिश्र अपनी मनोवेदना इस प्रकार व्यक्त करते है -

" माँ यह तेरा कैसा वेष ।
देख रहा हूँ आज हाय मैं विखरे तेरे केश

१.	द्विवेदी काव्यमाला			पृ० ३६७
२.	सरस्वती	वर्ष -१९१६	अंक - मार्च	पृ० १९०
३.	सरस्वती	वर्ष -१९०७	अंक - नवम्बर	पृ० ४५७

मुख में तेरे पूर्वकाल का नहीं तेज सविशेष।
मूर्छित सी तू पड़ी हुई है शक्ति नहीं है लेश,
वही व्योम है, वही भूमि है वही हमारा देश।
फिर क्यों माता तेरे उर में दुःख ने किया प्रवेश
हम सब पुत्रों को अब दे तू शीघ्र उचित उपदेश।
जिससे तव दुःख दुर्गति सत्वर हो पावे निःशेष॥''[१]

प्राचीन गौरव का वर्तमान अवनति से तुलनात्मक अन्तर दिखलाते हुये; कवि रामचरित उपाध्याय', उदासीनता को इसका कारण मानते हुये कहते है -

''पहले हम सुख से मक्खन को खाते थे रोटी के संग,
आज हमारा पेट न भरता रहते हम, सबविधि से तंग।
नेत्र हमारे खुले न तो भी, सोते लम्बी तान के,
हिन्दुस्तान हमारा मित्रों, हम हैं हिन्दुस्तान के॥''[२]

देशवासियों को जगाते हुये कवि आगे लिखता है -

'' पहले दशा देशकी क्या थी,
अब क्या दुर्गति होती है।
आँसू तनिक पोछ दो उसके,
भारत जननी रोती है।
जागों देश निवासी अब मत,
रहो भरोसे आन के॥''[३]

मातृभूमि के प्रति अपने दायित्वों से विमुख होकर आलस्य और निद्रा में डूबे लोगों को देश की वर्तमान स्थिति का बोध कराते हुए राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' कहते हैं -

'' देशी प्यारे भाइयों! हे भारत सन्तान।
अपनी माता भूमि का है कुछ तुमको ध्यान ?
है कुछ तुमको ध्यान ? दशा है उसकी कैसी?
शोभा देती नहीं किसी को निद्रा ऐसी।''[४]

---

१. सरस्वती वर्ष - १९१८ अंक - अक्टूबर पृ० १७१
२. प्रभा वर्ष - १९१३ अंक - नवम्बर पृ० ४७२
३. वही
४. स्वदेशी कुण्डल राय देवी प्रसाद 'पूर्ण', पद - १

अंग्रेजी शासन में सच्चे देशभक्तों का दमन व उन पर अत्याचार तथा झूठे और चापलूसों का महिमा मण्डित होना कवि राम चरति उपाध्याय को अखरता है -

''सच्चों को हंथकड़ी पड़ी है ।
झूँठे कुर्सी तोड़ रहे ।
मोड़ रहे हैं माता से मुख,
विमुखों से रति जोड़ रहे ।
जहाँ भूप के भृत्य नित्य ही,
धूस मूसते रहते हैं।
रहते हैं दुर्जन सुखपूर्वक।
सुजन सदा दुःख सहते हैं । ''[१]

विदेशी शासन के दमन के प्रति विवशता असमर्थता और पराधीनता से दुःखित होकर नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने अपनी मर्मान्तक वेदना इन शब्दों में प्रकट की है –

''बिन शक्ति समृद्धि - सुधा न रही,
अधिकार गया, बसुधा न रही ।
बल साहस हीन हताश हुआ,
कुछ भी न रहा सब नाश हुआ ।''[२]

स्वामी विवेकानन्द ने देश की अवनति और दुर्दशा पर केवल क्षोभ ही नही व्यक्त किया वरन उसकी उन्नति और विकास के लिए देशवासियें में नयी चेतना का संचार भी किया । 'उत्तिष्ठत , जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत' का उद्घोष करते हुए वे सोये हुए जनमानस को जगाते हैं और उन्हें लक्ष्य के प्रति प्रेरित करते हैं । देश के सर्वांगीण विकास के लिए स्वामी विवेकानन्द जीवन प्रर्यन्त प्रयत्न करते रहे । इसके लिए उन्होंने एक तरफ राजाओं, महाराजाओं एवं समाज के सम्पन्न वर्ग को उत्प्रेरित किया तो दूसरी ओर जनता- जनार्दन को जागृत भी किया । स्वामी विवेकानन्द की इस राष्ट्रीय भावधारा का प्रभाव द्विवेदी-युगीन कविताओं में व्यापक रूप से परिलक्षित होता है । इस युग के कवि अपनी रचनाओं के द्वारा जनसामान्य को राष्ट्र उत्थान के कार्यो में प्रेरित करते हुए दीखते हैं । कविवर रूपनारायण पाण्डेय अपनी कविता में देश के उत्थान

---

१. देव सभा - राम चरित उपाध्याय पद - ३५ पृ० १८
२. शंकर सर्वस्व - नाथू राम शर्मा 'शंकर' पृ० २७

का भाव इस प्रकार से व्यक्त करते हैं-

" ब्रह्मदेव फिर उठो देश का हित करने को,
रोग शोक दारिद्र्य दुःख दुर्मति हरने को।
ज्ञान प्रेम आनन्द प्राप्तकर करमी हम हो,
आलस बैर विकार वासना विप्लव कम हो।"[१]

स्वतन्त्रता समानता और बान्धुत्व से विकास का सन्देश देते हुए श्रीधर पाठक लिखते हैं -

" बंदनीय वह देख जहाँ के देशी निज अभिमानी हों,
बान्धवता में बँधे परस्पर परता के अज्ञानी हों
निन्दनीय वह देश जहाँ के देशी निज अज्ञानी हों,
सब प्रकार परतन्त्र परायी प्रभुता के अभिमानी हों।"[२]

तन्द्रा में निश्चेत होकर पड़े हुए देश को जगाते हुए पाठक जी कहते हैं -

" भारत चेतहुँ नीद निबारौ,
बीती निशा उदित भये दिन,
मनि कबकौ भयौ सकारौ।"[३]

देश के वर्तमान दयनीय अवस्था से मुक्त होकर - प्रगति , उन्नति और विकास के पथ पर अग्रसर होने के प्रति राम चरित उपाध्याय पूर्णतः आशावादी दृष्टिकोंण रखकर लिखते हैं -

" रात बीतने पर विमान में,
जैसा जग हो जाता है,
राहु-वदन से मुक्त निशाकर
नभ में ज्यों सुख पाता है।
वर्षा ऋतु के अन्त अवनितल,
जैसे शोभित होता है,
उसी भाँति तू भी अब दुख से,
छूटेगा, क्यों रोता है ?"[४]

---

१. सरस्वती वर्ष - १९१३ अंक - जुलाई पृ० ४०२
२. भारत गीत - श्रीधर पाठक, ३. वही
४. देवदूत - रामचरित उपाध्याय

भारत में फिर पहले की तरह समृद्धि और खुशहाली आने की बात करते हुये कवि आगे लिखता है-

"कंचुक छोड़ दिव्य तन विषधर,
श्वास छोड़ता है जैसे,
बन्धन मुक्त सिंह हो गज के
शीश तोड़ता है जैसे।
वैसे ही निज प्रतिबन्धक को
तू भी दूर भगावेगा।
गत हताश हो भारत तेरा-
फिर पहला दिन अवेगा ॥"[१]

देश के लोगों को देश की उन्नति के प्रति प्रेरित करते हुये लोचन प्रसाद पाण्डेय कहते हैं-

"जाति देश और धर्मोन्नति,
निज करिए छोड़ व्यर्थ अभिमान।
ऐक्य,प्रेम आत्मावलम्ब का,
करो प्रचार, सभी दे ध्यान ॥"[२]

देश की कीर्ति बढ़ाने के लिये और अपने बल बुद्धि का परिचय देकर, इसका नाम ऊँचा करने के लिये सियाराम शरण गुप्त वीरों का आह्वान इस तरह करते हैं--

'आओ वीरों! आज देश की कीर्ति बढ़ा दें,
सब के सम्मुख मातृभूमि को शीश चढ़ा दें।
शत्रुजनों को मार यहाँ से अभी हटा दें,
उनका घोर धमण्ड सदा के लिये घटा दें।
संसार देख ले फिर हमें तुच्छ नहीं हैं हम सभी
निज भारतीय बल वीर्य्य का आओ, परिचय दें अभी ॥"[३]

इस तरह हम देखते है कि विवेकानन्द की राष्ट्रीय भावधारा जिसमें देश

---

१. देवदूत - रामचरित उपाध्याय
२. प्रवासी - लोचन प्रसाद पाण्डेय
३. मौर्य्य विजय - सियाराम शरण गुप्त पृ० १७

प्रेम, देश के प्रति मातृभाव अतीत के उन्नति का गौरव वर्तमान अवनति व दुर्दशा तथा देश के उत्थान का भाव द्विवेदी युग की रचनाओं में समान रूप से परिलक्षित होता है । द्विवेदी युग के कवियों ने विवेकानन्द के राष्ट्रीय भावधारा से प्रभातिव होकर राष्ट्र के उत्थान के प्रति अपने कवि-कर्तव्य का निर्वहन किया है ।

(स) सामाजिक

विभिन्न संस्थाओं में समाज सबसे प्राचीन, प्राकृतिक तथा स्वाभाविक संस्था है । समाज व्यक्ति के लिये अनिवार्य और आवश्यक है । व्यक्ति और समाज में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । व्यक्ति का चिन्तन और उसकेक्रिया कलाप समाज को तथा सामाजिक रीति- रिवाज एवं उसके मूल्य व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध को समझकर व्यक्ति के जीवन की गतिशीलता में अवरोध बने समाज की अर्थहीन मान्यताओं, अन्धी परम्पराओं तथा कुप्रथाओं का तीब्र विरोध कर समाज को नयी दिशा देने का प्रयत्न किया । ज्ञान व शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति का विकास किया जा सकता है! यह मानते हुये स्वामी जी ने शिक्षा के प्रति लोगों को जागरुक किया । ज्ञान व तर्क की कसौटी पर कसकर ही प्राचीन परम्परा को स्वीकार करना चाहिए, अस्तु वे अन्धविश्वासों का विरोध करते थे । समुद्र यात्रा तथा पाश्चात्य लोगों के साथ भोजन करके स्वामी जी ने अपने आचरण के द्वारा इन कुप्रथाओं का विरोध किया, यह कार्य तत्कालीन समाज में निन्दनीय माना जाता था । मानव का मानव के प्रति किसी भी प्रकार के भेद -भाव का वे विरोध करते थे । नारी जाति के प्रति भी उनके मन में अगाध सम्मान का भाव था ।

दीन–दशा

स्वामी विवेकानन्द की इस सामाजिक भावधारा को जिसमें समता, स्वतन्त्रता, और बन्धुत्व के साथ विकास का व्यापक सन्देश निहित है, द्विवेदी युग के कवियों ने अपनी कविता का मूल विषय बनाकर सामाजिक चेतना से, व्यापक परिवर्तन करने का सार्थक प्रयास किया । स्वामी विकेकानन्द समाज में व्याप्त अकाल, महामारी, निर्धनता एवं गरीब जनता की भूख प्यास से क्षुब्ध

थे । समाज में सर्वत्र हाहाकार मचा था । तत्कालीन समाज की इस अवस्था का द्विवेदी युग की कविता में वास्तविक चित्र खींचा गया है --

> "अन्न नहीं अब विपुल देश में काल पड़ा है ।
> पापी पामर, प्लेग पसारे पांव पड़ा है ।
> दिन-दिन नयी विपत्ति मर्म सब काट रही है,
> उदरानल की लपट कलेजा चाट रही है।"[१]

देश में व्याप्त सभी दोषों का उल्लेख करते हुए महाबीर प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं ----

> "आलस्य, फूट, मदिरा, मद दोष सारे ।
> छाये यहाँ सब कहीं, टरते न टारे ॥"[२]

समाज की इस विषम स्थिति का कोई निदान न देख कवि रामदहिन मिश्र ईश्वर से ही इससे मुक्ति हेतु प्रार्थना करते हैं -

> "दयामय कब लोगे अवतार ।
> जय जब होगी धर्म ग्लानि तब -
> तब लूंगा अवतार ।
> भूल गये क्या ?कहो शीघ्र यह,
> अपना कौल करार ।
> दीन, दुःखी, अबला, बालक सब,
> सहते दुःख अपार ।
> दुर्गति अब इससे बढ़ कर क्या,
> होगी करो विचार ।
> खुलता ही जाता है प्रतिपल
> दुःख शोक का द्वार ।"[३]

---

१. सरस्वती - १४ संख्या - १२
२. द्विवेदी काव्यमाला पृ० ३६२
३. सरस्वती वर्ष - १९१७ अंक - फरवरी पृ० ५७

जो भारत पहले धन धान्य से परिपूर्ण, और सुख सम्पन्नता से युक्त था, उसकी वर्तमान दयनीय दशा देख कर मैथिली शरण गुप्त अपनी वेदना इस तरह व्यक्त करते हैं–

''भारत, कहो तो आज तुम क्या हो वही भारत अहो !
हे पुन्य भूमि ! कहाँ गयी है वह तुम्हारी श्री कहो ?
अब कमला क्या, जल तक नहीं, सर मध्य केवल पंक है,
वह राज- राजकुबेर अब हा! रंक का भी रंक है।।''[१]

देश में दुःख दारिद्र्य सर्वत्र व्याप्त था। इसे व्यक्त करने हुए गुप्त जी लिखते हैं -

''रहता प्रयोजन से प्रचुर पूरित जहाँ धन धान्य था,
जो 'स्वर्ण-भारत' नाम से संसार में सम्मान्य था
दारिद्रय दुर्धर अब वहाँ करता निरन्त नृत्य है;
आजीविका अवलम्ब बहुधा भृत्य का ही कृत्य है ।।''[२]

देश में एक तरफ जहाँ सर्वत्र अकाल, दुर्भिक्ष, तथ अन्नाभाव से जन सामान्य त्राहि-त्राहि कर रहा था, तो दूसरी तरफ धनी और सम्पन्न वर्ग अपने भोग- विलास के लिए पानी की तरह पैसा बहा रहे थे । समाज की इस विसंगति का वर्णन - महाबीर प्रसाद द्विवेदी करते हुए लिखते हैं -

'' हजारों लोग भूखों मर रहे हैं,
पड़े वे आज या कल कर रहे हैं ।
इधर तू मंजु मलमल दूढ़ता है,
न इससे और बढ़ कर मूढ़ता है।।''[३]

दीन-दुःखियों को त्रासदपूर्ण इन स्थितियों का नाथूराम शर्मा 'शंकर' वर्णन करते हुए अपनी निराशा इस तरह से व्यक्त करते हैं --

'' क्या शंकर प्रतिकूल काल का अन्त न होगा,
क्या शुभ गति से मेल मृत्यु पर्यन्त न होगा,

१.	भारत भारती	वर्तमान - खण्ड	पृ० ९१
२.	वही		पृ० ९३
३.	द्विवेदी काव्य माला		पृ० ३६८

क्या अब दुःख दारिद्रय हमारा दूर न होगा,
क्या अनुचित दुर्दैव, कोप कर्पूर न होगा ।।''[१]

देश की विपन्नता तथा दुर्भिक्ष का हृदय विदारक चित्रण करते हुए मैथिली शरण गुप्त लिखते हैं –

'' दुर्भिक्ष मानों देह धर के घूमता सब ओर है,
हा ! अन्न ! हा हा ! अन्न का रव गूँजता घनघोर है ।
सब विश्व में सौ वर्ष में, रण में मरे जितने हरे,
जन चौगुने उनसे यहाँ दस वर्ष में भूखों मरे ।।''[१]

देश की दयनीय अवस्था के प्रति जो पीड़ा स्वामी विवेकानन्द के हृदय में थी, उस पीड़ा की अभिव्यक्ति द्विवेदी- युगीन कविताओं में व्यापक रूप से हुई।

मानवता

स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरू रामकृष्णदेव के मानवता की सेवा करने के लिए वटवृक्ष की तरह बनने की बात को कभी विस्मृत नहीं किया । आध्यात्मिक उत्थान एवं ख्याति की चरम् ऊँचाइयों को छूने के बाद भी वे मानव मात्र के सुख- दुःख से जुड़े रहे । मानव मात्र की पीड़ा को उन्होंने अपनी पीड़ा बना ली और उनकी भुक्ति - मुक्ति के लिये जीवन पर्यन्त प्राण- प्रण से सतत् प्रयत्न किया । द्विवेदी युग के कवियों ने उनकी इस मानवतावादी भावधारा को अपनी रचनाओं का प्रमुख वर्ण्य विषय बनाया । स्वामी जी ने मानवता एवं प्रेम में ही देवत्व की कल्पना की थी, जिसे कविवर मौथिली शरण गुप्त ने अपनी कविता में इस तरह व्यक्त किया -

'' मैं मनुष्ता को सुरत्व की
जननी भी कह सकता हूँ।''[२]

---

१. भारत भारती वर्तमान खण्ड पृ० ९३
२. द्विवेदी काव्यमाला - पूनम चन्द तिवारी - पंचवटी पृ० १०९

कलुषित स्वार्थ की भावना से ऊपर उठकर, एक दूसरे के सुख-दुःख में सहभागी बन कर, मानव मात्र के कल्याण की भावना का सन्देश देते हुए, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं -

"सब के होकर रहो, सहो सब की व्यथा,
दुःखिया होकर सुनो, सभी की दुःख कथा।
पर-हित में रत रहो, प्यार सब को करो,
जिसको देखो दुखी, उसी का दुःख हरो।
वसुधा बने कुटुम्ब, प्रेम धारा बहे,
मेरा तेरा भेद नहीं जग में रहे।"[१]

रामकृष्ण देव की लोक सेवा का भाव अयोध्या सिंह उपाध्यास के महाकाव्य प्रिय - प्रवास में राधा और कृष्ण के माध्यम से व्यक्त हुआ है। यहाँ राधा एवं कृष्ण का दैवी वर्णन न करके उन्हें लोक सेवा तथा लोक मंगल के कार्यो में निरत दिखलाया गया है। प्रिय प्रवास के नवम सर्ग में परोपकार, दान, क्षमा, व सेवा आदि, उदात्त मानवीय गुणों से युक्त सूक्तियाँ प्रचुर मात्रा में देखी जा सकती हैं। अपनी मुक्ति की कामना रखने वाला त्यागी नही होता, अपितु जगत के कल्याण की भावना रखने वाला ही सच्चा त्यागी है। प्रिय प्रवास के माध्यम से हरिऔध' जी यही सन्देश देते हुए लिखते हैं -

"जो होता है निरत तप में मुक्ति कामना से,
आत्मार्थी है, न कह सकते हैं उसे आत्म त्यागी।
जी से प्यारा जगत हित औ लोक- सेवा जिसे है,
प्यारी, सच्चा अवनि-तल में आत्मत्यागी वही है।"[२]

कवि रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' दीन - दुःखियों के उत्थान के लिए सेवा प्रेमी लोगों का आह्वान करते हैं --

"पूरन भारतवर्ष के सेवा प्रेमी लोग,
कर सकते है दूर दुःख ठाने यदि उद्योग।
ठाने यदि उद्योग कलह तज कर आपुस का,
नाना विध उपकार अभी कर डालें उसका।"[३]

---

१. प्रेम - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
२. प्रिय प्रवास - नवम् सर्ग
३. स्वदेशी कुण्डल पद - ९

जो केवल अपने ही सुख और उन्नति के लिए तत्पर रहते हैं और दीन- दुखी के बारे में रंचमात्र भी नहीं सोचते, उनहें धिक्कारते हुए लोक कल्याण के लिए 'पूर्ण' जी प्रेरित करते हैं -

"कूकर भरते पेट हैं, पर चरणों पर लेट,
शूकर घूरो धूम कर भर लेते हैं पेट।
भर लेते है पेट सभी जिनके है काया,
पुरुष - सिंह है वही भरे जो पेट पराया ॥"[१]

यह मानव शरीर लोक-मंगल के लिये ही हैं इसके अतिरिक्त इसकी कोई सार्थकता नहीं है। 'हरिऔध' की इस कविता में यही भाव व्यक्त होता है --

"हड्ड्याँ तो काम देती हैं नहीं।
काम आता है न उसका चाम ही।
वह बना है लोक सेवा के लिये।
साथ देना हाथ का है काम ही ॥"[२]

उपर्युक्त उद्धरणों के आलोक में हम देख सकते हैं कि द्विवेदी - युगीन कवियों ने रामकृष्ण देव एवं विवेकानन्द की भावधारा से प्रेरित हो कर, आत्म केन्द्रित जीवन-शैली को धिक्कारते हुए जन कल्याण एवं लोक सेवा की भावना से ओत - प्रोत अनेक रचनायें की।

ईर्व्या– द्वेष

भारतीय समाज में व्याप्त ईर्ष्या व द्वेष यहाँ के अवनति व पतन का प्रमुख कारण है। इतिहास साक्षी है कि हमारी इसी कमजोरी का लाभ उठाकर मध्यकाल में अरब आक्रान्ताओं ने और आधुनिक काल में अंग्रेज व्यापारियों ने हमें अपना दास बनाकर अनेक वर्षों तक हमारा दमन और शोषण किया, स्वामी विवेकानन्द ने ऐसी अनेक कमजोरियों की तरफ देश वासियों का ध्यान

---

१. स्वदेशी कुण्डल पद - ३२
२. चुभते चौपदे - हरिऔध

आकृष्ट कराते हुये इसे दूर करने का उपदेश दिया। वे यूरोप की उन्नति व प्रगति में ईर्ष्या व द्वेष के अभाव को महत्वपूर्ण मानते थे।

द्विवेदी युग के कवियों ने भी समाज में व्याप्त अनेक कमियों की आरे जनता का ध्यान अपनी कविता के माध्यम से आकृष्ट किया है। कामता प्रसाद गुरू अपनी ' ईर्ष्या' नामक कविता में इसके दोषों का वर्णन करतें हुये लिखते हैं ---

'' हे ईरषा बड़ों की तू लाडती बड़ी है;
प्रभुता प्रमत्त मन को सुरलोक की जड़ी है।
जडता समीप तेरे रहती सदा खड़ी है,
अभिमान भी टहल में तैयार हर घड़ी है,
है श्रेष्ठ प्राणियों में शिक्षा मनुष्य पा कर,
पर द्वेष से भरे हैं पशु से परम भयंकर।
पशु भी कभी कपट कुछ करता नहीं परस्पर
धिक्कार उन नरों को जो हैं मलीन भीतर ।।''[१]

ईर्ष्या को ही परतन्त्रता का मूल मानते हुये कवि आगे लिखता है -

'' जो ईरषा न होती इस देश में हमारे;
परतन्त्रता बहाती, पर रक्त के पनारे।''[२]

आपसी फूट एवं द्वेष भाव के कारण भारतवासी क्या- क्या दुःख नहीं उठाये, अयोध्यासिंह उपाध्याय ' हरिऔध '' की कविता में यही भाव दिखलाया गया है -

''लुटे गये, पिट उठे, गये पटके,
आँख के भी बिलत गये कोये।
पड़ बुरी फूट के बखेड़े में,
कब नहीं फूट- फूट कर रोये।''[३]

---

१. सरस्वती वर्ष-१९०८ अंक - जनवरी
२. वही
३. चुभते चौपदे - हरिऔध

पारस्परिक ईर्ष्या भाव को त्याग कर हिल - मिल कर रहने की भावना के अभाव के कारण भारत वर्ष की यह दुर्गति हुई है और इसी ईर्ष्या के कारण अतीत में महाभारत का युद्ध भी हुआ है । इसलिये ईर्ष्या के प्रति लोगों को सचेष्ट करते हुये मैथिली शरण गुप्त लिखते हैं --

"सब लोग हिल मिल कर चलो,
पारस्पारिक ईर्ष्या तजो ।
भारत न दुर्दिन देखता ,
मचता महाभारत न जो ।। "[१]

समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं कुप्रथाओं, से भी हमारे वैचारिक पराभव का प्राकट्य होता है । इसे व्यक्त करते हुये मौथिली शरण गुप्त 'भारत- भारती' में लिखते हैं -

"हिन्दू समाज कुरीतियों का केन्द्र जा सकता कहा,
ध्रुव धर्म- पथ में कुप्रथा का जाल सा है विछ रहा ।
सु-विचार के साम्राज्य में कुविचार की अब क्रान्ति है,
सर्वत्र पद- पद पर हमारी प्रकट होती भ्रान्ति है ।"[२]

ईर्ष्या, द्वेष, आलस्य और दम्भ व्यक्ति तथा समाज की अवनति का मूल हैं । वर्तमान भारत में सर्वत्र इसकी व्यापकता से क्षुब्ध होकर कविवर 'गुप्त' जी अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुये कहते हैं -

"अब है यहाँ क्या ? दम्भ है, दौर्बल्य है दृढ़- द्रोह है,
आलस्य ईर्ष्या, द्वेष है, मालिन्य है, मद, मोह है ।
है और क्या ? दुर्बल जनों का सब तरह सिर काटना,
पर साथ ही बलवान का है श्वान सम पग चाटना।।"[३]

व्यक्ति और समाज में निहित अनेक बुराइयों और कुरीतियों के बाद भी जिस तरह देश के उत्थान के प्रति स्वामी विवेकानन्द आशावादी थे वही आशावाद द्विवेदी युग के कवियों में

---

१. जयद्रथ बध प्रथम सर्ग पृ० १
२. भारत भारती वर्तमान खण्ड पृ० १४६
३. वही पृ० १५६

भी परिलक्षित होता है-

"बीती नहीं यद्यपि अभी तक है निराशा की निशा।
है किन्तु आशा भी कि होगी दीप्त फिर प्राची दिशा।"[१]

कर्म– पुरूषार्थ

स्वामी विवेकानन्द जीवन पर्यन्त कर्मशील रहते हुये अपने आचरण के द्वारा जनमानस को 'कर्म' करने की प्रेरण देते रहे। कर्म एवं पुरुषार्थ को मानव के विकास का वे महत्वपूर्ण अंग मानते थे। अकर्मण्य एवं आलसी लोगों को जगाते हुये उन्होंने कहा -" उत्तिष्ठत् जाग्रत् — ।" स्वामी जी के पुरूषार्थ व कर्मवाद से प्रभावित द्विवेदी युग की अनेक रचनायें देखी जा सकती हैं 'गोपाल शरण' सिंह की आत्म विश्वास' नामक कविता में कर्म एव उद्यम के महत्व को इस तरह दर्शाया गया है --

"मुझमें न कुछ सामर्थ्य है यह मान लेना भूल है,
नर के लिये यह भावना दुर्भाग्य दुर्मति मूल है।
सबको विधाता ने बताया, शक्तिवान समर्थ है,
जों नर निपट निश्चेष्ट हैं केवल वही असमर्थ हैं ।।"[२]

निष्चेष्टता पर प्रहार करते हुये मैथिली शरण गुप्त जी भी लिखते हैं --

"निश्चेष्ट होकर बैठ रहना,
यह महा दुष्कर्म है।"[३]

कर्मशील होकर अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने से ही व्यक्ति सुख प्राप्त कर सम्पन्न बन सकता है। 'लोचनप्रसाद पाण्डेय' अपनी कविता के माध्यम से यही समझाने का प्रयत्न करते है -

---

१. भारत भारती - भविष्यत खण्ड पृ० १८२
२. सरस्वती वर्ष १९१४ अंक - अक्टूबर पृ० ५७५
३. जयद्रथ बध - प्रथम सर्ग पृ०१

''केवल है कर्तव्य अकेला सच्चा सुख देने वाला।
यही निबल को सबल बनाता दुख दारिद्र हरने वाला।''[१]

कर्तव्य कर्म की शिक्षा देते हुये कवि गोपाल शरण सिंह भी लिखते हैं --

''असमर्थ हैं किस भांति हम निज धर्म का पालन करें,
निज दीनदुर्विध बान्धवों के दुःख कैसे हम हरें।
ऐसे बचन मुख से कभी भी हम निकालेगें नहीं
कर हैं हमारे क्यों भला, कर्तव्य पालेंगे नही ॥''[२]

स्वामी विवेकानन्द व्यक्ति की दीनता व हीनता के विचारों का विरोध करते हुये उन्हें उनके मूल स्वरूप का स्मरण कराते हुये कहते हैं -'' तुम भेड़ नहीं हो, तुम सिंह हो। अपने स्वरूप को पहचानो और हीनता का त्याग करो -- अपने अन्दर पौरुष का संचार करो।'' इसी भावना को व्यक्त करते हुये मैथिली शरण गुप्त लिखते हैं --

'' मनुष्य जीवन में जय के लिये,
प्रथम ही दृढ़ पौरूष चाहिये।
विजय तो पुरुषार्थ बिना कहाँ,
कठिन है चिर जीवन भी यहाँ।
भय नही, भवसिन्धु तरो, उठो !
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो, उठो ''।[३]

पुरुषार्थ से क्या नहीं पाया जा सकता, यही उपदेश देते हुये कवि आगे कहता है --

'' पुरुष क्या, पुरुषार्थी हुआ न जो,
हृदय की सब दुर्बलता तजो।
प्रबल जो तुममें पुरुषार्थ हो,
सुलभ कौन न तुम्हें पदार्थ हो ॥''[४]

१.	प्रवासी - लोचन प्रसाद पाण्डेय			
२.	सरस्वती - आत्मविश्वास	वर्ष -१९१४	अंक - अक्टूबर	पृ० ५७५
३.	वही		अंक - जनवरी	पृ० ४
४.	वही			

हीनता व निराशा का त्याग करके कर्म व पुरुषार्थ करने की प्रेरणा 'नर हो न निराश करो मन को' कविता के माध्यम से कवि इस प्रकार देता है -

कुछ काम करो, कुछ काम करो,
जग में रह कर कुछ नाम करो।
यह जन्म हुआ किस अर्थ अहो,
समझो जिससे यह व्यर्थ न हो।
कुछ तो उपयुक्त करो तन को,
नर हो न निराश करो मन को।''[१]

पौरुष रहित अकर्मण्य लोगों को पशु से भी गर्हित और पृथ्वी का भार बतलाते हुये 'श्रीधर पाठक' अपनी कविता में लिखते हैं ---

''इस शरीर से जो मनुष्य नहि कुछ भी लाभ उठाता है,
उस्से तो वह पशू भला जो काम सैकड़ों आता है।
उस्का जन्म व्यर्थ है जो नर पौरुष न कुछ दिखलाता है,
न इस लोक, ना उसी लोक में हाँथ उसे कुछ आता है।।''[२]

हताशा और निराशा का त्याग करके सच्चा कर्म-वीर बनकर उद्योग करने की शिक्षा देते हुये--- 'उत्तेजना' नामक कविता में 'हरिवंश मिश्र' लिखते हैं --

''होते हो क्यों व्यर्थ हताश,
पूर्ण सदा करते है, ईश्वर उद्योगी की आश।
आओ उठो लगो उन्नति में करके दृढ़ विश्वास,
जगा रहे हैं तुमकों यह कहकर वेद व्यास,
मन को अपने वश में कर लो छोड़ो हास विलास,
सच्चे कर्मवीर बन जाओ कर दो यश- प्रकाश।।''[३]

इस प्रकार हम देखते है कि विवेकानन्द ने 'कर्म' व पुरूषार्थ' की महत्ता प्रतिपादित

---

१. सरस्वती वर्ष - १९१४ अंक - फरवरी पृ० ६७
२. जगत् सच्चाई सार - श्रीधर पाठक पृ० ३
३. सरस्वती वर्ष - १९१७ अंक - दिसम्बर पृ० २८१

करते हुये जन-जन को जो सन्देश दिया, द्विवेदी युग के कवियों ने उसी सन्देश को अपनी कविता के माध्यम से जन जागरण करके जनता तक पहुँचाने का प्रयत्नकिया।

शिक्षा

स्वामी विवेकानन्छ ने व्यक्ति और राष्ट्र के विकास के लिये शिक्षा को सर्वाधिक महत्व दिया। वे इसको सभी समस्याओं का अंत करने वाला एकमात्र कारक मानते थे। शिक्षा को वे व्यापक दृष्टि से देखते थे। उनके अनुसार मनुष्य के भीतर पहले से विद्यमान पूर्णता की अभिव्यक्ति ही शिक्षा है, इस पूर्णता की प्राप्ति के लिये उचित वातावरण के द्वारा ही विकास सम्भव है। आगे वे कहते हैं -"हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जिससे चरित्र निर्माण हो, मानसिक शक्ति बढ़े, बुद्धि विकसित हो और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा होना सीखे। शिक्षा के विकास के सम्बन्ध में उनका मानना है कि जब तक इस देश में अध्यापन और शिक्षा का भार त्यागी और निस्पृह पुरुष वहन नहीं करेंगे तब तक भारत को दूसरे देशों के तलबे चाटने पड़ेंगे।

स्वामी विवेकानन्द की शिक्षा सम्बन्धी अवधारणा को आधार बनाकर द्विवेदी युग के कवियों ने शिक्षा की उन्नति और विकास के प्रति अपनी कवता के माध्यम से लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। इन कवियों ने एक तरफ शिक्षा के महत्व को दर्शाते हुये इसके गुणों का बखान किया तो दूसरी तरफ अशिक्षा तथा शिक्षा की गलत पद्धति पर प्रहार भी किया। शिक्षा के गुँण और महत्व को दर्शाते हुये अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'विद्या' नामक कविता में लिख है--

' इस चमकते हुये दिवाकर से,
इस बरसते हुये निशाकर से;
जो अलौकिक प्रभाव वाली है,
औ सरसता में जो निराली है।
वह जगद् बन्दनीय विद्या है,
अति अनूठा प्रभाव जिसका है;
ज्योति सूरज जहाँ नही जाती,
यह वहाँ भी है रंग दिखलाती।

जो शशी को सरस नहीं कहते,
इसके रस से मोद वह लहते;
यह सुधा अमर बनाती है ।
यह सुयश बेली को उगाती है ॥''[१]

उक्त कविता में शिक्षा से होने वाले लाभ पर प्रकाश डाला गया है और उसकी तुलना सूर्य और चन्द्रमा से भी बढ़कर की गयी है ।

भारतवासियों ने प्राचनी काल से ही शिक्षा के महत्व को जाना और समझा है । आदिकाल से ही यहाँ गुरू-शिष्य परमपरा के अन्तर्गत शिष्य गुरुकुल में गुरु के सामीप्य में रहकर उनसे निःशुल्क शिक्षा ग्रहण करता था । इस भारतीय शिक्षा पद्धति का वर्णन स्वामी विवेकानन्द ने एक बार जब लंदन में वहाँ के शिक्षाविदों के बीच किया, तो वे आश्चर्यचकित रह गये । उसी प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का वर्णन करते हुये मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं -

'' पढ़ते सहस्रों शिष्य हैं पर फीस ली जाती नही ।
वह उच्च शिक्षा तुच्छ धनपर बेच दी जाती नहीं ।
दे वस्त्र, भोजन भी स्वयं कुलपति पढ़ाते हैं उन्हें
बस, भक्ति से सन्तुष्ट हो दिन- दिन बढ़ाते हैं उन्हें ।''[२]

समय के साथ इस प्राचीन गौरवपूर्ण शिक्षा प्रणाली का धीरे-धीरे ह्रास हो गया । वर्तमान में आते-आते इसका स्वरूप पूर्णतः बदल गया । वर्तमान शिक्षा प्रणाली और उसकी हीन दशा का चित्रण करते हुये' गया प्रसाद शुक्ल सनेही' 'देहतियों की शिक्षा शीर्षक कविता में लिखते हैं---

'' ऊना मासी धम्म' लगे बालकगण रटने,
उनकी मेधाशक्ति लगी क्रम से घटने ।
प्यौचा-ख्यौचा सिर्फ कभी थे विकट पहाडे,
कैथी-मुड़िया लिखी शुद्ध लिपि वर्ण विगाड़े,
अर्द्ध दग्ध से हो गये पेट पाल लेने लगे ।
किसी तरह से जगत में समय ढ़ाल लेने लगे ।''[३]

१.	सरस्वती	वर्ष - १९०७	अंक - ९	पृ० ३५७
२.	भारत भारती	अतीत खण्ड		पृ० ६८
३.	सरस्वती	वर्ष - १९१५	अंक - मई	

देश में शिक्षा की कमी एवं उसकी दुर्गति का वर्णन करते हुए महावीर प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं -

" विद्या नहीं है, बल नहीं है, धन भी नहीं है ।
क्या से हुआ है यह गुलिस्तान हमारा ।।"[१]

शिक्षा के अभाव में मनुष्य, मानव होते हुये भी दानव के समान रहता हैं, कविवर मैथिलीशरण गुप्त अपनी यह भावना 'भारत- भारती' के माध्यम से इस तरह व्यक्त करते हैं -

" विद्या बिना अब देख लो, हम दुर्गुणों के दास हैं;
हैं तो मनुज, हम किन्तु रहते दनुजता के पास हैं ।
दायें क्या बायें सदा सहचर हमारे चार हैं-
अविचार, अन्धाचार, है व्यभिचार, अत्याचार हैं ।।"[२]

अविद्या और ज्ञान के अभाव में हम भारतवासी निशाचर बनकर रह गये हैं; गुप्त जी अपनी कविता में यही भाव व्यक्त करते हुये लिखते है- -

' छायी अविद्या की निशा है, हम निशाचर बन रहे;
हा! आज ज्ञानाभाव से वीभत्स रस में सन रहे ।"[३]

वर्तमन शिक्षा के व्यावसायिक एवं अर्थ प्रधान होने से कमजोर और गरीब वर्ग शिक्षा से वंचति होकर मूर्ख बनकर जीवन यापन करने को विवश है । शिक्षा पद्धति की इस बुराई की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुये गुप्त जी कहते हैं -

" हा! आज शिक्षा-मार्ग भी संकीर्ण होकर क्लिष्ट है,
कुलपति- सहित उन गुरुकुलों का ध्यान ही अवशिष्ट है ।
बिकने लगी विद्या यहाँ अब,शाक्ति हो तो क्रय करो,
यदि शुल्क आदि न दे सको तो मूर्ख रह कर ही मरो ।।"[४]

शिक्षा की अवनिति और अवदशा पर अपनी कविता के माध्यम से जनता का ध्यान

---

१. द्विवेदी काव्यमाला पृ० ३८३
२. भारत भारती वर्तमान खण्ड पृ० १२२
३. वही
४. वही

आकृष्ट करने के साथ ही इस युग के कवि इसकी उन्नति और विकास का मार्ग भी दिखलाते हैं। गया प्रसाद शुक्ल ' सनेही' अपनी कविता के माध्यम से शिक्षा का विकास कैसे हो, के सम्बन्ध में लिखते हैं -

'' शिक्षा हो अनिवार्य फीस से पीछा छूटे,
करे वार सरकार, मूर्खता का गढ़ टूटे।
बालकगण को मिले लाभदायक शिक्षायें,
जो भविष्य में काम निरंतर उनके आये।
हाथ बढाने के लिये शिक्षित दल आगे बढ़े,
तो ग्रामो में बेलि यह शिक्षा की मड़ये चढ़े ॥''[१]

शिक्षा के प्रसार एवं उसके महत्व पर प्रकाश डालते हुये राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' लिखते हैं -

'' शिक्षा ऊँचे वर्ग की, पावें यहाँ के लोग;
तभी यहाँ से दूर हो, अंधकार का रोग ॥''[२]

स्वामी विवेकानन्द केवल विभागों में बाबू बनाने वाली शिक्षा पद्धति का विरोध करते थे। उनकी इसी बात को मैथिली श्शरण गुप्त कविता के माध्यम से व्यक्त करते हैं -

'' वह आधुनिक शिक्षा किसी विध प्राप्त हो कुछ कर सको-
तो लाभ क्या, बस क्लर्क बनकर पेट अपना भर सको।
लिखते रहो जो सिर झुका , सुन अफसरों की गालियाँ,
तो दे सकेंगी रात को दो रोटियाँ घरवालियाँ।''[३]

आधुनिक युग में मानव के शिक्षा प्राप्ति का उद्देश्य केवल नौकरी पाना ही रह गया है, जिससे शिक्षा अपने मूल उद्देश्यों से भटक गयी है। कविता के माध्यम से गुप्त जी इस सम्बन्ध में अपनी भावना इस प्रकार व्यक्त करते हैं -

---

१. सरस्वती वर्ष - १९१५ अंक - मई
२. स्वदेशी कुण्डल पद - ५१
३. भारत भारती वर्तमान खण्ड पृ० १२३

"अब नौकरी ही के लिए विद्या पढ़ी जाती यहाँ
बी०ए० न हो हम तो भल गिनती गिनी रखी कहाँ।
इस स्वर्ग का सोपान है तू हाय री, डिप्टीगिरी।
सीमा समुन्नत की हमारी चित्त में तूँ ही भरी।'''[१]

स्वामी विवेकानन्द जापान की शिक्षा पद्धति की प्रसंशा करते थे। वहाँ की शिक्षा पद्धति राष्ट्र के उत्थान में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती थी परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि अपने देश की शिक्षा पद्धति में वह भावना नही है। विवेकानन्द की इसी भावना को व्यक्त करने हुये गुप्त जी लिखते हैं -

"है व्यर्थ वह शिक्षा कि जिससे देश की उन्नति न हो,
जापान के विद्यार्थियों की सूक्ति है कैसी अहो! -
"साहब! हमें यूरोपियन हिस्ट्री न अब दिखलाइये,
बेलून की रचना हमें करके कृपा सिखलाइये।।'[२]

स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि मैं उन शिक्षित लोगों को अपराधी मानता हूँ जो दीन- दुखियों के पैसे से खुद तो शिक्षित हो गये परन्तु उनकी शिक्षा पर जरा भी ध्यान नहीं देते। वे शिक्षित वर्ग का आवाहन करते हैं कि वे अज्ञानता के अन्धकार में पड़े हुये लोगों के जीवन में ज्ञान रूपी प्रकाश का प्रसार कर दें। स्वीजी की भावनना को मैथिलीशरण गुप्त ने इस तरह से व्यक्त किया है -

"हे शिक्षितो! कुछ कर दिखाओ, ज्ञान का फल है यही,
हो दूसरों को लाभ जिससे श्रेष्ठ विद्या है वही।
संख्या तुम्हारी अल्प है, उसको बढ़ाओं शीघ्र ही,
नीचे पड़े हैं जो उन्हें ऊपर चढ़ाओं शीघ्र ही
अपने अशिक्षित भाइयों का प्रेम पूर्वक हित करो
उनकी समुन्नति से उन्हें उत्साहयुत परिचित करो।।''[३]

इस तरह हम देखते है कि स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा सिद्धान्तो एवं उससे

१.	भारत भारती	वर्तमान खण्ड	पृ० १२३
२.	वही		पृ० १२५
३.	वही	भविष्यत खण्ड	पृ० १७६

सम्बान्धित उपदेशों को द्विवेदी युग के कवियों ने अपनी रचनाओं में व्यापक महत्व देते हुए उन्हें जन-जन तक पहुंचाने का सार्थक प्रयास किया।

कृषि व किसान

भारत में करोड़ों की संख्या मे रहने वाले दीन- हीन, गरीब लोगों को ही स्वामी विवेकानन्द राष्ट्र का प्राण मानते हैं। यहाँ के किसान और मजदूरों की दयनीय स्थिति देखकर वे द्रवित हो जाते थे। अहर्निश परिश्रम करने के बाद भी ये अपना पेट भरने के लिए अन्न तक की व्यवस्था नहीं कर पाते। उनकी दयनीय अवस्था एवं उनकी शक्ति का वर्णन करते हुए स्वामी विवेकानन्द कहते हैं -" ये किसान जुलाहे आदि जो भारत के नगण्य मनुष्य हैं, ये ही लगातार चुपचाप अपना काम करते जा रहे है और अपने परिश्रम का फल भी नहीं पा रहे हैं। इन लोगों ने मौन रहकर हजारों वर्षों तक अत्याचार सहा है, और उससे पाई है, अपूर्व सहनशीलता। चिरकाल से दुःख भोगा है, जिससे पाई है, अटल जीवनी शक्ति। ये लोग मुटठी भर सत्तू खाकर दुनिया को उलट सकेंगे। आधी रोटी मिली तो तीनों लोकों में इनका तेज न अंटेगा।"[१]

द्विवेदी युग के कवियों ने स्वामी विवेकानन्द से प्रेरित होकर राष्ट्र के उत्थान में किसान और मजदूरों के योगदान को महत्व को समझते हुए अपनी रचनाओं में अनेक स्थलों पर इनका वर्णन कियाहै। गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने कृषकों की दयनीय अवस्था का वर्णन- उन्हीं के मुँह से इस तरह कहलवाया है —

"नही मिलती है पेट भर हमको रोटी,
न जुटता है कपड़ा सिवा एक लंगोटी।
बनी झोपड़ी मांद से भी है छोटी,
कहें और-क्या अपनी किस्मत है खोटी।
नहीं ऐसा दुःख जो उठाया न हमने,
कभी किन्तु दुखड़ा सुनाया न हमने।"[२]

---

१. विवेकानन्द साहित्य - ८
२. करुणा कादम्बिनी - गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'

जमींदारों और पटवारियों के शोषण और अत्याचार का वर्णन करते हुए सनेही जी लिखते हैं -

"जमींदारों के पेट भरते नहीं हैं,
वे खाते हैं इतना, अफरते नहीं है।
किसानों पे क्या जुल्म करते नहीं हैं,
अभागे हैं हम, हाय ! मरते नहीं हैं।
जिलेदार जी भर हमें लूटते है,
न पटवारियों से भी हम छूटते हैं।"[१]

किसान की विपन्नता और उसकी दयनीय अवस्था देखकर बूढ़ा बैल भी उसका कार्य करने से इन्कार न कर सका, इसका कारुणिक चित्रण कवि मुकुटधर अपनी कविता में इस प्रकार करते हैं-

" खींचे रहा था हल आतप में बूढ़ा एक बैल संत्रास,
उसे देखकर विकल बहुत हो मैं जाकर के पूँछा पास।
बूढ़े बैल खेत में नाहक क्यो दिन भर तुम मरते हो?
क्यो न चरागाहों मे चरकर मौज, मजे से करते हो?
सुनकर मेरी बात बैल ने कहा दुःख से भर कर आह,
इस अनाथ, असहाय कृषक का होगा फिर कैसे निर्वाह ।।"[२]

कविवर मैथिली शरण गुप्त जी किसानों का, जो अपने खून को पसीना बना कर अन्न पैदा करके पूरे देश का पेट भरता है परन्तु स्वयं वह और उसका परिवार भूँखे पेट सोता है। इस त्रासदपूर्ण जीवन का वर्णन कवि इस प्रकार करते हैं -

पानी बना कर रक्त का, कृषि कृषक करते हैं यहाँ,
फिर भी अभागे भूख से दिन रात मरते हैं यहाँ।
सब बेचना पड़ता उन्हें निज अन्न वह निरुपाय है,
बस चार पैसे के अधिक पड़ती न दैनिक आय है।"[३]

---

१. करुणा कादम्बिनी - गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'
२. सरस्वती - निःस्वार्थ सेवा वर्ष - १९१८ अंक - दिसम्बर पृ० २२२
३. भारत भारती वर्तमान खण्ड पृ० ९९

कृषकों के परिवार की दयनीय अवस्था का संवेदनात्मक वर्णन करते हुए गया प्रसाद शुक्ल लिखते हैं -

"जब चिल्लाकर भूँख -भूँख बालक रोते हैं,
टुकड़े सौ- सौ हाय कलेजे के होते हैं ।
क्या दुःखिया के पूत कभी सुख से सोते हैं,
रोते है, मुँह सदा आँसुओं से धोते हैं ॥
जब घर में कुछ न हो, कहो कोई क्या रांधे,
रहते सदा दिवस हाय यों ही मुँह बाँधे ॥"[१]

देश में कृषि एवं किसानों की समस्या का वर्णन कवि अन्यत्र इस तरह करता है ।

"सीच - साँच भी दिया मगर कुछ काम न निकला,
बेचं बांच जो लगा दिया वह दाम न किनला।"[२]

किसान अपनी भूख बेवशी और लाचारी से संत्रस्त हो कर समाज के सम्पन्न वर्ग से तीखा सवाल पूछ बैठता है--

"खा रहे हो अन्न ?
मरणासन्न मेरी हड्यिों का
स्वाद कैसा लग रहा है"[३]

धूप, शीत व वर्षा की परवाह न करते हुये किसान अन्न पैदा करने के लिये हाड़-तोड़ परिश्रम करता है, इसके बाद भी उसे भर पेट भोजन नसीब नहीं होता । इसका वर्णन करते हुये मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं -

"बरसा रहा है रवि अनल, भूतल तवा सा जल रहा,
हैं चल रहा सनसन पवन, तन से पसीना ढल रहा ।
देखो कृषक शोणित सुखाकर हल तथापि चला रहे,
किस लोभ से इस आँच में वे निज शारीर जला रहे ।

---

१. कृषक क्रन्दन - गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' पद - ४
२. वही पद - २
३. युग चरण - माखन लाल चतुर्वेदी

मध्याहन उनकी स्त्रियां ले रोटियां पहूँची वहीं ।,
हैं रोटियाँ रूखी, खबर है शाक की हमको नहीं,
सन्तोष से खाकर उन्हें, वे काम में फिर लग गये,
भर-पेट भोजन पा गये तो भाग्य मानो जग गये ।।[1]

इस तरह हम देखते हैं कि द्विवेदी युग के कवि, कृषि और कृषक की दयनीय अवस्था का वर्णन करके जन- सामानय को इसमें सुधार के प्रति प्रेरणा देते हैं । किसान और कृषि में सुधार के द्वारा ही राष्ट्र के सभी लोगों का समान रूपसे विकास स्म्भव है । यहाँ द्रष्टव्य है कि स्वामी विवेकानन्द मानते थे - उत्तम कृषि और सम्पन्न किसान के द्वारा ही राष्ट्र उन्नति की सीढ़ियाँ चढ़ सकता है ।

भेद—भाव

रामकृष्ण देव मानव मात्र में जाति - वर्ण, धर्म - सम्प्रदाय, किसी भी आधार पर भेद - भाव का विरोध करते थे । निम्न जाति के पेरिया के घर झाड़ू लगाकर इन्होंने छुआ - छूत एवं जाति - प्रथा का अपने कर्तृत्व के द्वारा विरोध किया । विभिन्न धर्मो की साधना करने के बाद इन्होंने यह सन्देश दिया कि धर्म का मूल तत्व एक है, विभिन्न पन्थ और सम्प्रदाय वहाँ तक पहुँचने के अलग - अलग मार्ग हैं । इस तरह रामकृष्णदेव अपनी वाणी औरआचरण के द्वारा सामाजिक समन्वय करते हुए दीखते है । अपने गुरू के इन्हीं आदर्शो को विवेकानन्द ने भी आगे बढ़ाया । शिकागो के महाधर्म सम्मेलन मे इन्होंने सन्देश दिया कि एक धर्म के पतन से दूसरे धर्म का उत्थान नहीं हो सकता । न हिन्दू को ईसाई बनना है न ईसाई को हिन्द । समान रूप से सभी धर्मो के विकास मे ही मानव का कल्याण निहित है ।

द्विवेदी- युगीन भारतीय समाज छुआ - छुत, जाति - पाति, भेद - भाव, ऊँच - नीच एवं विभिन्न मत - सम्प्रदायों में उलझा हुआ था । रामकुष्ण देव एवं स्वामी विवेकानन्द के सन्देशों को आधार बनाकर इस युग के कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से इन विसंगतियों

---

१. भारत भारती वर्तमान खण्ड पृ० १००

को दूर करने हेतु सामाजिक एकताा का सन्देश दिया । समाज में व्याप्त छुआ-छूत तथा अछूतों की दयनीय अवस्था का वर्णन करने हुए सियारामशरण गुप्त उनके तिरस्कार एवं आत्वेदना को वाणी प्रदान करते हैं -

"सिंह पौर तक भी आँगन से नहीं पहुँचने मैं पाया,
सहसा यह सुन पड़ा कि - कैसे यह अछूत भीतर आया ?
पकडो, देखों भाग न जावे,
साफ स्वच्छ परिधान किये है
भले- मानुषों के जैसा ।

पापी ने मन्दिर में घुसकर,
किया अनर्थ बड़ा भारी ।
कलुषित कर दी है मन्दिर की,
चिर - कालिक शुचिता सारी ।"[१]

समाज के अछूतों के दुःख का वर्णन करते हुए उनसे घृणा की अपेक्षा प्रेम रखने का सन्देश अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' अपनी कविता के माध्यम से इस तरह देते हैं -

"जो बहुत दुःख पा चुके हैं आज तक,
कम न दुःख होगा उन्हें दुःख दिये ।
सब तरह से जो बेचारे हैं दबे,
मत उन्हें आँखे दबाकर देखिये ।

छूत क्या है अछूत लोगों में,
क्यो न इनका अछूतपन लखिये ।
हाथ रखिये अनाथ के सिर पर,
कान पर हाथ आप मत रखिये ।

बाहरी जात-पात के पचड़े,
भीतरी छूत- छात की साधें ।
है हमें बाँध बेतरह देती,
क्यों उन्हें जाति के गले बाँधे।"[२]

---

१. आर्द्रा - एक फूल की चाह पृ० ५५ - ५६
२. चुभते चौपदे - छूत - छात - हरिऔध

अछूत एवं दलित के प्रति प्रेमभाव रखकर उन्हें समाज की मुख्या धारा में सम्मिलित करके देश से इस कुप्रथा को समाप्त करने का सन्देश देतु हुये राम नरेश त्रिपाठी लिखते हैं -

" कोई दलित न जग में हमको पडे दिखाई,
स्वाीधन हों, सुखी हों, सारे अछूत भाई ।
सब को गले लगा ले यह शुद्ध मन हमारा,
छूटे स्वदेश की ही सेवा में तन हमारा ।।"[१]

सदियों की उपेक्षा एवं तिरस्कार के कारण हीन भावना से ग्रस्त अछूतों एवं शूद्रों को स्वयं उठने की प्रेरणा देते हुए मैथिली शरण गुप्त उनमें आत्मबल का संचार करते हुए लिखते हैं -

' रखो न व्यर्थ घृणा कभी निज वर्ण से या नाम से,
मत नीच समझो आपको, ऊँचे बनो कुछ काम से।
उत्पन्न हो तुम प्रभु- पदों से जो सभी को ध्येय है,
तुम हो सहोदर सुरसरी के चरित जिसके श्रेय है ।।"[२]

यहाँ द्रष्टव्य है कि स्वामी विवेकानन्द शूद्रों एवं अछूतों को अपना भाई कहकर ऊपर उठने के लिए प्रेरित करते थे । वे जाति या वर्ण के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव का विरोध करते थे । ब्राह्मणत्व उनकी दृष्टि में प्रत्येक व्यक्ति के लिए जाति का आदर्श है एवं आचाण्डाल सभी को ब्राह्मण बनना उनका ध्येय । इसी से राष्ट्र उन्नति कर सकेगा । स्वामी जी के इन आदर्शों को कविता के माध्यम से व्यक्त करते हुये राम चरित उपाध्याय लिखते हैं -

" ऊँच नीच का भेद छोड़ यदि,
सभी बराबर हो जाते ।
बातों ही बातों में फिर तो,
भारत के दुःख खो जाते ।"[३]

---

१. मानसी - स्वदेश गीत पृ० १०९
२. भारत भारती भविष्यत खण्ड पृ० १७५
३. सरस्वती - हमीं हम वर्ष - १९१६ अंक - फरवरी पृ० १०१

इसी बात को बदरी नाथ भट्ट इस तरह व्यक्त करते हैं -

"विस्तारें जातीय एकता,
भेद विरोध विसारे।
भारतमाता की जय बोलें,
जल-थल नभ गुंजारे ।।"[१]

समाज में भेद-भाव को दूर करने एवं पारस्परिक प्रेम सम्बन्ध बढ़ाने हेतु नाथूराम शर्मा शंकर यह सन्देह देते हैं -

"बैरफूट के पास न जाना,
सबसे रखना मेल मिलाप ।
पूण्यशील सुख से दिन काटें,
पापी करते रहें विलाप ।।"[२]

रामचारित उपाध्याय की काव्यकृति 'देवदूत' का नायक जाति - धर्म, रूप - रंग आदि भेदों से रहित नये भारत का स्वप्न इस तरह देखता है -

"रूप- रंग में, जाति- धर्म में,
यहाँ बना है भेद नहीं ।
पर वैभव को देख, किसी के -
मन में होता खेद नहीं ।"[३]

जाति एवं वर्ण के विरोध के साथ ही इस युग के वियों ने धार्मिक विभेद को भी अपनी कविता के माध्यम से दूर करने का प्रयत्न किया । महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दू मुसलमान, ईसाई सभी की एकता में ही विकास देखते हुये अपनी भावना इस तरह व्यक्त करते हैं -

हिन्दू मुसलमान ईसाई,
यश गावें, सब भाई -भाई।
सब के सब तेरे शैदाई,
फूलो फलो स्वदेश ।"[४]

---

१. सरस्वती - राग देश वर्ष - १९१५ अंक - अप्रैल पृ० १९५
२. वायस विजय पद - १०६
३. देव दूत - उत्तर भाग पद - ३३
४. द्विवेदी काव्यमाला पृ० ४५३ - ५४

बौद्ध, जैन , पारसी यहूदी, मुसलमान, सिख, ईसाई, सभी को एकता का सन्देश देते हुये रूप नारायण पाण्डेय लिखते हैं -

जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी,
मुसलामन, सिख, ईसाई,
कोटि कण्ठ से मिलकर कह दो,
हम सब हैं भाई-भाई ।।"[१]

हिन्दू और मुसलमान के आपसी बैमनस्य एवं कटुता पर प्रहार करते हुये सियाराम शरण गुप्त लिखते हैं -

" वह कहते हैं - इनकी चोटी कर देंगे हम साफ,
यह कहते है - उनकी दाढ़ी हम न करेंगे माफ ।
कौन कहे इन हज्जामों से बको न यों निस्सार,
बहुत- बहुत हम देख चुके हैं इस कैंची की धार ।।'[२]

धर्म द्वेष और विवाद का विषय न होकर प्रेम का विषय है । बाह्य रूप से अनेक नाम और रूप होने पर भी ईश्वर का मूल स्वरूप एक ही है । रामकृष्ण देव के इस सन्देश को मैथिली शरण गुप्त अपनी कविता के माध्यम से इस तहर व्यक्त करते हैं -

" प्रभु एक किन्तु अंसख्य उनके नाम और चरित्र हैं,
तुम शैव, हम वैष्णव इसी से हा अभाग्य ! अमित्र हैं ।
तुम इस को निर्गुण समझते, हम सगुण भी जानते,
हा! इब इसी से हम परस्पर शत्रुता हैं मानते ।।[३]

विभिन्न धर्म और मत एक ही उद्देश्य की पूर्ति करानें के साधन मात्र है। रामकृष्ण देव की इस शिक्षा को कवि मैथिली शरण गुप्त इस तरह व्यक्त करते है- -

"उद्देश्य हैं बस एक यद्यपि पक्ष अनेक प्रमाण है-
रुचि - भिन्नतार्थ किये गये जो ज्ञान से निर्माण हैं ।
पर अब पंथो को ही यहाँ परधर्म्म हैं हम मानते,
करके परस्पर घोर निन्दा व्यर्थ ही हठ ठानते ।।''[४]

---

१. सरस्वती वर्ष - १९१४ संख्या - ६
२. नोआखाली - अक्षय पृ० १२
३. भारत भारती वर्तमान खण्ड पृ० १३२
४. वही

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विवेदी युग के कवि रामकृष्ण देव विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित होकर समाज में जाति एवं धर्म के नाम पर भेद-भाव का अपनी कविता के माध्याम से विरोध करते हुये समाज में एकता व समानता का सन्देश प्रसरित करते हैं ।

नारी उत्थान

रामकृष्ण देव नारी जाति के प्रति मातृभाव रखते थे । उन्होंने नारी को कभी भी दीन नही समझा । उनकी दृष्टि मे जगन्माता माँ काली उनको पैदा करने वाली उनकी माँ तथा उनकी पत्नी में कोई भेद नहीं है । नारी के प्रति अपने गुरू के इन आदर्शात्मक विचारों से प्रभावित होकर स्वामी विवेकानन्द भी नारी जाति के प्रति उदात्त भावरखते थे । वे भारतीय नरियों की तुलना सीता सावित्री व दययन्ती से करते हुये उन्हें सदैव उच्च कार्यो के लिये प्रेरित करते रहते । द्विवेदी युग के रचनाकारों ने भी रामकृष्ण देव एवं विवेकानन्द के नारी विषयक उच्च आदर्शों से प्रभावित होकर एकतरफ वर्तमान समाज में उनकी दयनीय अवस्था एवं उनकी अशिक्षा का वर्णन किया हैं तो दूसरी तरफ उनके गौरममय अतीत की याद दिलाते हुये उन्हें सत्कार्यों हेतु प्रेरित भी किया है । ठाकुर गोपालशरण सिंह नारी के गौरवमय अतीत का वर्णन अपनी कविता में इस तरह करते हैं -

'' दमयन्ती की यही जन्म वसुधा में प्यारी,
हुई रुकमिनी यहीं और गार्गी गांधारी ।
जनकसुता की कथा विश्व विश्रुत है न्यारी,
और कहाँ है, हुई जगत में ऐसी नारी ।।[१]

नारी का गौरवमय इतिहास होने के बाद भी वर्तमान समाज में उनकी स्थिति अत्यंत दयनीय है और उसी दयनीयता के कारण नारी अबला कहलाने लगी । नारी की दयनीय अवस्था का वर्णन करते हुए सियारामशरण गुप्त 'अनाथ' नामक कविता में लिखते हैं -

'' यह अबला किसलिये यहाँ कर रही रुदन है,
किस विपत्ति में व्यथित आज ये इस का मन है।।

---

१. सरस्वती वर्ष - १९०७ खण्ड - ८ संख्या - १

अविरल दृगजल बहा रही क्यूँ यह बेचारी,
अति अधीर हो रही कौन से दुःख की मारी ।।''[1]

नारी के उत्थान की भावना से प्रेरित होकर श्रीधर पाठक लिखते हैं -

'' अहों पूज्य भारत महिलागण, अहो आर्यकुल प्यारी,
अहो आर्य गृहलक्ष्मी, सरस्वति आर्य लोक उजियारी ।
आर्य जगत में पुनःजननि निज जीवन ज्योति जगाओ
आर्य हृदय में पुनः अर्यता का श्रुति स्रोत बहाओ।।''[2]

भारतीय महिलओं की दयनीय अवस्था का वर्णन कवि रामचरित उपाध्याय करते हुये अपनी भावना इस तरह व्यक्त करते हैं -

'' वस्त्र बिना भारत अबलायें,
कर सकती है स्नान नही ।
मैले- कुचैले चिथडे से तन,
ढकी हुई हैं, कॉप रही ।
बच्चे उनके सूख-सूखकर,
नंगे भूखे फिरते हैं ।
अस्थि मात्र है उनके तन में,
लुढ़क- लुढक कर गिरते है।''[3]

समाज में नारियों पर होने वाले अत्याचार का वर्णन करते हुये कवि आगे लिखता हैं -

'' जीवित बाला ज्वलित दहन में,
गयी जलायी हाय जहॉं ।
वहॉं पाप की रही न सीमा,
रहा न्याय का नाम कहॉं ।''[4]

स्वामी विवेकानन्द बाल विवाह का विरोध करते थे । कम उम्र में बालिकाओं का

१. सरस्वती वर्ष - १९१७ अंक - जून पृ० २४१
२. मनोविनोद पृ० ३२
३. देव सभा पद - ४२
४. वही पद ५२

गर्भधारण करना उनकी दृष्टि से अनुचित है। उनकी इस भावना को द्विवेदी युग के कवियों ने अपनी कविता के माध्यम से अनेक स्थानों पर व्यक्त किया है। बाल विवाह के दोषों की तरफ ध्यान आकृष्ट करते हुये नाथूराम शर्मा शंकर लिखते हैं -

" बाल विवाह जाल रच पाप कमाया,
ब्रह्मचर्य व्रत काल वृथा विपरीत गवाँया।
अबला ने चुपचाप उठाय पछाड़ा मुझको,
बेटा जन कर बाप बनाय बिगाड़ा मुझको ॥[१]

बाल विवाह के कारण होने वाले अनिष्ट की चर्चा करते हुये मैथिली शरण गुप्त लिखते हैं -

" कितना अनिष्ट किया हमारा हाय बाल्य विवाह ने !
अंधा बनाया है हमे अनातियों के चाह ने।
हा! डस - लिया है वीर्य बल को मोह रूपी ग्रास ने,
सारे गुणों को है बहाया इस कुरीति प्रवाह ने।

अल्पायु में हम सुतों का व्याह करते किसलिये?
गार्हस्थ्य का सुख शीघ्र ही पाने लगें वे इसलिये?
वात्सल्य है या वैर है यह हाय! कैसा कष्ट है?
परिपुष्टता के पूर्व ही बल- वीर्य होता नष्ट है।"[२]

नारी जाति में शिक्षा का अभाव होना भी उनकी अवनाति का एक प्रमुख कारण है। द्विवेदी युग के कवियों ने इस ओर ध्यान आकृष्ट करते हये अनके स्थानों पर नारी शिक्षा के महत्व को दर्शाया है। शिक्षा के अभाव मे नारी की दुर्गति का वर्णन करते हुये गोपालशरण सिंह लिखते हैं

"आज अविद्या मूर्ति सी है,
सब श्रीमतियाँ यहाँ।
दृष्टि अभागी देख ले,
उनकी दुर्गतियाँ यहाँ॥"[३]

---

१. सरस्वती वर्ष - १९०७ खण्ड - ८ संख्या - १
२. भारत भारती वर्तमान खण्ड पृ० १४५
३. सरस्वती - २६ खण्ड - ६

नारी को अशिक्षा के गर्त से निकालने के लिये कवि महावीर प्रसाद द्विवेदी ईश्वर से प्रार्थना भी करते हैं -

> "हे भगवान ! कहाँ सोये हो विनती इतनी सुन लीजौ,
> कामिनीयों पर करुणा करके कमले, जरा जगा दीजै ।
> कनवजियों में घोर अविद्या जो कुछ दिन से छायी है,
> दूर कीजिये उसे दयामय! दो सौ दफे दुहाई है ।"[१]

समाज को स्त्री शिक्षा के प्रति प्रेरित करते हुये मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं -

> " विद्या हमारी भी न तब तक काम में कुछ आयेगी,
> अर्द्धांगियों को भी सु - शिक्षा दी न जब तक जायेगी ।।"[२]

द्विवेदी युग की कविताओं का अध्ययन करने के बाद हम देखते है कि इस युग की कविताओं मे नारी के प्राचीन गौरव, वर्तमान में उसकी अवदशा बाल विवाह एवं उनकी अशिक्षा के सम्बन्ध में व्यापक चिन्तन मिलता है । कवियों ने नारी की दुर्गति एवं दुर्दशाा का वर्णन करने के साथ ही उनकी उन्नति के मार्गो पर प्रकाश भी डाला है ।

(द) आर्थिक

स्वामी विवेकानन्द के विचारों में भारत की आर्थिक उन्नति पर भी पर्याप्त चिन्तन मिलता है । वे धर्म एवं समाज सुधार के साथ आर्थिक प्रगति को भी मानव कल्याण की अनिवार्य शर्त मानते थे । उनके अनुसार बिना आर्थिक उन्नति किये राष्ट्र महान नहीं हो सकता । देश के हजारों नर -नारी जब अर्थ के अभाव में रोटी के लिये त्राहि- त्राहि कर रहे हों, तो उनके लिये धर्म के उपदेश का कोई महत्व नहीं है । भूखे को रोटी देना ही पहला धर्म हैं वर्तमान भारत में व्याप्त सर्वत्र गरीबी, बेकोरी और भुखमारी से जनमानस त्रस्त था। इसलिये स्वामी विवेकानन्द ने इनकी

---

१. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग - डॉ० उदयभानु सिंह पृ० ४३७
२. भारत भारती भविष्यत खण्ड पृ० १८१

दयनीय अवस्था में सुधार के लिये समाज के उच्चवर्ग को प्रेरित किया । वे मानते थे कि भारत में सभी अनर्थो की जड़ है- गरीबों की दुर्दशा । स्वामी जी के इन क्रान्तिकारी विचारों का द्विवेदी युग के कवियों पर गहरा प्रभाव पड़ा । इस युग के कवियों ने भी देश की अर्थिक अवदशा एवं उसके सुधार के सम्बन्ध में अनेक कवितायें लिखी । स्वामी विवेकानन्द के विचारों से प्रभावित होकर इस युग के कवि पाश्चात्य देशों से आर्थिक उन्नति की सीख लेने की प्रेरणा अपने कविता के माध्यम से देते हैं ।

देश मे सर्वत्र व्याप्त धन और अन्न के अभाव एवं यहाँ की दरिद्रता का वर्णन करते हुये मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं -

" रहता प्रयोजत से प्रचुर पूरित जहाँ धन धान्य था,
जो 'स्वर्ण भारत' नाम से ससांर में सम्मान्य था,
दारिद्र्य दुर्धर अब वहाँ करता निरन्त नृत्य है,
आजीविका अवलम्ब बहुधा भृत्य का ही कृत्य है।"[१]

देश मे समय - समय पर पड़ने वाले दुर्भिक्ष से भी यहाँ की आर्थिक दशा जर्जर हो गयी थी । जिससे यहाँ की जनता अन्न के अभाव में प्राण तक त्याग देती थी । इसका वर्णन करते हुये गुप्त जी ने लिखा है---

"दुर्भिक्ष मानों देह धर के घूमता सब ओर है,
हा! अन्न! हा हा! अन्न का रव गूँजता घनघोर है।"[२]

देश की दुरवस्था का वर्णन करते हुये 'कृषक बन्धु' 'वर्तमान दुर्भिक्ष' नामक कविता में दिखलाते है कि यहाँ के लोगों को दिन भर काम करने के बाद भी भर पेट भोजन नही मिलता--

" वैसे ही अतिशप दरिद्द हो रहा आज यह देश ललाम,
नहीं पेट भर भोजन मिलता दिन भर करने पर भी काम।
सभी हमारे व्यवसायों का ह्रास हो गया है इस काल
कैसे आर्थिक कष्ट दूर हो यही प्रश्न है बड़ा विशाल। "[३]

---

१. भारत भारती वर्तमान खण्ड पृ० ९३
२. वही
३. सरस्वती वर्ष -१९१४ अंक - मार्च पृ० १२९

व्यापार एवं कारोबार भी उस युग में मृतप्राय हो गये थे । इसका वर्णन करते हुये रामदहिन मिश्र लिखते हैं -

"चीजें सभी हो गयी महँगी,
नष्ट हुआ व्यापार ।
मटियामेट हुआ जाता है,
सब का कारोबार ।।"[१]

देश की आर्थिक अवनति का कारण भी बताते हुये मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं -

"आती विदेशों से यहाँ सब वस्तुएँ व्यवहार की,
धन-धान्य जाता है यहाँ से, यह दशा व्यापार की ।
कैसे न फैले दीनता , कैसे न हम भूखों मरें ।
ऐसी दशा में देश की भगवान ही रक्षा करें ।।"[२]

अंग्रेजों की भेदभाव पूर्ण व्यापारिक नीति एवं उनके द्वारा बेहिसाब आर्थिक दोहन के कारण ही देश पतन के गर्त में चला गया । इसका वर्णन करते हुये रामचरित उपाध्याय लिखते हैं -

जिस उद्यम को करके काला,
आठ रुपैया पता है ।
उसी कार्य को करके गोरा,
साठ रुपैया पाता है ।
यदि इसको हम न्याय कहें तो,
फिर किसको अन्याय कहें ।
सहे कहाँ तक देवों! भारत,
दीन दु:खी क्यों मौन रहें ?"[३]

अंग्रेजो द्वारा भारत का अन्न विदेश ले जाने का वर्णन करते हुये कवि आगे लिखता है -

"अन्न उपज करके भारत से,
पर देशों मे जाते हैं ।

---

१. स्वदेशी कुण्डल - रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' पद - ५
२. सरस्वती - विनय, वर्ष - १९१७ अंक -फरवरी पृ० ५७
३. भारत भारती वर्तमान खण्ड पृ० ११०

खाते है उसको मुस्टंडे,
पुष्ट हुए इतराते हैं ।
किन्तु पुकार भारतीयों की,
कोई सुनता कहीं नहीं ।।"[१]

समृद्ध भारत की आर्थिक अवदशा पर प्रश्न करते हुये रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' लिखते हैं -

"दायक सब आनन्द का, सदा सहायक बंधु,
धन भारत का क्या हुआ, हे करुणा के सिंधु ।"[२]

अंग्रेजों द्वारा भारत पर लगाये गये अनेक करों के कारण ही यहाँ का व्यापार, लाभ की बजाय हानिपरक हो गयी थी । अपनी कविता में रामचारित उपाध्याय इसी भवना को व्यक्त करते हैं -

"भारत का व्यापारी गण भी,
बहुत दबाया जाता है ।
नया - नया उस पर प्रति वत्सर,
टिकस लगाया जाता है ।
नाकों दम है यदपि हमारे,
लेने पाते साँस नहीं ।
पर निराश हम होकर अपना,
कर सकते उपहास नहीं ।[३]

कविवर माखन लाल चतुर्वेदी भारत के अर्थ के सभी क्षेत्रों में आई गिरावट पर दुःख व्यक्त करते हुए यहाँ की आर्थिक विपन्नता का कारण - शिल्प, वाणिज्य एवं उद्योग के ह्रास को मानते हुए लिखते हैं -

"शिल्प गया, वाणिज्य गया, गुरु शिक्षा का मान नहीं,
कृषि भी डूबी, हुए दरिद्री, पर इसका कुछ ज्ञान नहीं ।
हाय ! आज हम भोग रहे हैं, झिड़की, घृणा और अपमान,
कैसे यह दूःख दूर करेंगे, भारत के भावी विद्वान ।।"[४]

---

१. देवसभा - रामचरित उपाध्याय पद - २६ पृ० १४
२. वही पद - ४४ प१० २५ ३. वही पद - ५६ पृ० ३०
४. माता - भारत के भावी विद्वान - माखन लाल चतुर्वेदी

इस तरह हम देखते हैं कि द्विवेदी युग के कवियों ने देश की आर्थिक विपन्नता का व्यापक चित्रण करते हुये इसके कारणों पर भी प्रकाश डाला है। अपनी कविताओं के माध्यम से ये प्रकारान्तर से देश को आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनाने का भी सन्देश भी देते हैं।

द्विवेदी युग की कविताओं का व्यापक अवलोकन करने पर यह देखा जा सकता है कि युग की कविता, रामकृष्ण विवेकानन्द की भावधारा से व्यापक रूप से प्रभावित रही है। युग के कवियों ने धार्मिक, राष्ट्रीय, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में इनकी भावधारा को अपनी कविता के माध्यम से व्यक्त किया है। रामकृष्ण देव के धार्मिक समन्वय व जीव सेवा का भाव तथा विवेकानन्द के राष्ट्रप्रेम एवं समाज सुधार की भावना, युग की कविताओं में सहज ही देखी जा सकती है।

पंचम् अध्याय

रामकृष्ण – विवेकानन्द भावधारा का द्विवेदी युगीन गद्य पर प्रभाव

(क) भावधारा का निबन्ध पर प्रभाव

(ख) भावधारा का उपन्यास पर प्रभाव

(ग) भावधारा का कहाँनी पर प्रभाव

(घ) भावधारा का नाटक पर प्रभाव

रामकृष्ण – विवेकानन्द

भावधारा का

द्विवेदी युगीन गद्य

के सभी विधाओं पर

व्यापक प्रभाव पड़ा ।

जिसका हम

अलग – अलग

विधाओं में बाँट कर

अवलोकन करेंगे

(क) भाव धारा का निबन्ध पर प्रभाव

समाज किसी समय पर जिस भाव एवं चेतना से परिपूर्ण अथवा परिप्लुत रहता है, उसका प्रतिबिम्ब उसके साहित्य पर अवश्य पड़ता है। उसकी प्रवृत्तियों का मूल उद्‌गम, विकास एवं परिणाम साहित्य में स्पष्ट परिलक्षित होता है। हिन्दी साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। साहित्य, समाज और व्यक्ति की भावनाओं, आकाक्षांओं, अनूभूतियों तथा विचारों का अद्‌भुत् सम्मिश्रण है। व्यक्ति समाज का अंग है, अतएव साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, क्योंकि उसमें समाज के हृदयगत् भावों तथा विचारों का प्रतिबिम्ब पड़ता है। किसी भी जाति के साहित्य की सत् समालोनचना से उसकी प्रवृत्तियों की झलक एवं गतिविधियों का संकेत सरलता से देखा जा सकता है। हिन्दी साहित्य के निबन्धों में अंग्रेजी राज्य के कठोर पंजों में जकड़े हुए, समाज के निस्तार के लिये एक छटपटाहट एवं सामाजिक कुरीतियों तथा उसकी जड़ता को दूर करने की नयी चेतना दृष्टिगोचर होती है। साहित्य व्यक्ति की उपेक्षा नहीं कर सकता, उसमें व्यक्ति का, समाज की स्वीकृत तथा निर्णीत धारणाओं के प्रति विद्रोह और विरोध भी अंकित करना पड़ता है।

प्रतिभाशाली व्यक्ति सामाजिक विसंगतियों एवं उसकी रूढ़ियो के प्रति कोरा विद्रोह अथवा विरोध ही प्रकट नही करते अपितु एक नवीन पथ का प्रदर्शन कर, उस पर चलने की प्रेरणा भी देते हैं। रामकृष्ण देव एवं विवेकानन्द की भावधारा का स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष प्रभाव द्विवेदी युगीन निबन्धों में देखा जा सकता है। देश काल एवं परिस्थितियों से प्रभावित होकर समाज में जो भावनायें एवं कल्पनायें उत्पन्न होती हैं, वही साहित्य का अनिवार्य विषय हो जाता है। द्विवेदी युग की परिस्थितियों में स्वंतत्रता, देश - प्रेम, समाज - सुधार एवं मानववाद रामकृष्ण तथा विवेकानन्द सदृश महापुरुषों के क्रियात्मक चिन्तन के फलस्वरूप साहित्य के अनिवार्य विषय बन गये। इन नवीन विषयों को साहित्यकारों ने अपने लेख एवं निबन्धों का आधार बनाया।

वास्तव में निबन्ध ही एक ऐसी साहित्यिक विधा है, जिसमें साहित्यकार अपने तथा समाजगत् भावों एवं विचारों का प्रकाशन, स्वच्छन्दतापूर्वक कर सकता है। द्विवेदीयुग के निबन्ध

साहित्य में तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर प्रचलित प्रवृत्तियों में सुधार एवं सहयोग, अधोगामी रूढ़ियों के प्रति विद्रोह तथा उज्जवल भविष्य के प्रति संकेत एवं मानववाद की भावनाओं का प्रकाशन भली भाँति देखने को मिलता है । द्विवेदी युगीन निबन्धों पर रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा के प्रभाव को धार्मिक भावधारा, राष्ट्र्य भावधारा, सामाजिक भावधारा एवं आर्थिक भावधारा में विभाजित कर अवलोकन करेंगे ।

(अ) धार्मिक प्रभाव

जब किसी राष्ट्र या जाति में नया जीवन, नयी चेतना का आविर्भाव होता है तो वह राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक अंग एवं पक्ष पर अपना प्रभाव डालती है । समाज में उन्नति एवं परिवर्तन के लिये यह आवश्यक नहीं है कि राष्ट्रीय चेतना का प्रारम्भ राजनीतिक क्षेत्र से ही हो, वह जीवन के किसी भी पहलू से प्रारम्भ हो सकती है । द्विवेदी युगीन राष्ट्रीय चेतना का श्रीगणेश धार्मिक सुधारों से ही हुआ । भरत में अंग्रेजों का अधिपत्य स्थापित होने एवं 'फूट डालो राज करो' की नीति के कारण धार्मिक भेदभाव एवं विद्वेष चरम् पर था । ईसाई धर्म प्रचारक, हिन्दू धर्म को हीन व गर्हित घोषित करने में लगे थे । बल प्रयोग से धर्म परिवर्तन भी कराया जा रहा था । धीरे-धीरे भारतीयों को यह अनुभव होने लगा कि अंग्रेज उनकी धार्मिक कमजोरियों का पूरा-पूरा लाभ उठा रहे हैं । भारतीय जीवन में धर्म को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । अतएव भारतीयों का ध्यान अपने धर्म की रक्षा की ओर गया । ऐसे में अनेक समाज सुधारक एवं समाजसेवी संगठन समाज को धर्म सम्बन्धी नयी दिशा देने लगे । विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, राजा राममोहन राय, केवशचन्द सेन एवं रामकृष्ण मिशन, ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज के द्वारा धार्मिक रूढ़ियों का विखण्डन कर, समाज को नयी दिशा प्रदान की गयाी । पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित होकर हमारे यहाँ नास्तिकवाद और पाखण्डवाद के प्रबल झोंको ने हिन्दू धर्म की नीव हिलाने के प्रयत्न में उसे झकझोर डाला । ऐसे समय में रामकृष्ण देव की भावना को आधार बनाकर स्वामी विवेकानन्द ने अपने क्रान्तिकारी एवं ओजस्वी विचारों के द्वारा हिन्दू धर्म को इतना सुदृढ़ आधार प्रदान किया जिसे कोई धार्मिक विक्षेप प्रभावित नही कर सका ।

स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म के लिए वही कार्य किया जो किसी हद तक मार्टिन लूथर ने

ईसाई धर्म के लिए किया। इन्होंने धर्म के वाह्य आडम्बरों का खुलकर विरोध किया और धर्म के मूल तत्व को ही ईश्वरीय ज्ञान का आधार बताया। इस युग में हिन्दू धर्म की पूर्ण रक्षा एवं उसका प्रबलतम् समर्थन श्री रामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द के द्वारा ही हुआ। श्री रामकृष्ण देव ने सेवा धर्म का प्रचार किया। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि सभी धर्म सच्चे हैं एवं एक ही उदेश्य की पूर्ति के विभिन्न साधन हैं। इनके शिष्य विवेकानन्द ने वेदान्त धर्म का देश - विदेश में प्रचार कर, भारतीय धर्म को सभी धर्मों से श्रेष्ठ सिद्ध किया। रामकृष्ण एवं विवेकानन्द के धार्मिक प्रभाव को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से द्विवेदी युगीन निबन्धों में देखा जा सकता है।

द्विवेदी युग के प्रवर्तक आचार्य महाबीर प्रसाद द्विवेदी अपने द्वारा सम्पादित पत्रिका 'सरस्वती' (जो उस युग की प्रतिष्ठित पत्रिका थी) में रामकृष्ण देव के जीवन चरित एवं उनके धार्मिक भावनाओं का वर्णन करते हुए लिखते हैं - "पुत्र, कलत्र आदि बेड़ियों को तोड़ना, विषय वासना से छुटकारा पाना, मृत्तिका और स्वर्ण में अभेद मानना और ईर्ष्या - द्वेष रहित होकर प्राणिमात्र के कल्याण की आकांक्षा रखना महाकठिन काम है। कठिन क्या आजकल प्रायः असम्भव है। सांसारिक बन्धनों को तोड़ने के लिए एक ही रामबाँण उपाय है, उस उपाय का नाम विराग है। परन्तु विरागता रूपी खड्ग का स्मरण होते ही मनुष्य के होश जाते रहते हैं, उस ओर देखने तक का साहस किसी को नहीं होता। परन्तु कोयले से हीरा निकलता है, सीप ही के भीतर मोती पाया जाता है। आज हम 'सरस्वती' के पाठकों के सम्मुख एक ऐसे महात्मा का चरित सादर प्रस्तुत करते हैं जिनमें उक्त गुण पूरे प्रकार से निवास करते थे। यह वह महात्मा हैं जिनके पीयूष पूरित उपदेश सुनकर अन्य धर्मावलम्बी मुग्ध हो गये। जिनके चरित् को विस्तारपूर्वक लिखकर विदेशी विद्वान मैक्समूलर ने भी अपने को धन्य समझा। यह वह महात्मा हैं जिनके शिष्य विवेकानन्द ने यूरोप और अमेरिका तक के विद्वानों को भारतवर्षी वेदान्त शास्त्र की महिमा सुनाकर मोहित कर लिया। इस महात्मा का नाम परमहंस रामकृष्ण है।"[१]

उपर्युक्त लेख 'महात्मा रामकृष्ण परमहंस' में उनके जीवन चरित एवं धार्मिक

१- सरस्वती वर्ष १९०३ अंक - फरवरी - मार्च पृ० ४१

विशिष्टताओं का वर्णन करते हुए रामकृष्ण देव एवं स्वामी विवेकानन्द का चित्र भी छापा गया है।[1] आचार्य द्विवेदी जी रामकृष्ण देव के जीवन चरित का विश्लेषण करते हुए उनके समत्व दृष्टि एवं एकत्वभाव का वर्णन करते हुये लिखते हैं -" इस जगत के सारे अनर्थों का मूल बहुत करके दो ही वस्तु हैं- एक कनक और दूसरी कान्ता । इसलिये रामकृष्ण स्त्री मात्र को माता और द्रव्य मात्र को मिट्टी के टुकड़े से भी तुच्छ समझते थे ।....... कुछ दिन में उन्होंने द्रव्य को हाँथ से छूना तक छोड़ दिया । यह कहना चाहिये कि निर्लोभता की सीमा का उन्होंने उल्लंघन कर दिया ।"[2]

'रामकृष्ण देव' धर्म के वाह्य आडम्बर एवं प्रदर्शन, चमत्कार का पूर्णतः विरोध करते थे । वे इसे ईश्वर की उपासना में बाधा समझते थे । इसका वर्णन महाबीर प्रसाद द्विवेदी जी करते हुये लिखते हैं ,-" रामकृष्ण यद्यपि महायोगी थे, तथापि अघटित घटनाओं को दिखलाकर वे अपना सामर्थ्य सब लोगों पर विदित नहीं करना चाहते थे । वे इसे खेल समझते थे और कहा करते थे कि ऐसा करना ही बुरा है। इससे ईश्वर की उपासना में अन्तर पड़ता है और अंहकार से मन के कलुषित हो जाने का डर रहता है । एक बार उनके एक शिष्य ने पानी पर चलने की सिद्धि प्राप्त करके उसका वृत्तान्त उनसे कहा, वे उसके कथन को सुनकर प्रसन्न तो हुए नहीं ,उल्टा उन्होंने अप्रसन्नता प्रकट की । उन्होंने कहा कि, " तूने इतना परिश्रम और इतने दिन एकान्तवास करके क्या यही एक पैसे की वस्तु प्राप्त की । क्या एक पैसा देकर कोई मनुष्य नाव के द्वारा नदी नहीं पार हो सकता? तेरा परिश्रम व्यर्थ है । इस प्रकार का व्यवसाय छोड़कर तुझे केवल ईश्वर की उपासना में लीन होना चाहिए। पानी पर चलने और अंगार मुख में रखने की सिद्धि से अणुमात्र भी लाभ नहीं ।[3]

रामकृष्ण देव के धार्मिक समन्वय एवं सरलता के कारण सभी मत एवं पन्थ के अनुयायी उनसे धर्मलाभ प्राप्त करते थे । आचार्य द्विवेदी इस सम्बन्ध में लिखते हैं-" रामकृष्ण के माहात्म्य एवं उनकी कीर्ति को सुनकर लोग दूर से उनके दर्शनों के लिये आने लगे । उनके ज्ञानामृत मधुर उपदेशों को सुनकर अपने को धन्य मानने लगे। उनके उपदेश ऐसे सीधे परन्तु हृदयगामी होते थे कि उनको सुनकर महानास्तिक भी अपनी नास्तिकता छोड़ देते थे। प्रसिद्ध बह्म

१.	सरस्वती	वर्ष १९०३	अंक - फरवरी - मार्च	पृ० ४४
२.	वही		वही	पृ० ४६
३.	वही			पृ० ४७

समाजी बाबू केशवदेव सेन रामकृष्ण के उपदेशों में तल्लीन होकर उनके शिष्य सदृश हो गये थे। वे प्रायः उनके दर्शनों को आया जाया करते और समाधिस्थ होने पर उनकी पाद सेवा अपने हाथ से किया करते थे। रामकृष्ण के मुख से निकले हुए दृष्टान्तों को उन्होंने पहले पहल अंग्रेजी में प्रकाशित किया। उनके प्रकट होते ही रामकृष्ण की कीर्ति और भी दूर-दूर तक फैल गयी। बड़े-बड़े अधिकारी अंग्रेज भी उनको आदर की दृष्टि से देखने लगे। पादरी लोग भी कभी-कभी पूछ-पाछ की इच्छा से उनके पास जाने लगे। अंगेजी के बड़े-बड़े विद्वान और कालेज के विद्यार्थी जिनमें नास्तिकता के बीज दृढ़ता से आरोपित हो गया था, उनके सीधे-सादे उपदेशों को सुनकर चकित होने और साथ ही नास्तिकता को छोड़ने लगे। उनकी तर्क प्रणाली रामकृष्ण की ग्राम आरव्यायिकों के सम्मुख उड़ी-उड़ी फिरने लगी।[१]

रामकृष्ण देव अपने विचारों के द्वारा समाज में धर्म का अनवरत प्रसार कर रहे थे। वे अपने धार्मिक अनुभव को जन -जन तक पहुँचाने में सतत् लगे रहे। इस सम्बन्ध में 'सरस्वती' के सम्पादक द्विवेदी जी लिखते हैं - '' अस्वस्थ होने पर भी वे बहुधा चुपचाप न बैठते थे, कुछ न कुछ ज्ञानोपदेश किया ही करते थे। इस सतत् भाषण का परिणाम उनके दुर्बल शरीर पर बड़ा बुरा हुआ। कुछ दिनों में उनके कण्ठ में पीड़ा होने लगी परन्तु तिस पर भी उन्होंने बोलना न बन्द किया। जो कोई उन्हे बोलने से रोकता तो वे कहते कि- यदि मेरे कथन से एक भी मनुष्य का थोड़ा भी उपकार हो और यदि उसके बदले मुझे मेरे प्राण भी विसर्जित करने पड़े तो भी मै अपने को कृतार्थ मानूँगा।''[२] इस तरह द्विवेदी युग के प्रमुख निबन्धकार अपनी लेखनी के माध्यम से इस युग में रामकृष्ण देव की भावधारा का प्रसार करते दीखते हैं।

द्विवेदी युग के ही एक अन्य प्रतिष्ठित निबन्धकार माधव प्रसाद मिश्र ने भी रामकृष्ण के जीवन चरित पर अपनी लेखनी चलायी। इन्होंने अपने निबन्ध संग्रह 'माधव मिश्र निबन्धमाला', भाग - एक में '' परमहंस श्री रामकृष्ण देव का जीवन चरित'' नाम से निबन्ध लिखकर इनकी धार्मिक भावनाओं का विश्लेषण किया है। निबन्ध के आरम्भ में ये लिखते हैं कि ''अच्छे लोगों के चरित्र पढ़ने और सुनने से जैसे उन्नति के साधनों का ज्ञान होता है वैसे ही अधोगति से बचने का

१- सरस्वती वर्ष १९०३ अंक - फरवरी - मार्च पृ० ४८
२. वही पृ० ४९

अवसर मिलता है । इसलिए महाभारत में लिखा है कि पुराण और महात्माओं के चरित्र नित्य सुनने चाहिए । इस क्रम में हम वंग देश के उस प्रसिद्ध महात्मा का जीवन चरित निज मातृभाषा में संक्षेप में लिखते हैं, जिसके निर्मल यश से न केवल देशवासियों का ही चित्त आकृष्ट हुआ है वरन योरोप अमेरिका के विदेशी सज्जनों का मन मोहित हो रहा है । इन विश्वविख्यात महापुरुष का नाम परमहंस रामकृष्ण देव है ।[१]

उपर्युक्त निबन्ध में माधव मिश्र ने रामकृष्ण देव की विशिष्टताओं का - जन्मभूमि, माता-पिता, कुलदेवता, बाल्यकाल, लिखना-पढ़ना, दक्षिणेश्वर, विवाह, काली देवी की पूजा, उन्मत्त की तरह, संन्यास ग्रहण, योग सिद्धि,एक विदुषी ब्राह्मणी,बाबू मथुरानाथ और पीड़ा शीर्षक से प्रेरणास्पद एवं हृदयग्राही वर्णन किया है । रामकृष्ण देव के धर्म की तात्विक व्याख्या करते हुए माधव मिश्र लिखते हैं - ''अभिमान वा अंकार ईश्वर के मार्ग में बड़ा कंटक है । रामकृष्ण ने इसके दूर करने का पथम यत्न किया । वह काली से कहने लगे कि 'माँ ! मेरा अहंकार नष्ट कर दो मै दीन से दीन और हीन से हीन हूँ । यही मेरी समझ रहे, क्या शूद्र क्या चाण्डाल सब मेरी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं, यह ज्ञान मुझे सर्वदा रहे । ' वे अपने अहंकार को निवृत्त करने के लिए केवल प्रार्थना ही नहीं करते थे, वरन उन बातों को भी करते थे जिनके करने में एक ब्राह्मण को तो क्या, शूद्र को भी संकोच उपास्थित हो । उनका तिरस्कार करने पर भी इससे उनके भाव में कुछ अन्तर नहीं होता। कोई कहता यह पागल हो गया और कोई समझता इसमें भूत आ गया और कोई कहने लगता कि यह संस्कार भ्रष्ट है । इससे इनके निकट बन्धुओं का उपदेश, शत्रुओं का उपहास टिकने नहीं पाती थी । वे अपने कार्य को जब तक पूरा नही लेते थे तब तक उसी दत्तचित्त रहते।''[२]

रामकृष्ण देव के ईश्वर विषयक दृष्टि का वर्णन करते हुए माधव मिश्र लिखते है कि -''उन्होंने कामिनी कांचन के त्याग में मन लगाया। वे ईश्वर की शक्ति को माया कहते हैं। इस माया ही से जगत की सृष्टि हुई है। माता महामाया ही का स्वरूप सब स्त्रियाँ है इसलिये जगत की समस्त स्त्रियाँ हमारी माता हैं। उस दिन से सभी स्त्रियो में उनका मातृभाव हो गया । ''[३]

१-	माधव मिश्र निबन्धमाला - १	पृ० २४३
२.	वही	पृ० २४९
४.	वही	

रामकृष्ण देव की सरलता पवित्रता और दिव्यता का वर्णन सरदार पूर्ण सिंह 'पवित्रता' निबन्ध के द्वारा करते हुये लिखते हैं - " कलकत्ते के पास एक निरक्षर नंगा काली भक्त है। काली भक्त क्या ? ब्रह्मकान्ति का देखने वाला फकीर है। इसके नेत्र और इसका सिर, मेरे तेरे नेत्रों और सिरों से भिन्न है। किसी और धातु के बने हुये हैं। मामूली साधू नहीं, जो छू-छू करते फिरते हैं। एक कोई स्त्री आयी। आप चीख कर उठे। माता कहकर सिर उसके चरणों में रख दिया। मेरी तेरी निगाहों में यह कंचनी ही थी। पर रामकृष्ण की तौ जगत् माता निकली। देखकर मेरी आँखे फूट गयी। और मैने भी दौड़कर उनके चरणों में शीश रख दिया। तब उठाया जब आज्ञा हुयी। दरिद्रों! क्या तुम दे रहे हो ? मेरे सामने परमहंस ने कुल विराट् इस माता के चरणों में लाकर रख दिया ? नेत्र खोल दिये। अहिल्या की तरह अपना साधारण शरीर छोड़कर यह देवी आकाश में उड़ गयी ? कहोगे - "पूर्ण" तो मूर्तिपूजक हो गया, कुछ भी कहो - मेरे मन की कोठरी ऐसी ऐसी मूर्तियों से भरी है ! इस बुतपरस्ती से पवित्रता मिलने के भाग खुलते हैं पवित्रता को अनुभव कर ब्रह्मकान्ति का दर्शन होता है।"[१]

द्विवेदी युग के प्रमुख रचनाकार चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने सूर्य कुमारी ग्रन्थ माला के अन्तर्गत 'विवेकानन्द' के चरित्र व उपदेश को 'विवेकानन्द ग्रन्थावली' नाम से संकलित किया है।[२] इस प्रकार युग के प्रमुख निबन्धकारों पर विवेकानन्द का सीधा प्रभाव देखा जा सकता है। हिन्दी गद्य विधा के सशक्त हस्ताक्षर कालजयी रचनाकार प्रेमचन्द की लेखनी भी रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा से प्रभावित हुए बिना नहीं रही। अपने निबन्ध पुस्तक 'कलम, तलवार और त्याग' में स्वामी विवेकानन्द शीर्षक निबन्ध में विवेकानन्द के धार्मिक ओज एवं प्रवाह का मूर्तिमान चित्रण किया है। वे लिखते है -" कृष्ण भगवान ने गीता में कहा है कि जब धर्म का ह्रास और पाप की प्रबलता होती है तब - तब मै मानव जाति के कल्याण के लिए अवतार लिया करता हूँ। इस नाशवान जगत में सर्वत्र सामान्यतः और भारतवर्ष में विशेषतः जब कभी पाप की वृद्धि या और किसी कारण (समाज के) संस्कार या नवनिर्माण की आवश्यकता हुई तो ऐसे सच्चे सुधारक और पथ - प्रदर्शक प्रकट हुए हैं जिनके आत्मबल ने सामाजिक परिस्थिति पर विजय प्राप्त

---

१. सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबन्ध - सम्पादक - प्रभात शास्त्री, पृ० १०२

२. प्रकाशक - काशी नागरी प्रचारिणी सभा - संवत् १९७८

की ।......................ऐसे समय पुनीत भारत भूमि में पुनः एक महापुरूष का आविर्भाव हुआ जिसके हृदय में आध्यात्मभाव का सागर लहरा रहा था, जिसके विचार ऊँचे और दृष्टि दूरगामिनी थी, जिसका हृदय मानव प्रेम से ओत-प्रोत था । उसकी सच्चाई भरी ललकार में क्षण भर में जड़वादी संसार में हलचल मचा दी । उसने नास्तिक्य के गढ़ में घुसकर साबित कर दिया कि तुम जिसे प्रकाश समझ रहे हो वास्तव में वह अन्धकार है और यह सभ्यता जिस पर तुमको इतना गर्व है, सच्ची सभ्यता नहीं है । इस सच्चे विश्वास के बल से भरे हुए भाषण ने भारत पर जादू का असर किया और जड़वाद के प्रखर प्रवाह ने अपने सामने ऐसी ऊँची दीवार खड़ी पाई जिसकी जड़ को हिलाना या जिसके ऊपर से निकल जाना उनके लिये असाध्य कार्य था । आज अपनी समाज व्यवस्था, अपने वेदशास्त्र, अपने रीति व्यवहार, और अपने धर्म को हम आदर की दृष्टि से देखते हैं । यह उसी पूतात्मा के उपदेशों का सुफल है कि हम अपने प्राचीन आदर्शों की पूजा करने को प्रस्तुत हैं, और यूरोप के वीर पुरुष और योद्धा, विद्वान और दार्शनिक हमें अपने पण्डितों, मनीषियों के सामने निरे बच्चे मालूम होते हैं । आज हम किसी बात को, चाहे वह धर्म और समाज व्यवस्था से सम्बन्ध रखती हो या ज्ञान - विज्ञान से, केवल इसलिये मान लेने को तैयार नहीं हैं कि यूरोप में उसका चलन है । किन्तु उसके लिए हम धर्मग्रंन्थो और पुरातन पूर्वजो का मत जानने का यत्न करते और उनके निर्णय को सर्वोत्तम मानते हैं । और यह सब ब्रह्मलीन स्वामी विवेकानन्द के आध्यात्मिक उपदेशों का ही चमत्कार है। ''[१]

विवेकानन्द की धार्मिक विशिष्टता एवं धर्म के सिद्धान्तों की विवेचना करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं -'' हिन्दू धर्म का आधार किसी विशेष सिद्धान्त को मानना या कुछ विशेष विधानों का पालन करना नहीं है । हिन्दू का हृदय शब्दों और सिद्धान्तों से तृप्ति लाभ नहीं कर सकता । अगर कोई ऐसा लोक है जो हमारी स्थूल दृष्टि के अगोचर है तो हिन्दू उस दुनिया की सैर करना चाहता है । अगर कोई ऐसी सत्ता है जो भौतिक नहीं है, कोई ऐसी सत्ता है जो न्याय रूप, दया रूप और सर्वशक्तिमान है तो हिन्दू उसे अपनी अन्तर्दृष्टि से देखना चाहता है । उसके संशय सभी छिन्न-भिन्न होते हैं, जब वह उन्हें देख लेता है ।''[२] इस तरह रामकृष्ण - विवेकानन्द की

---

१. कलम, तलवार और त्याग - प्रेम चन्द्र पृ० १०८
२. वही पृ० ११५

धार्मिक भावधारा का प्रभाव द्विवेदी युग के गद्य - शिल्पी साहित्यकार प्रेमचन्द्र पर प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है ।

थोड़े किन्तु भावपूर्ण सशक्त निबन्धों की रचना से साहित्य जगत में स्थापित सरदारपूर्ण सिंह 'अध्यापक' द्वारा सम्पादित मासिक पत्र 'प्रभा' में भी रामकृष्ण विवेकानन्द की धार्मिक भावधारा का प्रत्यक्ष प्रभाव देखा जा सकता है । इस पत्र में रामकृष्ण देव का चित्र छापते हुए उनके धार्मिक विचार धारा का वर्णन करते हुए लिखा गया है - "इस महात्मा से भारत वर्ष अन्तरंगता से परिचित है । इन्हीं की कृपा के एक कण स्वनाम धन्य श्री स्वामी विवेकानन्द थे । जिन्होंने नयी दुनिया में भारतवर्ष की धर्मध्वजा फहरा कर धर्म की कवायद से घबड़ाये हुए पश्चिम को अनुकूल मार्ग दिखाया, इन्हीं के वाक्यों में वह शक्ति थी जो मानव जीवन को पलट ही नही सकती थी प्रत्युत उसे एक महापुरुष का स्वरूप दे सकती थी ।"[१]

इसी पत्र में अन्यत्र स्वामी विवेकानन्द का चित्र छापते हुए उनके धार्मिक अवदेय को इस तरह से दर्शाया गया है - " जिसने भारतीय धर्म ध्वजा को पश्चिमी सभ्य देशों में तथा पाताल तक में फहरायी, जिसने स्वामी रामकृष्ण के उपदेशों का रूप बनकर अपने गुरू की गौरव दुन्दुभी बजायी..... जिसने भारतीय धर्म के तत्व, भूले हुए भारतीयों को समझाई । भरतीय धर्म के इस भगीरथ ने धर्म की भागीरथी के प्रवाह को संसार में बहाकर अपने को पवित्र कर डाला । जिसने धर्म के बगीचे में बढ़े हुए विषैले वृक्षों को उखाड़ फेका और अव्यवस्थित रूप से बढ़े हुए वृक्षों की शाखाओं की कलम करके भारतीय धर्मोद्यान को सुशोभित करने के हेतु प्रयत्न किया .... उस भारतीय, रामकृष्ण के एक मात्र भक्त और देवी निवोदिता के गुरू कार्यविजयी श्री स्वामी विवेकानन्द को कौन नहीं जानता । भारत के वासियों! इस वीर को प्रेम पूर्वक प्रणाम करो।"[२]

विवेकानन्द की शिष्या भगिनी निवोदिता के धार्मिक विचारों का द्विवेदी युग के निबन्धों में वर्णन हुआ है एवं इनके सेवा - भाव व धार्मिक क्रिया - कलापों की खुले मन से प्रसंशा की गयी है । प्रभा पत्र में भगिनी निवोदिता का चित्र छापते हुए लिखा गया है -" यह परोकारिणी

---

१. प्रभा; १९१४, अंक - जनवरी पृ० ६४०
२. वही - १९१३ अंक - दिसम्बर पृ० ५८४

देवी इंग्लैण्ड में पैदा हुई थी परन्तु इसने अपना शरीर भारतवर्ष को समर्षित कर दिया था एवं धर्म हेतु अपना शरीर चढ़ा दिया था ..... हमारा हृदय निवोदिता को श्रद्धा की दृष्टि से देखेगा।''[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विवेदी युग के प्रमुख पत्रों एवं निबन्धों में रामकृष्ण देव, स्वामी विवेकानन्द, भागिनी निवोदिता के चित्र छाप कर इनके जीवन एवं इनकी भावधारा पर प्रकाश डाला गया है। यहाँ हम द्विवेदी युग के निबन्धों पर रामकृष्ण - विवेकानन्द भावधारा के धार्मिक विचारों का प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट प्रभाव देख सकते हैं । प्रत्यक्ष प्रभाव के साथ-साथ उक्त भावधारा का द्विवेदी युग के निबन्धों में परोक्ष रूप से भी व्यापक प्रभाव पड़ा है । 'ईश्वर का वर्तमान होना', 'हम मूर्ति पजूक हैं', 'श्रुति रहस्य', 'ईसू खीष्ट और ईश - कृष्ण' जैसे निबन्धों में इनकी धर्म सम्बन्धी विचारधारा देखी जा सकती है ।

द्विवेदी युग के निबन्धों को देखने से ज्ञात होता है कि लेखकों का उदेश्य किसी विशेष धर्म का प्रचार न होकर पाठक वर्ग को धर्म के वास्तविक तथा मूल अर्थ को समझाना ही रहा है । 'मिश्रबन्धु', 'हिन्दूधर्म',निबन्ध में लिखते हैं- '' आजकल हमारे यहाँ पठित समाज तक में स्वधर्म विषयक तत्वों और रहस्यों का ऐसा घोर अज्ञान फैला हुआ है कि हम जैसे अल्पज्ञों को भी उसके विषय में कुछ कहने का साहस हुआ । एक बार लीडर पत्र ने हिन्दू धर्म के मुख्य सिद्धान्तों के विषय में पंडित समाज का मत माँगा था । उसके उत्तर में प्रायः बीस महाशयों ने छोटे-छोटे लेख भेजे, जो उक्त पत्रकार ने पुस्तकाकार छापे। उसके देखने से विदित होता है कि हिन्दुओं में ही अपने धार्मिक सिद्धान्तों एवं मुख्यताओं के विषय में बड़ा मतभेद है।''[२]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन साहित्यकार धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों पर ही प्रकाश डालने का प्रयत्न करते हैं । वह धर्म के वाह्य आडम्बर में न तो स्वयं फँसना चाहता है और न पाठक को उसमें फँसा हुआ देखना चाहता है । इस युग की धार्मिक भावना का दूसरा रूप विभिन्न धर्मो के समन्वय के रूप में परिलक्षित होता है जो रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा से पूर्णतया अनुप्राणित है । इस युग के निबन्धकारो ने राष्ट्र तथा जनता के हित के लिए विभिन्न सम्प्रदायों में सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक समझा, क्यों कि उन्हें यह बोध था कि

१. प्रभा वर्ष-१९१३ अंक-दिसम्बर पृ० ५८४
२. समनांजलि-१ पृ० ५५

यदि भारतीय इस समय मत मतान्तरों के झगड़ों में फँस गये तो उनकी उन्नति के मार्ग में बाधा पडेगी और उनके विकास की गति कुण्ठित हो जायेगी। पण्डित पद्मसिंह शर्मा इसी भावना से प्रेरित हो कर लिखते है,-"सनातनी भाइयों! तुम्हारी दृष्टि में स्वामी दयानन्द ने कोई भूल की हो तो उसे भूल जाओ और उनके उपकारो को याद करो। धर्म जाति और देश की रक्षा के लिए जो मार्ग उन्होंने सुझाये हैं, कृतज्ञता पूर्वक उनमें से अपने अनुकूल उपादेय अंशो को अपनाओं, आँखे खोलो और समय को देखो। मेल में मुक्ति और विरोध में विनाश है, इससे बचो और उसकी ओर बढ़ो।"[१]

रामकृष्ण देव की भावधारा से अनुप्राणित होकर द्विवेदी युगीन निबन्धकार यह समझ गये थे कि समस्त धर्मों के मूल सिद्धान्तों में कोई विशेष अन्तर नहीं है इसलिए उनके निबन्धों में संसार के अन्य धर्मो से द्वेष अथवा घृणा का भाव देखने को नहीं मिलता परन्तु विवेकानन्द की तरह अन्य धर्मों से हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करने की भावना अवश्य देखने को मिलती है। हिन्दू धर्म को अन्य धर्मो की अपेक्षा उच्च आसन प्रदान करने की भावना से युक्त होकर 'पाश्चात्य देशों को हिन्दू धर्म का सन्देश',[२] 'स्वामी विवेकानन्द और आधुनिक संसार',[३] 'बाइबिल में वेदान्त शिक्षा',[४] आदि निबन्धों की रचना हुई।

इस युग के धर्म विषयक निबन्धों से यह ज्ञात होता है कि उसमें धर्म के तत्वों की गूढ़ व्याख्या न कर, सरल तथा सीधी व्याख्या करने का प्रयत्न किया गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि इस समय के साहित्यकारों की रुचि धर्म के सरलीकरण की ओर अधिक थी। इस परिप्रेक्ष्य में यह द्रष्टव्य है कि रामकृष्ण देव कहा करते थे कि बगीचे में पेड़ के मीठे फल खाने से प्रयोजन होना चाहिए न कि पेड़ में कितने पत्ते हैं यह गिनने में। धर्म के गूढ़ तत्वों के जाल में उलझने से बचने के लिए वे इस दृष्टान्त से समझाया करते थे कि - यदि दो पैसे की मदिरा पीने से ही नशा हो जाता है तो मदिरालय में और कितनी मदिरा है, इससे जानने से क्या लाभ है। उनकी इस भावधारा के प्रभाव से द्विवेदी युग के निबन्धकार भी प्रभावित हो, इसका अनुकरण करते दीखते हैं।

द्विवेदी युग के निबन्धकार धर्म की संकीर्णताओं को त्याग कर उसके व्यापक रूप

---

१. पद्मपुराण, पृ० २२
२. मर्यादा - राधाकमल, वर्ष १९१७ अंक जुलाई
३. सरस्वती - हर्ष देव ओली, वर्ष १९२४ अंक जुलाई
४. सरस्वती - लक्ष्मीधर, वर्ष १९१३, अंक दिसम्बर

को ही अपना समर्थन देते हैं । उनके विचारों के मूल में यह बात गहरे रूप में समाहित थी कि धर्म सहयोग, समानता, प्रगति और उन्नति का विषय है, न कि द्वन्द्व, द्वेष, पराजय और पतन का । जैसा कि, स्वामी विवेकानन्द भी कहते थे कि धर्म के द्वारा प्रत्येक अपनी-अपनी उन्नति का मार्ग प्रशस्त करे । इन्हीं विचारो के आलोक में द्विवेदी युग के धर्म विषयक निबन्धों की रचनाएँ हुई जिनमें 'हिन्दुत्व तथा हिन्दू धर्म,'[१] 'एशिया की धार्मिक एकता',[२] 'यूनानी राजदूत और वैष्णव धर्म'[३] 'धर्म',[४] 'धर्म की परिवर्तनशीलता'[५] आदि प्रमुख हैं ।

विवेकानन्द धर्म की जड़ता, संकीर्णता एवं रूढ़िवादिता का मुखर विरोध करते थे । वे धर्म के अनेक औचित्यहीन वाहय रूपों को सिर्फ इस आधार पर ढोते रहने का विरोध करते थे कि वे हमारे पूर्वजों द्वारा दीर्घकाल से व्यवहृत होती आ रही हैं । धर्म की यह व्यापक व्याख्या द्विवेदी युगीन निबन्धों में पूर्णरूपेण व्यक्त हुई है । इस युग के निबन्धों में काल और परिस्थिति के अनुसार धर्म के स्वरूप में परिवर्तन कर लने की ओर भी संकेत मिलता है । इनमें शास्त्रानुमोदित उपयोगी प्रथाओं को अपनाने तथा बुढ़िया पुराण के कारण प्रचालित कुरीतियों के त्याग करने के लिये उचित उपदेश भी है । जिस प्रकार विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म का विरोध करने पर पश्चिमी जगत को धिक्कारा था उसी प्रकार पश्चिमी विद्वानों के इस आक्षेप का कि " हिन्दू धर्म मृत रीतियों का धर्म है',- द्विवेदी युग के निबन्धकारों ने मुँहतोड़ उत्तर देने का प्रयत्न किया है ।

(ब) राष्ट्रीय प्रभाव

विवेकानन्द की विचाराधारा में देश प्रेम, राष्ट्रीय गौरव एवं राष्ट्र उद्धार का स्वर स्पष्ट रूप से सुना जा सकता है। उच्च शिक्षा प्राप्त करने एवं विदेश भ्रमण करने के बाद भी, साथ ही एक संन्यासी होते हुए भी जैसा उत्कट देश - प्रेम विवेकानन्द में देखा जाता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है । अमेरिका के शिकागो धर्म सम्मेलन में जाते समय विवेकानन्द के मन में देश से बिछुड़ने

---

१. सरस्वती - भाई परमानन्द वर्ष - १९२४ अंक - जुलाई
२. वही, - सत्य देव वर्ष - १९२२ अंक - नवम्बर
३. मर्यादा - गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, वर्ष - १९१० अंक - दिसम्बर
४. इन्दु - रूप नारायण पाण्डेय वर्ष - १९१५ अंक - जनवरी
५. प्रभा - शीतला सहाय, वर्ष - १९२० अंक - अक्टूबर

की जो असह्य पीड़ा थी उसे सहज ही समझा जा सकता है। भारत देश को वे एक निर्जीव तत्व के रूप में नहीं अपितु साकार देवी के रूप में देखते थे । धर्म में प्रतिष्ठित होने के बाद भी देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त करने के लिए देशवासियों का आह्वान करते हैं - ''अगले पचास वर्षो के लिए सभी देवी देवताओं को विसार्जित कर दो, तब तक तुम्हारी देवी भारतमाता हैं । तुम इन्हीं की मुक्ति की आराधना करो ।'' उक्त कथन के आलोक में विवेकानन्द के राष्ट्रप्रेम को देखा जा सकता है ।

मूलतः एक संन्यासी होने के कारण और अपने को धर्म और समाज तक केन्द्रित रखने के कारण विवेकानन्द ने प्रत्यक्षतः राजनीति में कोई सहयोग नहीं दिया किन्तु परोक्ष रूप से राष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित करने वाले सभी राजनेता और क्रान्तिकारी इनकी राष्ट्रीय भावधारा से ओत-प्रोत रहे । सुभाष, गाँधी, नेहरू तथा टैगोर प्रभृति राजनेता विवेकानन्द से प्रत्यक्षतः प्रभावित रहे । महात्मा गाँधी ने इस सम्बन्ध में कहा कि ''विवेकानन्द को पढ़कर मेरा देश प्रेम बढ़ा है । '' इसी सम्बन्ध में रवीन्द्रनाथ टैगोर कहते है,''देश को समझना है तो विवेकानन्द को पढ़ो ।''

भारत के राजनीतिक आन्दोंलन का द्विवेदी युगीन साहित्य पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा तथा विवेकानन्द के राष्ट्रीय चिन्तन को द्विवेदी युग में नया आयम दिया गया । जो कार्य भारतीय नेताओं की वाणी से न हो सका, उसे विवेकानन्द जैसे राष्ट्रवादी ने अपने विचारों से कर दिखाया । उनके राष्ट्रीय विचारों को साधारण जनता तक पहुँचाने का सबसे अधिक श्रेय साहित्यकारों को ही दिया जा सकता है ।

उन्नीसवीं शताब्दी के पहले, भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय भावना देखने को नही मिलती । आधुनिक युग में साहित्यिक क्षेत्र में राष्ट्रीय भावना के मंत्र का सर्व प्रथम उच्चारण करने वाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कहे जाते हैं । ' भारतवर्ष के सुधार का क्या उपाय है', ' इंग्लैण्ड और भारतवर्ष' आदि निबन्धों में उनकी राष्ट्रीय भावना देखने को मिलती है । द्विवेदी युग के आने के समय तक राजनीतिक चेतना ने क्रियात्मक रूप धारण कर लिया था । राजभक्ति को राज विद्रोह की कोटि में गिना जाने लगा था । अतएव इस युग में परम्परा से चली आने वाली सुधार और आलोचना की प्रवृत्ति को प्रश्रय तो मिला ही, साथ ही विवेकानन्द जैसे नेताओं के वैचारिक प्रभाव के

कारण राष्ट्रभक्ति एवं स्वराज्य प्राप्ति के लिये जनता को उत्तेजित करने की भावना भी देखने को मिलती है । इस राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित होकर विद्वानों ने समाज को यदि भारत की तत्कालीन दुरवस्था पर क्षोभ प्रदर्शित करने के लिए बाध्य किया तो दूसरी ओर अतीत की भव्यता पर गर्व करना चाहिए, इसकी ओर संकेत किया । राष्ट्र के नवनिर्माण के सम्बन्ध में अतीत एवं इतिहास के महत्व को रेखांकित करते हुए विवकानन्द कहते है, " जिस राष्ट्र का कोई अपना इतिहास नहीं है, वह इस संसार में अत्यन्त हीन और नगण्य है ।" राष्ट्रीय चेतना में अतीत गौरव का यह भाव द्विवेदी युग के निबन्धों में देखने को मिलता है ।

जनता में आत्मविश्वास तथा आत्म सम्मान की भावना को प्रतिष्ठित करने के लिए द्विवेदी युग के निबन्धोकारों ने जनमानस को उसके भव्य अतीत से परिचित कराया । भारत सरकार द्वारा स्थापित प्राचीन शोध और अन्वेषण विभाग की खोजों ने भारतीय संस्कृति एवं उसके साहित्य पर नया प्रकाश डाला । समाज के पढ़े - लिखे लोगों का ध्यान अपने प्राचीन बैभव तथा संस्कृति की ओर आकर्षित होने लगा । निबन्धकारों ने अतीत के गौरव को व्यक्त करने के लिए 'प्राचीन भारत की एक झलक',[१] 'भारतीय पुरातन राजनीति',[२] 'प्राचीन शासन पद्धति और राजा',[३] सम्राट अशोक का राज्य शासन',[४] 'तुलसीदास के राजनैतिक विचार',[५] आदि निबन्धों में भारत के अतीत गौरव की ओर संकेत किया तथा भारत की प्राचीन राजनीति व्यवस्था पर भी प्रकाश डालने का प्रयत्न किया ।

इसके अतिरिक्त 'इतिहास का महत्व'[६], 'सच्चे ऐतिहासिक ज्ञान की आवश्यकता"[७], 'इतिहास क्या है ?"[८] आदि निबन्धों में भारत की प्राचीन व्यवस्था पर प्रकाश डालने वाले इतिहास को महत्व दिया गया है 'भारतीय स्कूलों में इतिहास की शिक्षा'[९] निबन्ध में यह स्पष्ट रूप से

१.	सरस्वती - महावीर प्रसाद द्विवेदी	वर्ष - १९११	अंक - मार्च
२.	वही - गोविन्द राय परवार	वर्ष - १९१८ -१९	
३.	इन्दु - शिवदास गुप्त	वर्ष - १९१४	अंक - दिसम्बर
४.	इन्दु - गंगा शंकर मिश्र	वर्ष - १९१४	अंक - अगस्त
५.	सरस्वती - एक रामायणी	वर्ष - १९०८	अंक - फरवरी
६.	मर्यादा - परशुराम मिरोत्रा	वर्ष - १९१९	अंक - मई
७.	मर्यादा - सम्पूर्णानन्द	वर्ष - १९१९	अंक - अक्टूबर
८.	सरस्वती - जनार्दन भट्ट	वर्ष - १९१३	अंक - जनवरी
९.	सरस्वती - सन्तराम बी० ए०	वर्ष - १९१६	

प्रतिपादित किया गया है कि इतिहास की शिक्षा से ज्ञान वृद्धि के साथ-साथ आत्म सम्मान की भावना भी पुष्ट होती है। आचार्य द्विवेदी ने भारत के प्राचीन गौरव सम्बनधी अनेक निबन्ध लिखे हैं, भारत की प्राचीन सभ्यता से उनका विशेष मोह था। 'भारत के प्राचीन नरेशो की दिनचर्या',[१] 'भारतवर्ष की सम्यता की प्राचीनता',[२] 'प्राचीन भारत में लोक सत्तात्मक राज्य',[३] 'प्राचीन भारत में युवराजों की शिक्षा',[४] 'सोमनाथ के मन्दिर की प्राचीनता'[५] 'भारत की प्राचीन शिक्षा का आदर्श',[६] आदि निबन्धों में भारत के अतीत गौरव पर प्रकाश डालने प्रयत्न किया गया है।

भारत एक धर्म प्रधान देश है। यहाँ राजनीति धर्म का ही एक अंग मानी जाती है। अतएव द्विवेदी युग में राष्ट्रीय चेतना का दूसरा रूप मातृभूमि के दैवीकरण में देखने को मिलता है। ऐसा स्वामी विवेकानन्द की भावधारा के प्रभाव के कारण है। स्वामी जी देश को जागृत देवी के रूप में देखते थे। 'मातृभूमि की पूजा'[७] निबन्ध में लेखक ने मातृभूमि और भगवान को एक रूप में देखने का प्रयत्न किया है। भारत में वे ईश्वरीय राज्य स्थापित करना चाहते थे। जिसमें राजनीति की दीवाल धर्म की नीव पर खड़ी की गयी हो।[८] धर्म को हमारे यहाँ बहुत ही व्यापक अर्थ में लिया गया है। इस युग में कुछ ऐसे भी विद्वान हुए हैं जो धर्म और राजनीति की उन्नति तो चाहते थे परन्तु धर्म की अपेक्षा राजनीति को अधिक महत्व देते थे। परलोक सुधारने के लिए वर्तमान - इस लोक को पहले सुधार लेने को कहते थे। इस सम्बन्ध में सत्यदेव परिब्राजक लिखते है कि "राजनीति व्यावहारिक धर्म है, वह धर्म जो बातूनी नहीं है, जहाँ पूरी फिलासफी न चले, जिसमें पड़ने से खरे खोटे की पहचान हो जाती है। राजनीति इस लोक की बादशाहत की मशीनरी है। जिसको अपना परलोक, अपना भविष्य सुधारना हो, उसे अपना यह लोक - अपना वर्तमान पहले सुधार लेना चाहिए।"[९]

राष्ट्रीय चेतना से युक्त होकर जन्मभूमि की सुषमा के गान के साथ-साथ देश हित के लिए त्याग और सहानुभूति का पाठ पढ़ाया जाने लगा। आत्म निर्भरता को अत्यधिक महत्व दिया

१-६ विचार विमर्श में संगृहीत
७. मर्यादा - कन्हैया लाल पोद्दार वर्ष - १९११ अंक - जनवरी
८. सरस्वती - धर्म और राजनीति - हर्ष देव ओली वर्ष - १९२३ अंक - जनवरी
९. वही - धर्म और राजनीति - सत्यदेव परिब्राजक वर्ष - १९२३ अंक - मार्च

जाने लगा । आत्म गौरव, आत्म विश्वास उत्पन्न करने के लिए तथा जनता को उद्योगशील बनने का भी उपदेश दिया जाता रहा "हमारी सभ्यता हमको उपदेश कर रही है कि हम संसार के किसी भी देश जाति से कम नहीं हैं। यदि इस समय हमारी जाति जगत की दौड़ में पीछे है तो अब उद्योग करने से अवश्य वह साथ हो जायेगी । .... देशवासियों! अपने पूर्वजों के चरित्रों पर अभिमान कीजिए और राष्ट्रदेवी के सच्चे उपासक बन कर धर्मपूर्वक जननी जन्मभूमि के गौरवार्थ राष्ट्रीयता स्थापन करने का दृढ़ संकल्प कर लीजिए । परमेश्वर हमारी सहायता करेगा । ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो स्वयं अपनी सहाता करते है ।"[१]

स्वामी विवेकानन्द जनमानस के मध्य किसी भी स्तर पर विखण्डन एवं विभेद को स्वीकार नहीं करते थे । वे सम्पूर्ण भारतवासियों को एक सूत्र में आवद्ध देखना चाहते थे । उनकी इस राष्ट्रीय एकता की भावना से प्रेरणा प्राप्त कर भारत के राष्ट्रीय नेता भी सभी को संगठित करने का प्रयास कर रहे थे । द्विवेदी युग के निबन्धकारों ने इस भावना को अपने निबन्धों में पर्याप्त प्रश्रय दिया । इस सम्बन्ध में बाबादीन शुक्ल लिखते हैं - " बड़े-बड़े उपदेशक, महोपदेशक गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाते हैं और हमारी उन्नति विषय की वक्तृता सुनाते हैं, परन्तु हम अपनी उन्नति क्यो नहीं कर सकते ? हमारी उन्नति के मार्ग का अवरोधक कौन सा पदार्थ है ? विचारने पर, मनन करने पर हमें यही प्रतीत होता है कि चाहें जो कुछ हो, किन्तु जब तक परस्पर एकता का संगठन न होगा तब तक सुधार का होना दुस्तर ही नहीं किन्तु असम्भव है"[२]

वर्षो से दबे कुचले भारतीय जन मानस में विवेकानन्द और अन्य राष्ट्रीय नेताओं के कारण राष्ट्रीय भावना का विकास होने लगा था । विवेकानन्द कहते थे कि दास व्यक्ति की कोई आत्मा नहीं होती, विकास की पहली शर्त स्वाधीनता है । इन बातों का द्विवेदी युगीन साहित्य पर स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। अब भारतवासी शासक वर्ग के अनुचित कार्यो का विरोध मुखर स्वर में करने लगें । 'आधुनिक शासन प्रणाली' निबन्ध में इस भावना को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है - " यह नही भावना (राष्ट्रीय भावना) चाहे आवेग पूर्ण हो परन्तु यह वास्तविक और देश भक्ति सम्पन्न है। यदि उसके साथ सहानुभूति का वर्ताव किया गया तो यह उपयुक्त मार्ग पर लगाई

---

१. मर्यादा - स्वराज की माँग और भारतीय सभ्यता - बाला प्रसाद शर्मा - १३ संख्या -४ पृ० १७१
२. इन्दु- ऐक्यता - बाबादीन शुक्ल - किरण - ७ माघ सं० -१९६६ वि० पृ० १०८

जा सकती है। परन्तु इसकी उपेक्षा करना या इसे दबाना निर्बुद्धिता होगी । पुराने विचार बड़ी शीघ्रता से बदल रहे हैं और यह भारतवासियों का दोष नहीं है कि वे पितृ तुल्य शासन प्रणाली को अब स्वीकार नहीं करते ।''[१]

जनमानस में भारतीय मनीषियों (विवेकानन्द आदि) के ओजपूर्ण क्रान्तिकारी विचारों के कारण राष्ट्र प्रेम एवं राजनीतिक जागृति की भावना हिलोरें लेने लगी । अज्ञानता एवं मोह का आवरण उनके आलोक में धीरे-धीरे आँखो के सामने से हटता जा रहा था । उनमें देश-सेवा का भी बीज अंकुरित होने लगा । जनता के इस वैचारिक परिवर्तन से युग - द्रष्टा विवेकानन्द के विचार मूर्त रूप लेने लगी । राष्ट्रीय जागरण एवं चेतना के सम्बन्ध में वे कहते हैं -'' यदि मै अपने देशवासियों को जड़ता के कूप से निकालकर मनुष्य बना सका, यदि उन्हें कर्मयोग के आदर्श में अनुप्राणित कर जगा सका तो मै हँसते हुए हजारों बार नर्क में जाने को तैयार हूँ ।'' द्विवेदी युगीन निबन्धों में इसी भाव का प्रभाव इस उदाहरण के द्वारा देखा जा सकता है -'' भारतवर्ष की अज्ञानता धीरे-धीरे दूर होकर अब भारतवासी मोह निद्रा से जगने लगे हैं । उनकी आँखो के सामने अज्ञान,तम का पर्दा क्रमशः हटता जा रहा है, भविष्य के लिये ये लक्षण शुभ सूचक हैं । भारतवासियों में स्वार्थपरता का भाव भी कम होता जा रहा है । शिक्षित भारतीय अपने को किसी खास समाज का व्यक्ति न समझ कर सम्पूर्ण देश का आवश्यकीय अंग समझता है ।''[२]

धीरे-धीरे यह चेतना भारतीयों के हृदय में गहरी होती चली गयी। स्वराज्य प्राप्त की अत्यन्त उत्कट अभिलाषा उन्हें बड़े से बड़ा बलिदान करने में पीछे मुड़कर देखने अथवा सोचने विचारने का अवसर देना भी उपयुक्त नहीं समझती थी । जनता की बाहुओं में बल, हृदय में उत्साह, आत्मा में ओज प्रवाहित होने लगा था । इसे इस अवतरण के माध्यम से समझा जा सकता है - '' आज हम भी स्वराज्य के लिए उत्सुक हो रहे हैं । कुछ दिन पहले तो हमारा प्रयत्न मौखिक था पर अब हम इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हैं । कल जहाँ हम प्रस्तावों पर करतल ध्वनि करने में ही अपने कर्तव्यों की इति श्री समझते थे...... अब आत्मसमर्पण, त्याग, सेवा भाव ने हमारे तमोव्याप्त जीवन को ज्योतिर्मय बनाना आरम्भ कर दिया । अब हमारे मुख मण्डल पर तन्द्रा के स्थान पर

---

१. मर्यादा वर्ष - १९१७ अंक - फरवरी

२. वही - समाज सेवा - जगन्नाथ प्रसाद मिश्र - १३ संख्या - ६

जागृति के चिह्न दीख पड़ने लगे हैं । हमारी बाहुओं में बल, हमारे हृदयों में उत्साह, हमारी आत्माओं में ओज, आ चला है । पराधीनता के निविड़ तम को चीरकर स्वातन्त्र्य का अरूणोदय हो रहा है ।''[१]

विवेकानन्द राष्ट्र के उत्थान एवं राष्ट्रीय प्रगति के लिए कूप मडूकता का त्याग कर विश्व के अन्य देशों से सीख लेने के लिये प्रेरित करते रहे हैं । इस सम्बन्ध में वे जापान देश का उदाहरण देते हुए उनकी राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्र प्रेम का कई बार वर्णन करते हुए उससे भारतीयों को सीख लेने के लिए प्रेरित करते हैं । इसी सम्बन्ध में सरस्वती पत्र में भी 'जापान की आश्चर्य जनक उन्नति' लेख में वर्णन किया गया है कि , '' एशिया के सारे देशों में जापान ही एक ऐसा देश है जिसे यूरोप और अमेरिका वाले शक्तिशाली देश समझते हैं। केवल जापान ही के साथ पाश्चात्य देशों ने ऐसी सन्धियाँ की हैं जिसे दो बराबर की शक्तियाँ आपस में करती हैं ।''[२]

देश की अवनति और दुर्दशा के प्रति जो चिन्ता विवेकानन्द में थी , उसे इस युग के निबन्धकारों ने व्यापक रूप प्रदान करते हुए इसके उन्नति के उपायों पर भी प्रकाश डाला है । 'भारतवर्ष की दुर्गति' नामक निबन्ध में इस सम्बन्ध में कहा गया है - '' देश की दुर्दशा के कारण शोक करना व्यर्थ है, शोक न करके यदि देश के उद्धार का कोई उपाय दिखाई पड़ता हो तो उसके लिए प्रयत्न करना उचित है । भारतवर्ष दुर्गति और विपत्ति के दलदल में फँसा हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है । यूरोप की जातियाँ २००० वर्ष पूर्व असभ्य और जंगली कही जाती थी, वही आज महाशक्तियों की पद्वी से विभूषित हैं ....जिस अमेरिका को कोलम्बस ने असभ्य और अशिक्षित मनुष्यों से पूर्ण पाया था वही अमेरिका सभ्यता, स्वाधीनता, विज्ञान और उन्नति का केन्द्र बना हुआ है । इसके विरूद्ध भारत वर्ष अपनी उन्नति और स्वालम्बनशीलता को तिलांजलि देकर अवनति और अधःपतन के गर्त में गिरता चला जा रहा है''[३] इस तरह विश्व के अन्य विकसित देशों से तुलना करके अपनी कमियों को पहचान कर, उसे दूर कर प्रगति तथा उन्नति का मार्ग दर्शाते हुए राष्ट्रीय स्वाभिमान जागृत करने का सद्प्रयास द्विवेदी युग के निबन्धों में प्रमुखता से

१.	श्री शारदा - किधर - श्री सम्पूर्णानन्द	वर्ष - १९२२	अंक - जुलाई	पृ० १९८
२.	सरस्वती	वर्ष - १९१४	अंक - जनवरी	पृ० ५
३.	सरस्वती - नन्दकिशोर	वर्ष - १९१४	अंक - सितम्बर	पृ० ५०९

देश की वर्तमान राजनैतिक स्थिति, अंग्रेजों का अन्तहीन शोषण और दमन के विरोध में द्विवेदी युग में कई लेख एवं निबन्धों का प्रकाशन किया गया। 'बाल मुकुन्द गुप्त' ने 'शिवशम्भु के चिट्ठे' के माध्यम से इस विरोध को नयी ऊँचाई प्रदान की। इस पुस्तक में व्यंग के माध्यम से तत्कालीन राजनैतिक विकृति, अंग्रेजों के कुशासन, भारतीय जनता के दमन, उसकी दुरवस्था तथा उसके प्रतिरोध का जिस तरह खुलासा किया गया है, वह अभूतपूर्व है। ये चिट्ठी और खत भारत के शासक- लार्डकर्जन, लार्ड मिण्टो तथा भारत सविच मि० मार्ली के नाम लिखे गये हैं। 'लार्ड कर्जन' को सम्बोधित कर लिखे गये एक चिटठे में जनता की दयनीय दशा व शासक वर्ग के द्वारा उनकी उपेक्षा के सम्बन्ध में कहा गया है -''आप बारम्बार अपने दो अति तुमतराक से भरे कामों का वर्णन करते हैं। एक विक्टोरिया मिमोरियल हाल और दूसरा दिल्ली दरबार। पर जरा विचारिये तो यह दोनो काम 'शो' हुए या 'ड्यूटी' ? विक्टोरिया मिमोरियल हाल चन्द पेट भरे अमीरो के एक दो बार देख आने की चीज होगा, उससे दरिद्रों का कुछ दुःख घट जावेगा या भारतीय प्रजा की कुछ दशा उन्नत हो जावेगी, ऐसा तो आप भी न समझते होगे।''[१]

विवेकानन्द विदेशी आन्दोंलन और विदेशी शासन पद्धतियों से भारतीयों को सीख लेने के लिये प्रेरित करते रहते थे। जापान के अभ्युदय एवं राष्ट्रीयता की, उन्होंने अनेक बार प्रशंसा की। इसी क्रम में द्विवेदी युग के निबन्धों में भी विदेशी आन्दोंलनों का वर्णन अनेक स्थलों पर किया गया हैं जिसमें -'अंग्रेजी प्रजा का पराक्रम'[२] ब्रिटिश पार्लियामेण्ट का विकास और उसका संगठन'[३] 'फ्रास का राष्ट्र विप्लव',[४] 'टर्की की जागृति'[५] 'चीन की क्रान्ति क्यो हुयी',[६] 'फ्रास की राज्यक्रान्ति पर एक दृष्टि'[७] 'आदि प्रमुख हैं। विदेशी शासन पद्धतियों का वर्णन - 'नैपोलियन बोनापार्ट की शासन पद्धति'[८] 'फ्रांस की शासन पद्धति'[९] 'अमेरिका की शासन पद्धति'[१०] दक्षिणी अफ्रीका और

१.	शिव शम्भू के चिट्ठे - बाल मुकुन्द गुप्त		पृ० ११
२.	सरस्वती	वर्ष - १९०८	अंक - मार्च
३.	वही	वर्ष - १९१८	वही
४.	मर्यादा	वर्ष - १९१२	अंक - सितम्बर - अक्टूबर
५.	वही		
६.	मर्यादा	वर्ष - १९१३	अंक - अगस्त
७.	साहित्य	सं० - १९७९ वि०	अंक - मार्ग शीर्ष
८.	सरस्वती	वर्ष - १९२२	अंक - दिसम्बर
९.	वही	वर्ष - १९२४	अंक - सितम्बर
१०.	वही		अंक - मई

वहाँ की शासन प्रथा[१] इंग्लैण्ड की शासन पद्धति[२] तथा 'अमेरिका का प्रजातन्त्र '[३] आदि निबन्धों में किया गया है। इन निबन्धों में भारतीय जनता को विदेशी राजनीतिक पद्धतियों से परिचित कराकर, तत्कालीन भारत में प्रचलित राजनीतिक पद्धति की तुलना के द्वारा उन्हें राष्ट्रीय उन्नति के लिये प्रेरित करने का प्रयास किया गया है।

भारतीय राजनीति एवं राष्ट्रीय भावधारा विषयक निबन्धों में अंग्रेजों की नीति की कटु भर्त्सना तथा भारतीयों को स्वराज्य प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहन भी दिया गया है। 'स्वराज्य की योग्यता'[४] 'स्वराज्य और भारत'[५], 'स्वाधीनता और पराधीनता'[६], 'राष्ट्रों के कर्तव्य'[७] ' राष्ट्रीय आदर्श'[८] 'क्या हम स्वतन्त्र नहीं हो सकते '[९] 'हम स्वराज क्यों चाहते है'[१०] 'स्वदेशी आन्दोलन '[११] 'भारत वर्ष में क्रान्ति की लहर[१२] 'भारत का भविष्य और वर्तमान काल'[१३] आदि निबन्धों में तत्कालीन भारत की राजनीतिक व्यवस्था और स्वराज्य प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा का व्यापक वर्णन है।। भारतीय अब स्वराज्य प्राप्ति के लिये उतरोत्तर अग्रसर होते जा रहे थे।

इस तरह हम देखते है कि विवेकानन्द के राष्ट्र प्रेम, राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय चेतना एवं स्वाधीनता की भावना का द्विवेदी युग के निबन्धकारों पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। इस युग के निबधकार स्वामी विवेकानन्द के विचारों को अपनी लेखनी के द्वारा प्रसरित करते दीखते है। द्विवेदी युग के साहित्याकारों एवं पत्र पत्रिकाओं के द्वारा विवेकानन्द के राष्ट्रीय चिन्तन को सकारात्मक दिशा देने का श्लाघनीय प्रयास किया गया है।

१.	मर्यादा	वर्ष - १९१३	अंक - दिसम्बर
२.	इन्दु	वर्ष - १९१४	अंक - दिसम्बर
३.	वही	वर्ष - १९१४	वही
४.	मर्यादा	वर्ष - १९१६	अंक - नवम्बर
५.	वही - जगन्नाथ प्रसाद मिश्र	वर्ष - १९१७	अंक - मार्च
६.	वही - नन्द लाल भगत	वर्ष - १९१२	अंक - अप्रैल
७.	वही - जनार्दन भट्ट	वर्ष - १९१२	अंक - जुलाई
८.	वही - बदरी दत्त शर्मा	वर्ष - १९१६	अंक - अगस्त
९.	वही - के० डी० मालवीय	वर्ष - १९१४	अंक - मई
१०.	वही - गोकरण नाथ मिश्र	वर्ष - १९१४	अंक - अक्टूबर
११.	प्रभा - एक बैठा ठाला	वर्ष - १९२०	अंक - सितम्बर
१२.	वही - श्रीयुत् श० ष० स०	वर्ष - १९२०	अंक - अक्टूबर
१३.	लक्ष्मी - दुली चन्द सिंघई	वर्ष - १९१५	अंक - जून

(स) सामाजिक

विभिन्न धर्म, मत, जाति व विचार के लोग, जब परस्पर सहयोग का भाव रखते हुए एक दूसरे की उन्नति एवं विकास में तत्पर होते हैं तो इससे समाज का निर्माण होता है । छोटे-बड़े,अमीर-गरीब सभी इस समाज के महत्वपूर्ण अंग होते हैं । इनकी उपेक्षा करके कोई भी समाज न तो उन्नति कर सकता है और न ही सभ्य कहा जा सकता है । समाज के दीन - दुःखी एवं दबे-कुचले वर्ग के प्रति रामकृष्ण देव के मन मे असीम प्रेम था । प्रत्येक जीव में ईश्वरत्व का भाव रखते हुए वे कहते थे कि - जीव ही शिव हैं, दीन- दुःखी की सेवा ही ईश्वर की सेवा है । इसी भाव से अनुप्राणित होकर विवेकानन्द ने भी सभी दीन-दुखियों के उत्थान का जीवन पर्यन्त प्रयास किया । मानव मात्र के प्रति उनके मन में अतिशय प्रेम एवं समर्पण का भाव था । देश में अकाल और रोग आदि फैलेन पर वे अपनी सम्पूर्ण शक्ति इसके निवारण में लगा देने थे । वे रोटी को धर्म से ऊपर मानते थे । उनके अनुसार भारत का प्रधान अभाव धर्म नहीं है । अपितु यहाँ रोटी का अभाव हैं । कोटि-कोटि नर-नारी की सेवा करने एवं क्षुधार्थ को रोटी देने से बड़ा कोई धर्म नहीं है । स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना भी जन कल्याण को केन्द्र में रखकर किया था । इस मिशन का ध्येय वाक्य -'आत्मनोमोक्षार्थम्- जगद्धितायच' था; जिसका आशय अपनी मुक्ति के साथ जगत का कल्याण करना भी है ।

दीन – दुखी

द्विवेदी युग के निबन्धों में भी अब ऐसे पात्रों को स्थान दिया गया जो शताब्दियों से उपेक्षित थे । अब साहित्य में मध्यवर्ग व निम्न वर्ग के किसान, मजदूर एवं दलितों का चित्रण होने लगा । इस युग में अब ईश्वर को किसी मन्दिर या अवतार के रूप में न देखकर विराट रूप में उसका दर्शन किया जाने लगा । इसी सम्बनध में ' प्रभा' पत्र में लिखा गया है - ''अपनी माता के प्रति प्रेम बनाये रखना हो तो उसके पुत्रों का भला करने में लग जाओ । अपने शहर के हर एक भाग में युवक मंडल स्थापित करो । ज्ञान के प्रसार करने को, अनाथ की सहायता करने को , गरीबों की सेवा करने को, श्रम सेवकों को उत्तेजित कर दो ।''[१]

---

१. प्रभा वर्ष - १९१४ अंक - जनवरी पृ० ५२३

किसान – मजदूर

किसान व मजदूरों के उत्थान के प्रति भी विवेकानन्द के हृदय में उच्च भाव थे। इन्हें वे देश का मेरुदण्ड कहते थे। शान्त होकर समर्पण भाव से अहर्निश जो अपना कार्य करते रहते हैं और बदले में भरपेट भोजन भी नही पाते, इसके लिए वे देशवासियों को धिक्कारते भी हैं। स्वामी जी का यह भाव द्विवेदी युग के निबन्धों में व्यापक रूप से देखा जा सकता है। सरदार पूर्ण सिंह अपने निबन्ध ' मजदूरी और प्रेम, में लिखते हैं –'' हल चलाने वाले और भेड़ चराने वाले प्रायः ' स्वभाव से ही साधु होते हैं। हल चलाने वाले अपने शरीर का हवन किया करते हैं। खेत उनकी हवनशाला है।''[१]

देश में सबसे अधिक संख्या में रहने वाले किसानों के हित से ही देश का हित किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में महावीर प्रसाद द्विवेदी ''देश की बात' शीर्षक से लिखते हैं –'' देश हित और देश प्रेम, स्वदेशी ओर स्वदेश- प्रेम के गीत तो बहुत गाये जाते हैं, पुस्तकें लिखी जाती हैं, पर यह देश है क्या और किस की हित साधने की बात कही जाती है। यहाँ के गाँव और कस्बे, पहाड़ और नदियाँ, मन्दिर और मस्जिद तो देश नही है। देश का मतलब है, देश मे रहने वाले आदमी। देश में किस तरह के आदमी सबसे अधिक रहते हैं .... यहाँ ७० फीसदी किसान हैं। इसलिए देशभाक्ति का मतलब है, किसानों की सेवा''[२] खेद की बात है कि - देश में सर्वाधिक संख्या किसानों की होने के बाद भी यहाँ उनका हित सुरक्षित नहीं है, जो लगातार कठोर परिश्रम करे दूसरों का पेट तो भरता है परन्तु स्वयं खाली पेट ही होता है। इस सम्बन्ध में सरदार पूर्ण सिंह लिखते हैं - '' विद्या यह (किसान) नहीं पढ़ा, जप और तप यह नही करता, सन्ध्या, बन्दनादि इसे नहीं आते, ज्ञान-ध्यान का इसे पता नहीं, मन्दिर, मस्जिद गिरजे से इसे कोई सरोकार नहीं, कवेल शाक पात खाकर वह अपनी भूख निवारण कर लेता है।''[३]

किसानों की दयनीय दशा के सम्बन्ध में आचार्य महाबीर प्रसाद द्विवेदी कृषि प्रधान

---

१. सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबन्ध - सं० प्रभात शास्त्री पृ० १३३
२. सरस्वती वर्ष - १९१४ अंक - जुलाई
३. सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबन्ध - सं० प्रभात शास्त्री पृ० १३३

देश एवं उर्वरा भूमि होने के बाद भी उनकी विपन्नता का वर्णन करते हुये लिखते हैं -" भारत वर्ष कृषि प्रधान देश है । यहाँ की भूमि में जितनी उर्वरा शक्ति है उतनी शक्ति बहुत ही कम देशों की भूमि में होगी । कृषि कार्य के योग्य जितनी भूमि यहाँ है उतनी शायद ही किसी और देश में हो, फिर भी हमारे देश के किसानों को भरपेट भोजन नहीं मिलता ।"[१]

मजदूर किसान एवं निम्न वर्ग के उत्थान के बिना देश के उत्थान की बात सोचना निरर्थक हैं इस बात को ' हमारे गरीब किसान और मजदूर' लेख में जनार्दन भट्ट सशक्त रूप से रखते हैं -" जब वे अपने गरीब भाइयों को उनकी सच्ची हालत बतलावेंगे और उनके दारिद्रय और दुःख का सच्चा कारण उन्हें सुझावेंगे, जब उन्हें उनके अधिकारों का सच्चा ज्ञान करावेंगे और उन्हें बतलावेंगे कि जो धन वे पैदा करते हैं कहाँ जाता है और उन्हें क्यों नहीं मिलता, तभी देश का सच्चा सुधार होगा । क्यों कि सच्चे और असली भारतवासी शहरों में, महलों और बंगलों में नहीं बसते .... गाँव और झोपड़ों में रहते हैं । जब तक उनका सुधार नहीं होता तब तक देश के सुधार की बात करना बहुत ही कम लाभदायक है ।"[२]

अन्ध विश्वास

स्वामी विवेकानन्द अन्ध विश्वासों कुरीतियों एवं रूढ़ियों को समाज के लिए अभिशाप समझते थे । वर्षों पुरानी औचित्यहीन मान्यतायें जिसका कोई व्यावहारिक अर्थ नहीं है, उसको बेवजह परम्परा के नाम पर ढ़ोते रहने का वे विरोध करते थे । तदयुगीन समाज में अनेक कुरीतियाँ एवं भ्रान्तियाँ व्याप्त थी । विवेकानन्द ने अपने वाँणी एवं कर्म दोनों के द्वारा इन कुरीतियों को दूर करने का सार्थक प्रयास किया । उन दिनों समुद्र यात्रा को पाप समझा जाता था और समुद्र यात्रा करने वाले को जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था । स्वामी जी ने समुद्र यात्रा करके इस पुरानी सड़ी गली मान्यता को तोड़ डाला । उनके इस कार्य पर देश के परम्परावादियों ने खूब हो हल्ला किया । जिस पर उन्हें लताड़ते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा -" इन लोगों को मेरे द्वारा विदेशों में भारतीय धर्म और वेदान्त के प्रचार का कार्य अच्छा नहीं लगा । इसीलिए तो ये मेरी समुद्र यात्रा का विरोध करते

---

१. लेखांजलि - अमेरिका में कृषि कार्य पृ० ११५
२. सरस्वती वर्ष - १९१४ अंक - जून पृ० ३४०

हैं ।'' इसी सम्बन्ध में द्विवेदी युग के सशक्त रचनाकार चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' - अपने निबन्ध 'कछुआ धर्म' में भारतीयों की रूढ़िवादी मानसिकता एवं अंधी परम्पराओं के निर्वहन करने के कार्यों का विरोध करते हुए लिखते हैं - '' बहुत वर्ष पीछे की बात हैं । समुद्र पार के देशों में और धर्म पक्के हो चले । वे लूटते मारते तो सही, बेधर्म भी कर देते । बस, समुद्र यात्रा बन्द । कहाँ तो राम के बनाए सेतु का दर्शन करके ब्रह्म हत्या मिटती थी और कहाँ नाव में जाने वाले द्विज का प्रायश्चित कराकर भी संग्रह बन्द । वही कछुआ धर्म! ढाल के अन्दर बैठे रहो ।''[१] भारतीय सामाजिक परम्पराओं में इतने रूढ़िवादी और अन्ध विश्वासी थे कि किसी के छूने या सम्पर्क मात्र में आने के कारण गाँव के गाँव का धर्म नष्ट हो जाता था । पाश्चात्य यूरोपियों को चाण्डाल सदृश देखा जाता था । इसी सम्बन्ध में एक घटना के माध्यम से इसका वर्णन करने हुए गुलेरी जी लिखते हैं -'' कुँए पर सैकड़ों नर-नारी नहा रहे थे और पानी भर रहे थे । एक पादरी ने कह दिया- मैने इसमें तुम्हारा अभक्ष डाल दिया है । फिर क्या था, कछुए को ढाल बल उलट दिया गया । अब वह चल नहीं सकता । किसी ने यह नहीं सोचा कि, अज्ञात पाप, 'पाप ' नहीं होता । किसी ने यह नहीं सोचा कि कुल्ले कर ले, घड़े फोड़ दें या कै ही कर डालें । गाँव के गाँव ईसाई हो गये और दूर-दूर के गाँवों के कछुओं को यह खबर लगी तो बम्बई जाने में भी प्रायश्चित कर दिया गया ।''[२]

समाज में व्याप्त कुप्रथाओं को उससे लड़कर और उसका विरोध करके दूर किया जा सकता है, न कि उससे मुंह मोड़ कर। सामाजिक आडम्बरों एवं जटिलताओं के प्रति निरपेक्ष भाव रखने वालों को, कछुआ का भाई शुतुरमुर्ग की संज्ञा देते हुए, 'कछुआ धर्म 'में लिखा गया है ,'' यह कछुआ धर्म का भाई शुतुरमुर्ग धर्म हैं । कहते हैं कि शुतुरमुर्ग का पीछा कीजिए तो वह बालू में सिर छिपा लेता है । समझता है कि मेरी आँखों से पीछा करने वाला नहीं दीखता तो उसे भी मैं नहीं दीखता । लम्बा चौड़ा शरीर चाहे बाहर रहे, आँखे और सिर तो छिपा दिया । कछुए ने हाँथ, पाँव, सिर भीतर डाल लिया''[३] इस कथन के द्वारा यह बतलाने का प्रयास किया गया है कि सामाजिक दायित्वों से मुँख मोड़कर स्व तक ही केन्द्रित होकर कछुआ और शुतुरमुर्ग बनने से काम नहीं चलेगा । अपने खोल से बाहर आकर ही समाज का नव निर्माण किया जा सकताहै । यहाँ विवेकानन्द का समाजिक प्रभाव समझा जा सकता है।

---

१. प्रतिभा वर्ष-१९१९ अंक-दिसम्बर
२. वही ३. वही

धर्म की गलत व्याख्या कर समाज को संकीर्ण सन्देश पहुँचाने वाले एवं क्षुद्र विचारों का पोषण करने वाले धर्म ग्रन्थों, स्मृतियों एवं मान्यताओं के विरोध से ही समाज का उत्थान एवं उत्कर्ष किया जा सकता है। जो पुरानी मान्यतायें समय के साथ अप्रासंगिक हो गयी हैं उसे इस परिवर्तनशील युग में छोड़ना ही श्रेयस्कर है। जिसके अध्ययन एवं पालन से संकीर्णता बढ़े उसे त्याग देना ही उचित है। इस सम्बन्ध में गुलेरी जी लिखते हैं-" मनु स्मृति में कहा गया है, जहाँ गुरू की निन्दा या असत् कथा हो रही हो वहाँ पर भले आदमी को चाहिए कि कान बन्द कर ले या कहीं उठ कर चला जाये। यह हिन्दुओं के या हिन्दस्तानी सभ्यता के कछुआ धर्म का आदर्श है। ध्यान रहे कि मनु महराज ने सुनने योग गुरू की कलंक कथा के सुनने के पाप से बचने के दो ही उपाय बताये हैं, या तो कान दबा कर बैइ जाओं, या दुम दबा कर चल दो। तीसरा उपाय जो और देशों के सौ में नब्बे आदमियों को ऐसे अवसर पर पहले सूझेगा, वह मनु ने नहीं बताया कि जूता लेकर या मुक्का तानकर सामने खड़े हो जाओं और निन्दा करने वाले का जबड़ा तोड़ दो या मुँह पिचका दो कि फिर ऐसी हरकत न करे। यह हमारी सभ्यता के भाव के विरुद्ध है। कछुआ ढाल में घुस जाता है। आगे बढ़ कर मार नहीं करता।"[१]

मानववाद

अपने क्षुद्र जीवन का परित्याग कर जो समाज मानवता के लिए जीवन जीने का साहस रखता है, उनके लिए संसार में कुछ भी अगम्य नही है। इसी बात को सरदार पूर्ण सिंह इस रूप में व्यक्त करते हैं,-" सत्व गुण के समुद्र में जिसका अन्तःकरण निमग्न हो गया वही महात्मा साधु और वीर हैं। जो लोग अपने क्षुद्र जीवन का परित्याग कर ऐसा जीवन पाते हैं कि उनके लिए संसार के कुल अगम्य मार्ग साफ हो जाते हैं।"[२]

विश्वबन्धु स्वामी विवेकानन्द मानव मात्र के प्रति परस्पर प्रेम,सेवा, सहयोग, और उनके सुख में ही अपना सुख समझने की प्रेरणा देते थे। यह इसी बात को अध्यापक

---

१. प्रतिभा वर्ष-१९१९ अंक-दिसम्बर

२. सच्ची वीरता - सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबन्ध - सं० - प्रभात शास्त्री पृ० ५२

पूर्ण सिंह इस तरह व्यक्त करते हैं-''परस्पर निष्कपट सेवा ही से मनुष्य, जाति का कल्याण हो सकता है। धन एकत्र करना तो मनुष्य, जाति के आनन्द मंगल का एक साधारण सा तुच्छ उपाय है धन की पूजा करना नास्तिकता है, ईश्वर को भूल जाना है, अपने भाई - बहनों तथ मानसिक सुख और कल्याण के देने वालों को मार कर अपने सुख के लिए शारीरिक राज्य की इच्छा करना है, जिस डाल पर बैठे हो उसी डाल को स्वयं ही कुल्हाड़ी से काटना है ....सारी मनुष्य जाति का सुख ही जगत के मंगल का मूल साधन है।''[१]

जीवन में दिव्यतम सुख तथा अक्षय आनन्द की प्राप्ति के लिए सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक सेवा - भाव, समर्पण एवं प्रेम की भावना को नई ऊँचाई देते हैं -'' अपनी जिन्दगी किसी और के हवाले करो , ताकि जिन्दगी को बचाने की कोशिशों में कुछ भी समय जाया न हो......... नफरत और द्वेष दृष्टि छोड़ो, रोना छूट जायेगा। प्रेम और आनन्द से काम लो, शन्ति की वर्षा होने लगेगी।''[२]

आज हम स्वार्थ बुद्धि से घिरकर अपनी मनुष्यता खोकर पशु - तुल्य हो गये हैं, इस सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द सचेत करते हैं- '' पहले मनुष्य बनों, फिर देखोगे कि पूरा जगत तुम्हारा अनुसरण कर रहा है।'' इसी बात को पवित्रता निबन्ध के द्वारा व्यक्त करते हुए पूर्ण सिंह लिखते हैं - '' इस वास्ते बनो पहले साधारण मनुष्य, जीते-जागते मनुष्य, हँसते - खेलते मनुष्य, नहाये- धोये मनुष्य, प्रकृति के मनुष्य, जानने वाले मनुष्य, पवित्र हृदय, पवित्र बुद्धि वाले मनुष्य प्रेम भरे, रस भरे, दिल भरे, जान भरे, प्राण भरे मनुष्य। हल चलाने वाले, पसीना बहाने वाले, जान गँवाने वाले, सच्चे कपट रहित, दरिद्रता रहित, प्रेम से भीगे हुए, अग्नि से सूखे हुए मनुष्य। आओ सब परिवार मिलकर इसके लिए कुछ यत्न करें।''[३]

समन्वय:-

विवेकानन्द को यह पूर्णतया विदित था कि हिन्दू समाज का अपना व्यक्तित्व है।

---

१. मजदूरी और प्रेम - सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबन्ध पृ० १४९
२. सच्ची वीरता - वही पृ० ६६
३. पवित्रता - वही पृ० ११६

उसे बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि वह ' ग्रहण और त्याग' की वृत्ति अपनाये। वीनता के साथ जो नयी और उपयुक्त चीजें हो उसे हम अपना लें और जो पुरानी चीजें अप्रासंगिक हो गयी है उसका परित्याग कर दें इस भाव से द्विवेदी युग के साहित्यकार अभिप्रेरित हुए और वे समझने लगे कि प्रत्येक मनुष्य के व्यक्तित्व की भाँति प्रत्येक समाज का अपना व्यक्तित्व होता है। समाज का कल्याण चाहने वालों को उसके व्यक्तित्व को सदैवे ध्यान में रखना पड़ता है।

जो समाज,अपने व्यक्तित्व की अवहेलना न कर अन्य समाज की विशेषताओं को ग्रहण करता है, वही अपने को सुदृढ़ एवं अधिक दिनों तक जीवित रहने का दावा कर सकता है।' क्या हम जीवित रहेंगे' निबन्ध में इसी भावना को व्यक्त किया गया है - '' जब तक हम समय के अनुकूल परिवर्तन नही करते और अपने सठियाये हुए अंगों में नवीनता का प्राँण नहीं दौड़ाते, तब तक हम जीवन युद्ध में अपनी सत्ता स्थिर नहीं रख सकते। पुरानी जंजीरों को तोड़ना,नयी रोशनी को अपनी तौर से लेकर सवर्था अपना बल देना, ये सब योग्य बनने के साधन हैं जब तक हम किसी पुरानी चाल को केवल इस लिए छोड़ना पसन्द नहीं करते कि वह हमारी पुरानी चाल है, तब तक हमारे जीवन की स्थिरता का कोई लक्षण नहीं है। नयी विद्या, नई सभ्यता इन सबाको अपना बनाकर ले लेने में ही हमारी जाति का भला है।''[१]

इस तरह उस काल के समाज विषयक निबन्धों में हिन्दू समाज के परम्परागत संस्कारों की रक्षा करते हुए विदेशी समाज की विशेषताओं को अपनाने को कहा गया है। क्यों कि विवेकानन्द प्राच्य एवं पाश्चात्य के समन्वय एवं गुणों के परस्पर आदान - प्रदान से ही नये एवं शक्तिशाली विश्व का स्वप्न देखते हैं। वे भारतवासियों को पाश्चात्य जगत से प्रगति एवं उन्नति का मूल एवं पाश्चात्य जगत को भारतवर्ष से धर्म और दर्शन ग्रहण करने के लिए प्रेरित करते हैं। द्विवेदी युग के निबन्ध - समाज सुधार[२] 'समाज सेवा[३] ' हमारी सामाजिक अपूर्णता'[४] आदि में इसी भावना को चित्रित किया गया है।

समाज के व्यक्तित्व में विकास लाने के लिए वातावरण के परिवर्तन के अनुसार

१.	प्रभा	संवत १९७० वि०	अंक - वैशाख शुक्ल
२.	श्री कमल	संवत १९७३ वि०	
३.	श्री शारदा	वर्ष १९२२	अंक - अगस्त
४.	लक्ष्मी	वर्ष १९१९	अंक - मई

समाज के आदर्शों में भी हेर - फेर की आवश्यकता होती है । हिन्दू समाज का प्राचीन आदर्श भौतिकता के युग में अधिक मान्य नहीं समझा गया । अतएव उसमें परिवर्तन कर लेने की ओर भी साहित्यकारों का ध्यान गया है । इस सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि अगले पचास वर्षों के लिये भारत को धर्म की आवश्यकता नहीं है , अब इन्हें अपनी भौतिक उन्नति की ओर ध्यान देना होगा । यह कथन उनके सामाजिक परिवर्तन के व्यापक दृष्टिकोण की ओर इंगित करता है ।'[1] प्राचीन और अर्वाचीन भारत''"निबन्ध में इसी भाव को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है इसी सम्बन्ध में हरिहर प्रसाद बी०ए० अपने निबन्ध में लिखते हैं-'' भारत वर्ष अपने को एक बन्द पानी का तालाब बनाकर और उसमें प्राचीन समय के कीड़े - मकोड़े पैदाकर के बीसवीं शताब्दी में उन्नति नहीं कर सकता, उसे समय के साथ चलना होगा ।हमारी जाति में जीवन के चिन्ह है जिन्हें काम में लाने की आवश्यकता है, और आवश्यकता है इस बात की कि पश्चिमी सभ्यता का अनुसरण हो । जो लोग भय से काम कर रहे हैं उनसे मैं कहता हूँ कि वह समय दूर नही जब कि उनकी अभिलाषायें पूरी हों, परन्तु शर्त यह है कि निराशा की वेदी पर वे अपने को बलिदान न होने दें ।''[2]

शिक्षा

शिक्षा के बिना किसी भी राष्ट्र एवं समाज की उन्नति की कल्पना नहीं की जा सकती । निरक्षरता और अज्ञानता प्रत्येक व्यक्ति के लिए अभिशाप है । भारत में शिक्षा की प्रगति एवं उन्नति के लिए विवेकानन्द ने कई महत्वपूर्ण कार्य किये । इसके लिए वे यहाँ नये विद्यालयों की स्थापना के साथ नये पत्र पत्रिकाओं के प्रचलन पर जोर देते हैं । भारतीय शिक्षा प्रणाली में व्याप्त न्यूनताओं की ओर संकेत करते हुए वे कहते हैं कि लादी गयी एवं थोपी गयी शिक्षा से विभागों में कार्य करने के लिए बाबू तो बनाया जा सकता है किन्तु व्यक्ति का विकास नहीं किया जा सकता । विवेकानन्द शिक्षा को व्यक्ति के व्यक्तित्व के सर्वाङ्गीण विकास से जोड़ कर देखते हैं । उन्हीं के शब्दों में - ' व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास ही शिक्षा है ।' उनका मानना है कि देश उसी अनुपात में उन्नत हुआ करता है जिस अनुपात में वहाँ के जनसमूह में शिक्षा तथा बुद्धि का प्रसार होता है ।

---

१. लक्ष्मी वर्ष १९१९ अंक - जनवरी

२. मर्यादा वर्ष १९१९ अंक - फरवरी

देश के निरक्षर एवं अज्ञानी लोगों को शिक्षित करना देश के पढ़े - लिखे एवं बुद्धिमान लोगों का प्रथम कर्तव्य बताते हुए वे कहते हैं- जब तक करोड़ों मनुष्य मूर्खता व अज्ञानता में जीवन बिता रहे हं, तब तक मैं उस प्रत्येक मनुष्य को देशद्रोही मानता हूँ, जो उनके व्यय से शिक्षित हुआ है और उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देता।

द्विवेदीयुगीन साहित्यकारों को अपने समाज में शिक्षा का अभाव बहुत ही अखरा। अतएव शिक्षा के प्रचार की भावना से युक्त होकर उन्होंने ऐसे सैकड़ों निबन्ध लिखे जिनमें जनता को शिक्षित बनाने के लिये कहा गया था।क्यों कि शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य अपने स्वप्न को पहचानता है और अन्धानुकरण न कर विवेचन युक्त मार्ग का अनुसरण करता है। किसी भी समाज की उन्नति, विचारशील प्रवृत्ति के अपनाने से ही होती है और यह शिक्षा के प्रचार द्वारा ही सम्भव है। शिक्षा के अभाव में जनसाधरण में समयानुकूल बनने वाली शक्ति की न्यूनता होती है। जिससे वह विनाश की ओर अग्रसर करने वाली रूढ़ियों को ही अपनाये रहता है। इस प्रकार वही समाज मानसिक दासता के रोग से पीड़ित होने लगता है।

द्विवेदी युग के रचनाकार प्रेमचन्द्र विवेकानन्द की शिक्षा सम्बन्धी अवधारणा को अपने निबन्ध ' स्वामी विवेकानन्द' में व्यक्त करते हैं -"वर्तमान शिक्षा प्रणाली के आप कट्टर विरोधी थे। आपका (विवेकानन्द) मत था कि शिक्षा उस जानकारी का नाम नहीं है जो हमारे दिमाग में ठूँस दी जाती है। किन्तु शिक्षा का प्रधान उद्देश्य मनुष्य के चारित्र का उत्कर्ष, आचरण का सुधार और पुरुषार्थ तथा मनोबल का विकास है ....अतः हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि हमारी सब प्रकार की लौकिक शिक्षा का प्रबन्ध हमारे हाथ में हो और उसका संचालन यथा सम्भव हमारी प्राचीन रीति-नीति और प्राचीन प्रणाली पर किया जाय।"[१] स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा के प्रसार की भावना को व्यक्त करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं-" स्वामीजी की शिक्षा योजना बहुत विस्तृत है। एक हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित करने का भी आपका विचार था पर अनेक बाधाओं के कारण आप उसे कार्यान्वित न कर सकें। हाँ, उसका सूत्रपाल अवश्य कर गये।"[२] इस प्रकार हम देखते हैं कि विवेकानन्द के शिक्षा सम्बन्धी विचारों का द्विवेदी युग के निबन्धकारों ने परोक्ष के साथ-साथ प्रत्यक्ष और सीधे रूप में वर्णन किया है।

---

१. कलम तलवार और त्याग - प्रेम चन्द पृ० १३२

२. वही पृ० १३३

विवेकानन्द के प्राचीन भारतीय शिक्षा सम्बन्धी अवधारणा का पाश्चात्य जगत (लन्दन) में हुई एक घटना के माध्यम से प्रेमचन्द वर्णन करते हुए लिखते हैं-" पाश्चात्य शिक्षा विदों की प्रार्थना पर स्वामी जी ने भारत की शिक्षा प्रणाली पर पाण्डित्यपूर्ण भाषण किया। उन विद्या व्यसनियों को कितना आश्चर्य हुआ जब स्वामी जी के मुँह से सुना कि भारत में विद्यादान सब दानों से श्रेण्ठ माना गया है और भारतीय गुरू अपने विद्यार्थियों से कुछ लेता नहीं, बल्कि अपने घर पर रखता है और उनको विद्यादान के साथ- साथ भोजन वस्त्र भी देता है।"[१]

शिक्षा के महत्व एवं उसकी सार्थकता के सम्बन्ध में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अनेक लेख लिखे । वे निरक्षरता को दुःख का कारण मानते हुए कहते हैं,-" अज्ञानता और निरक्षरता ही अनेक दुःखों की जननी है ।"[२] 'जापान और भारत में शिक्षा का तारतम्य' निबन्ध में भारत और जापान की शिक्षा प्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए , इस सम्बन्ध में जापान से सीख लेने की प्रेरणा देते हैं । इस लेख में शिक्षा की महत्ता सि करते हुए वे लिखते हैं" शिक्षा से ही मनुष्य का जन्म सार्थक होता है । उसी से मनुष्य अपनी सब प्रकार की उन्नति कर सकता है। उसकी दुरवस्था देख किस समझदार भारतवासी को परमावधि का परिताप न होगा ।"[३]

'सरस्वती के अंकों में द्विवेदी जी ने निरक्षरता पर अनेक लेख लिखा । उनका ध्यान विशेष रूप से गाँवों में फैली हुई निरक्षतरा की ओर जाता था । इस सम्बन्ध में भारत में शिक्षा की दशा' शीर्षक से अपना विचार कुछ इस तरह से व्यक्त किया -" गाँवें में मदरसे बहुत कम हैं । जितने हैं उनमें बहुत कम लड़के पढ़ने जाते हैं । सरकार हर आदमी के पीछे जनसंख्या को देखते हुए आठ आने भी नही खर्च करती । यह स्थिति बहुत ही शोकजनक है । जाहिए था कि प्रारम्भिक शिक्षा मुक्त और अनिवार्य कर दी जाती पर वह तो दूर रहा, फीस देकर भी अपने बच्चों को शिक्षा देना या न देना माता-पिता की इच्छा पर छोड़कर भी शिक्षा प्राप्ति का यहाँ यथेष्ठ सुभीता नहीं।"[४] आगे द्विवेदी जी देश की वर्तमान शिक्षा- दशा पर क्षोभ व्यक्त करते हुए लिखते हैं -" इस देश में निरक्षरता का अधिपत्य है । हिसाब लगाया गया है कि किसी गाँव में

---

१. कलम तलवार और त्याग - प्रेम चन्द पृ० ११८
२. लेखांजलि - महावीर प्रसाद द्विवेदी पृ० ३१
३. वही पृ० ३२
४. सरस्वती वर्ष १९१५ अंक - मई पृ० १७६

किसी गाँव में मदरसा है तो तीन गाँव में नही, यदि १०० में पन्द्रह लड़के मदरसे जाते हैं तो ८५ लड़के गाय- भैंस चराते या गुल्ली डंडा खेलते है।"[१]

आचार्य द्विवेदी यह अच्छी तरह जानते थे कि शिक्षा में सुधार ओर उसका प्रचार करने से ही भारत को विकास के रास्ते पर लाया जा सकता है। अज्ञानता और निरक्षरता को दूर किये बिना उन्नति का कोई दूसरा मार्ग नहीं है। इस बात को वे 'विचार- विमर्श' में इस तरह व्यक्त करते हैं-" देहात में निरक्षरता का समुद्र उमड़ रहा है कोसों मदरसे का नाम नहीं। देहातियों को यह भी नहीं मालूम कि मदरसा खोलने के लिए किसको लिखना चाहिए.......... गन्दगी का यह हाल है कि कूड़े के ढेर मकानों के चबूतरे से लगे हुए हैं। .... याद रहे इन्हीं लोगों को सुधारने और इन्हीं में शिक्षा प्रचार करने से भारत की उन्नति होगी। यह बात ध्रुव सत्यहै।"[२]

द्विवेदी युग के लगभग सभी निबन्धकारों ने शिक्षा प्रचार पर बल दिया है। शिक्षा का गुणगान करने में तो वे थकते ही नही थे -" विद्या के प्रकाश से वह पदार्थ दीख पड़ते हैं जो कभी आँखो से दिखाई नहीं देते, विद्या के प्रभाव से घर बैठे देश - देशान्तर के समाचार विदित होते हैं, विद्या के होने से रूप की शोभा बढ़ जाती है। चित्त अत्यन्त प्रसन्न रहता है। इस गुप्त धन से बड़ा ही सुख मिलता है, इससे जगत मात्र वशीभूत होता है।"[३]

शिक्षा के विकास को मात्र सरकारी दायित्व न मानते हुए और केवल इसकी आलोचना ही करके अपने कर्तव्यों की इति श्री न समझ कर उसके विकास एवं प्रसार के लिये द्विवेदी युग के निबन्धकार अपनी लेखनी के माध्यम से नये रास्ते भी दिखलाते हैं -"गवर्नमेन्ट पर निर्भर रह कर्तव्य परायणता को तिलांजालि दे बैठना उचित नही है, कुछ हाथ पैर बढाइये। अपने मुहल्लों, अपने गाँवों और अपने शहरों के लड़कों की शिक्षा का प्रबन्ध करिए। यदि आप को दिन मे समय नहीं मिलता तो आप 'नाइट' स्कूल खोलिये, इष्ट मित्रों को सहायता से शिक्षकों का कार्य अपने ऊपर ओढ़ लीजिये। कुछ कार्य कर दिखाइये, तब सहायक आप से आप पैदा ही जायेगें।"[४] यहाँ यह द्रष्टव्य है कि विवेकानन्द ने शिक्षा के उत्थान के सम्बन्ध में खेतड़ी नरेश को सम्बोधित

१.	सरस्वती	वर्ष १९१५	अंक - मई	पृ० १७६
२.	विचार विमर्श - माननीय मेम्बरों की बात			पृ० ४०९
३.	इन्दु	संवत १९६६ वि०	भद्रपद शुक्ल २	पृ० २५
४.	मर्यादा	वर्ष १९१४	अंक - मार्च	

करते हुए कहा था - ''यदि गरीब शिक्षा तक नहीं पहुँच पा रहे हैं तो शिक्षा को ही उन तक पहुँचना होगा ।'' लेखक के कथन से विवेकानन्द के इसी बात की पुष्टि होती है ।

इस तरह से हम देखते हैं कि शिक्षा के गुण-दोष, इसकी प्रगति, उत्थान एवं सार्थकता पर द्विवेदी युग में अनेक निबन्धों की रचना हुई, जिनमें इनकी न्यूनताओं की ओर संकेत किया गया है और सुधार के मार्ग भी दर्शाये गये हैं । 'भारतीय शिक्षा प्रणाली में कुछ दोष,[१] आधुनिक शिक्षा पद्धति ;[२] 'शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य '[३] ' वर्तमान शिक्षा का आदर्श-[४] ' आधुनिक शिक्षा और देश का भविष्य-[५] ' हमारी शिक्षा-[६] आदि निबन्धों की रचना से यह सिद्ध होता है कि द्विवेदी युग के निबन्धकार शिक्षा के महत्व और इसकी सार्थकता तथा इसके सामाजिक प्रदेय के सम्बन्ध में पूर्णतः जागरूक थे ।

भेद—भाव

स्वामी विवेकानन्द मानव मात्र के प्रति किसी भी स्तर के भेंद-भाव, ऊँच-नीच, जाति-पाति एवं छुआ-छूत के सवर्था विरोधी थे । वे जन्म के आधार पर जातियों के विभाजन का विरोध करते थे । जाति प्रथा व वर्ण भेद को समाप्त करने के लिये वे जातियों को किसी प्रकार मिटाने की बात नहीं कहते थे । ब्राह्मत्व उनके लिए मानवता का आदर्श है और भारत में सभी को ब्राह्मण बनाना उनका लक्ष्य था ।' प्रत्येक जीव ईश्वर है इस भाव से वे निम्न से निम्न वर्ग में भी ईश्वर का भाव रखते थे । इस विषय में अपने गुरू रामकृष्ण देव का वर्णन करते हुये विवेकानन्द कहते हैं -'' मै उनका शिष्य हूँ, जिन्होंने सर्वश्रेष्ठ ब्राहमण होते हुये भी एक पेरिया (नीच चाण्डाल) का घर साफ किया था, इसलिये यदि मैं पेरिया होता तो मुझे और आनन्द आता ।''

प्रेमचन्द,' विवेकानन्द की सामाजिक एकता की अवधारणा से

---

१. सरस्वती वर्ष १९१९ अंक - जुलाई
२. मर्यादा वर्ष १९१२ अंक - नवम्बर
३. सरस्वती वर्ष १९२१ अंक - मार्च
४. मर्यादा वर्ष १९१९ अंक - जून
५. माधुरी वर्ष १९२४ अंक - फरवरी
६. श्री कमल संवत १९७३ वि० श्रावण संख्या - ८

प्रभावित हो कर अपने निबन्ध स्वामी विवेकानन्द में उनकी विचारधारा व्यक्त करते हुये लिखते हैं कि स्वामी जी कहते थे-" क्या भारत में कभी सुधारकों की कभी रही है । क्या तुम कभी भारत का इतिहास पढ़ते हो । रामानुज कौन थे ? शंकर कौनि थे ? नानक कौन थे ? चैतन्य कौन थे ? दादू कौन थे ? क्या रामानुज नीची जाति की ओर से लापरवाह थे ? क्या वह आजीवन इस बात का यत्न नहीं करते रहे कि चमारों को भी अपने सम्प्रदाय में सम्मिलित कर लें ? क्या उन्होंने मुसलमानों को अपनी मण्डली में मिलाने की कोशिश नही की थी ? क्या गुरू नानक ने हिन्दू मुसलमान दोनों जातियों को मिला कर एक बनाना नहीं चाहा था ? इस सब महापुरुषों ने सुधार के लिये यत्न किये, और उनका नाम अभी तक कायम है । अन्तर इतना है कि वह लोग कटुवादी न थे । उनके मुँह से जब निकलते थे, मीठे बचन ही निकलते थे । वह कभी किसी को गाली नही देते थे, किसी की निन्दा नहीं करते थे । निःसन्देह सामाजिक जीवन के सुधार के इन गुरुतर और महत्वपूर्ण प्रश्नों की हमनें उपेक्षा की हैं और प्राचीनों ने जो मार्ग स्वीकार किया था उससे विमुख हो गये हैं ।"[१]

स्वामी जी सामाजिक कुरीतियों के पक्के विरोधी थे ओर उसमें सुधार के हिमायती थे । परन्तु सुधार की वर्तमन गति से वे सहमत न थे । उस समय समाज सुधार के जो यत्न किये जाते थे, वह प्रायः उच्च और शिक्षित वर्ग से ही सम्बन्ध रखते थे । जाति बन्धन इस समय की एक बड़ी सामाजिक समस्या थी । इस समबन्ध में स्वामी जी का आदर्श बहुत ऊँचा था, जिसे व्यक्त करते हुये प्रेमचन्द लिखते हैं -" निम्न श्रेणी वालों को ऊपर उठाना, उन्हें शिक्षा देना और अपना भाई बनाना होगा । यह लोग हिन्दू जाति की जड़ है और शिक्षिति वर्ग उसकी शाखाएँ! केवल डालियों के सींचने से पेड़ पुष्ट नही हो सकता । उसे हरा- भरा बनाना हो तो जड़ को सींचना ही होगा । इसके सिवा इस विषय में आप कठोर शब्दों के व्यवहार को अति अनुचित समझते थे, जिनका फल केवल यही होता है कि जिनका सुधार करना है वही लोग चिढ़कर ईट का जबाव पत्थर से देने को तैयार हो जाते हैं, और सुधार का मतलब केवल यही रह जाता है कि निरर्थक विवादों और दिल दुखाने वाली आलोचनाओं से पन्ने के पन्ने काले किये जाँय, इसी से तो समाज सुधार का यत्न आरम्भ हुये सौ साल से ऊपर हो चुका और अभी तक कोई नजीता न निकला।"[२]

---

१. कलम तलवार और त्याग पृ० १३१
२. वही पृ० १३०

विवेकानन्द- अछूत मोची मेहतर को भी राष्ट्र की मुख्यधारा मे लाने के लिये देशवासियों का आवाहन करते हुये कहते हैं -" अछूत, मोची , मेहतर , तथा इसी प्रकार के सभी लोगों के पास जाकर कहिये, तुम्ही लोग राष्ट्र के प्राँण हो -- तुम हमारे भाई हो । -- तुम्हें गर्व से कहना होगा कि भारत का चाण्डाल मेरा भाई है -- भारत का मेहतर मेरा भाई है, तभी उनका उद्धार किया जा सकता है । इसी बात को 'प्रेमचन्द' अपने निबन्ध में इस प्रकार लिखते हैं --" स्वामी जी कहते थे, मर्द बनो और ललकार कर कहो, मैं भारतीय हूँ । मैं भारत का रहने वाला हूँ । हर एक भारतीय चाहे वह कोई भी हो, मेरा भाई है । अपढ़ भारतीय, निर्धन भारतीय, ऊँची जाति का भारतीय , नीची जाति का भारतीय सब मेरे भाई हैं ---।"[१]

समाज सुधार करने के लिये और इसके लिये मनुष्य के हृदय में प्रभाव डालने के लिये साहित्य एक सफल माध्यम है, इस बात को समझाते हुये द्विवेदी युग के निबन्धकारों ने जाति प्रथा एवं भेदभाव का अपने निबन्धों के द्वारा मुखर विरोध किया । इस युग के प्रतिष्ठित निबन्धकार चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' जाति प्रथा का विरोध करते हुए लिखते हैं ," जातीय भोजन जातीय एकता का मूल है ।--[२] इसके द्वारा वे जाति प्रथा को समाप्त करने का रास्ता दिखलाते हैं । "हिन्दू जाति की दुर्दशा के कारण और उसके निवारणके उपाय"[३] निबन्ध में भी छुआ - छूत, जात - पांत का विरोध दर्शाय गया है और निबन्ध में इसके सुधार हेतु प्रकाश भी डाला गया है ।

नारी- उत्थान

रामकृष्ण देव और स्वामी विवेकानन्द मूलतः संन्यासी होते हुये भी नारी जाति के प्रति उच्च आदर्शात्मक विचार रखते थे । ये अन्य धर्माचार्यो की तरह नारी को न तो पतन की ओर ले जाने वाली और न ही पाप को बढ़ाने वाली मानते हैं । रामकृष्ण देव सम्पूर्ण नारी जाति के प्रति मातृभाव रखते थे तो उनके भिष्य विवेकानन्द भारत की नारियों को बार-बार याद दिलातें रहते कि 'मत भूलो कि तुम सीता, सवित्री और दययन्ती के देश में पैदा हुयी हो। गुरू- शिष्य की नारी जाति

१. कलम तलवार और त्याग — पृ० १३५
२. समालोचक - जय जमुना मैय्या की — वर्ष १९०४ — अंक - मई
३. माधुरी — वर्ष १९२४ — अंक - जुलाई से दिसम्बर — सं० ३

के प्रति इन भावनाओं का, समकालीन एवं परवर्ती साहित्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा । द्विवेदी युग के निबन्धकारों ने भी इसी भावना से अनुप्राणित होकर नारी के -विकास उत्थान व प्रगति से सम्बन्धित निबन्धोंकी रचना की ।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी अपने निबन्ध ' महात्मारामकृष्ण परमहंस ' में रामकृष्ण देव के नारी विषयक दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुये लिखते है" उन्होंने रामकृष्ण देव सारदा देवी से भी कहा था यह रामकृष्ण संसार की स्त्रियों को माता के समान देखता है, और उनको भी इसी दृष्टि से देखेगाा।"[१] रामकृष्ण देव के इसी भाव को ' माधव मिश्र' इस प्रकार व्यक्त करते है।-" माता महामाया ही का स्वरूप सब स्त्रियों है। इसलिये जगत की समस्त स्त्रियां हमारी माता है।"[२] स्वामी विवेकानन्द के नारी आदर्श को व्यक्त करते हुये प्रेचन्द्र लिखते है--" विवेकानन्द कहा करते थे, हे भारत निवासी भाइयों! अच्छी तरह याद रखो कि सीता, सावित्री और दमयन्ती तुम्हारी जाति की देवियाँा है।"[३]

द्विवेदी युग के निबन्धकारों ने नारी जाति की महानता का वर्णन अनेक स्थलों पर किया है। सरदार पूर्व सिंह अपने निबन्ध - 'कन्यादान' में इसी भाव का वर्णन करते हुये लिखते है-" सीता ने बारह वर्ष का वनवास कबूल किया, महलों में रहना न कबलू किया। दमयन्ती जंगल-जंगल नल के लिये रोती रही ,सावित्री ने प्रेम के बल से यम को जीतकर अपने पति को वापस किया । गांधारी ने सारी उम्र अपनी आँखों पर पट्टी बाँधकर बिता दी ।"[४] इस कथन के द्वारा लेखक नारी जाति के प्रेम, त्याग व समर्पण का उदात्त वर्णन करता है ।

स्वामी विवेकानन्द नारी जाति के प्रति आदर्श परक विचार रखने के साथ ही उनकी कमियों को दूरकर, उन्नति का मार्ग भी दर्शाते हैं । प्रत्येक नारी का शिक्षित होना उसके विकास की पहली सर्त है इसलिये स्वामी जी नारी शिक्षा पर सबका ध्यान आकृष्ट करते हैं । द्विवेदी युगीन साहित्यकारों को भी नारी शिक्षा का अभाव बहुत ही अखरा । इसलिये इस भावना से युक्त होकर

---

१. सरस्वती वर्ष १९०३ अंक - फरवरी, मार्च पृ० ४६
२. माधव मिश्र निबन्धमाला - १ - परमहंस रामकृष्ण देव जी पृ० २४९
३. कलम तलवार और त्याग पृ० १३५
४. सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबन्ध सं० प्रभात शास्त्री पृ० ८७

इस युग में अनेक निबंध लिखे गये । 'स्त्री शिक्षा का उपाय' निबन्ध में बाबादीन शुक्ल कहते है - '' यद्यपि इस संसार से मुक्त होने के लिये हमारे श्रद्धेय महर्षियों के बताये हुये जप, यज्ञादि अनेक साधन उपस्थित हैं, किन्तु विचारना होगा कि इन साधनों के कोई प्रधान साधन तो नहीं है,। बिना जप - यज्ञादि साधनों के सिद्ध करने में मनुष्य को असमर्थ होना पड़े । भाइयों! उन सम्पूर्ण साधनों को सिद्ध करने में प्रधान कारणें में से एक सबसे बड़ा कारण स्त्रियों का शिक्षित होना है। जो -जो साधन मनुष्य के लिये परलोक तथा इसलोक के लिये आवश्यक है, वे सम्पूर्ण साधन स्त्रियों के शिक्षित होने से ही प्राप्त हो सकते हैं ।''[१] इससे स्पष्ट होता है कि द्विवेदी युग में स्त्री शिक्षा के प्रचार को पर्याप्त महत्व दिया गया है ।

भारतीय स्त्रियों में शिक्षा के अभाव से अन्य बातों में श्रेष्ठ होने के बाद भी इस कमी के कारण हमें अपना सिर नीचा करना पड़ता है । 'कामिनी कौतूहल' में इसी बात को व्यक्त करते हुये लिखा गया है -'' हमारे देश में स्त्री शिक्षा की बड़ी आवश्यकता है । यहाँ की स्त्रियाँ और अच्छे गुणों में दूसरे देख के स्त्रियों की बराबरी कर सकती हैं । अनेक बातों में वे उनसे बढ़ी हुई भी हैं । यहाँ की स्त्रियों का सा पति प्रेम,यहाँ की स्त्रियों की सी शालीनता , यहाँ के स्त्रियों की सी ईश्वर भक्ति कहाँ है ? कहीं भी नहीं! परन्तु विद्या और कला कौशल की शिक्षा की बात निकलने पर हमको सिर नीचाा करना पड़ता है ।''[२] 'स्त्रियों की स्वतंत्रता' नामक लेख में स्त्रियों के ज्ञान प्राप्ति पर लिखा गया है -'' हे जगदीश्वर! हम अवलाओं के हृदय में कुछ ऐसा ज्ञान प्रदान कीजिये, जिससे कि हम लोग अपनी हानि - लाभ जान कर सर्वसुखदायिनी विद्या पाने के योग्य होकर अपना सर्वस्व तन- मन- धन परोपकार में अर्पण करें.........याद रहे जब इसी प्रकार की स्वतंत्रता और ऐसी ही शिक्षा हमारी ललनाओं को मिलेगी तभी सब बातों का सुधार होगा।''[३] स्त्रियों की सामाजिक स्थिति व उनकी शिक्षा तथा सम्मान के सम्बन्ध में ' स्त्रियों के विषय में अत्यल्प निवेदन ''[४] निबन्ध में भी भली भाँति प्रकाश डाला गया है।

१.	इन्दु	संवत १९६६ वि०	किरण - ११	पृ० १९१
२.	सरस्वती	वर्ष १९०३	अंक - मार्च	
३.	वही	वर्ष १९१०	अंक - जून	पृ० २७९
४.	वही	वर्ष १९१३	अंक - जुलाई	पृ० ३८४

स्त्रियों की अशिक्षा एवं उनकी दयनीय स्थिति का वर्णन ' भारतीय नवयुवकों के कर्तव्य' नामक निबन्ध में करते हुये दुर्गा प्रसाद शुक्ल कहते हैं -" हमारे समाज में स्त्रियों की दशा कितनी दयनीय है। हम उन्हें अशिक्षित और सब प्रकार अपने अधीन रखकर उन पर कौन-कौन से जुल्म करते है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है।"[१]

स्त्री की शिक्षा में सुधार के साथ- साथ उसके ऊपर होने वाले दमन एवं अत्याचार तथा उसकी पराधीनता के सम्बन्ध में भी द्विवेदी - युग के निबन्धकारों ने ध्यान आकृष्ट किया है। इस सम्बन्ध में सरदार पूर्ण सिंह अपने निबन्ध ' पवित्रता' में लिखते हैं -" जब तक आर्य कन्या इस देश के घरों और दिलों पर राज्य नहीं करती, तब तक इस देश में पवित्रता नहीं आ सकती। .... अब तो पहला संस्कार भारत कन्याओं को राजतिलक देना है।"[२] स्वतन्त्रता के अभाव में स्त्रियों का विकास नहीं हो सकता। ' स्त्रियों की स्वतन्त्रता' नामक निबन्ध द्वारा इस तरफ ध्यान आकृष्ट कराते हुये कहा गया है -" हमारा अभिप्राय केवल यह है कि हम लोगों को वैसी ही स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए जैसी कि प्रताप के समय में क्षत्राणियों को तथा पूर्व समय में ऋषि पत्नियों को मिलती थी जिससे वे अपने कर्तव्य का भली - भाँति पालन करती थी।"[३]

स्त्रियों की अवनति एवं उनके अन्धकारमय जीवन का एक प्रमुख कारण-स्वामी विवेकानन्द बाल-विवाह को मानते हैं। बाल विवाह का धर्म के अन्तर्गत व्याख्या करने पर स्वामी जी प्रश्न करते हैं -" आठ वर्ष की कन्या के साथ ३० वर्ष के पुरुष का विवाह ... आठ वर्ष की लड़की की गर्भाधान की जो लोग वैज्ञानिक व्याख्या करते हैं, उनका धर्म कहाँ का धर्म है।" प्रेमचन्द अपने निबन्ध 'स्वामी विवेकानन्द ' में, स्वामीजी के द्वारा बाल विवाह के विरोध को दर्शाते हुए लिखते हैं -"बाल विवाह और जनसाधारण गृहस्थ जीवन की अत्यधिक प्रवृत्ति को वह घृणा की दृष्टि से देखते थे। अतः रामकृष्ण मिशन की आरे से जो विद्यालय स्थापित किये गये, उनमें पढ़ने वालों के माँ-बाप को यह शर्त भी स्वीकार करनी पड़ती है कि बेटे का व्याह १८ साल के पहले न करेंगे।"[४]

---

१. प्रभा वर्ष १९१५ अंक - अप्रैल पृ० ११८
२. सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबन्ध पृ० १०७
३. सरस्वती वर्ष १९१० अंक - जून पृ० २७९
४. कलम तलवार और त्याग पृ० १३२

बाल विवाह के सम्बन्ध में वर्षो से चली आ रही परम्परा और अज्ञानता पर व्यंग करते हुय चन्द्र धर शर्मा 'गुलेरी', 'मारेसि मोंहि कुठाऊँ' निबन्ध में लिखते हैं -"एक मुरादाबादी पण्डितजी लिखते हैं हमारे पड़दादा के पुस्तकालय में जो चरक की पोथी है उसमें लिखा है - बारह वर्ष से कम की कन्या और पच्चीस से कम कर वर'- लिजीये चरक तो बारह वर्ष पर ही 'एज आफ कन्सेक्ट' बिल देता है । बाबा जी क्यों सोलह कहते हैं, चरक की छपी पोथियों में कहीं यह पाठ न मूल में है न पाठान्तरों में - न हुआ करे, हमारे पड़दादा की पोथी में तो है।"[१]

बाल विवाह व अनमेल विवाह की आलोचना करने हुए दुर्गा प्रसाद शुल्क अपने निबन्ध 'वर्तमान युग में भारतीय नवयुवकों के कर्तव्य' में इसे सामाजिक कुरीति की संज्ञा देते हुए लिखते हैं -"कहीं बाल व वृद्ध का विवाह या अनमेल विवाह हो रहा है । कहीं लडकियाँ देवदासी बनायी जा रही हैं ...... इन कुरीतियों को दूर भगाना होगा ।"[२] इसी युग के एक अन्य निबन्ध 'भारत की स्त्री जाति'[३], में स्त्री समाज की त्तकालीन बुराइयों का वर्णन किया है ।

आर्थिक भाव-धारा

मूलतः संन्यासी होते हुए भी स्वामी विवेकानन्द आर्थिक महत्व तथा राष्ट्र और जन के उत्थान हेतु इसकी उपादेयता को अच्छी तरह समझते थे । आर्थिक उन्नति के बिना कोई भी राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता । वे अर्थ को भोग और विलासित से न जोड़कर भूँख और रोटी से जोड़कर देखते हैं । उनके लिए आर्थिक उन्नति, भारत के कोटि-कोटि क्षुधार्थ नर- नारी के लिये रोटी की व्यवस्था करने से है । ईसाई मिशनरियों द्वारा भारत में धर्म प्रचार करने पर स्वामी जी उन्हें धिम्कारते हुए कहते हैं - "भारत में धर्म का अभाव नहीं हैं, अभाव है तो रोटी का । भूँख से त्रस्त भारतवासी रोटी - रोटी चिल्ला रहे हैं और तुम उन्हें बदले में देते हो पत्थर । भूखे व्यक्ति को धर्म का उपदेश देना उनका अपमान करना है। हो सके तो उनके लिए रोटी की व्यवस्था करो ।"

१.	प्रतिभा	वर्ष १९२०	अंक - सितम्बर	
२.	प्रभा	वर्ष १९१५	अंक - अप्रैल	पृ० ११८
३.	वही	वर्ष १९१५	अंक - मई, जून	पृ० ३६५

विवेकानन्द की आर्थिक भावधारा का पर्याप्त प्रभाव द्विवेदी युग के निबन्धों मे देखा जा सकता है । भारत के लोगों में आर्थिक उन्नति करने की भावना अब अत्यन्त प्रबल हो चुकी थी । पश्चिमी देशों में औद्योगिक क्रान्ति हो चुकी थी, जिसका प्रभाव भारत पर भी पड़ने लगा था । इस तरह से भारतीयों ने अपनी आर्थिक व्यस्था सँभालने के लिए उद्योग धन्धों की उन्नति की ओर ध्यान देना शुरू कर दिया । इस कार्य के लिए साहित्यकारों ने जानता को प्रोत्साहन देने हेतु उद्योग, शिल्प, व्यापार, व्यवसाय से सम्बन्धित विषयों पर निबन्धों की रचना की । सरस्वती के लेखों की विषय सूची में एक वर्ग कला - कौशल, व्यापार और व्यवसाय सम्बन्धी लेखों का मिलता है ।

देश की वर्तमन आर्थिक अवदशा को देखकर विवेकानन्द ने कहा था कि देश को अब धर्म की आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है आर्थिक उन्नति की । इसी भाव से अनुप्राणित होकर द्विवेदी युगीन निबन्धकार मनोरथजी' भारतवर्ष की शोचनीय दशा' नामक निबन्ध में लिखते हैं -'' हिन्दू भाइयों को यह समय मत-मतान्तर के झगडों में पड़ने का नही है, और न सन्तोष का है, और न वेदान्ती बनकर उदासीन होकर बैठने का है । भाइयों, ऐसे घोरकाल में कुछ धार्मिक कार्य नहीं हो सकता, न वह शास्त्रविहित ही है कवेल देश को बचाने के लिए जिस तरह हो सके, कटिवद्ध हो कर यत्न करो । यह समय देश - विदेश व जाति - पाँति के विचार का नहीं है .... जैसे हो सके शिल्प का प्रचार करो, जैसे बन पड़े वैसे कला - कौशल सीखने का यत्न करो । .... सब का प्रायश्चित केवल मरते हुए देश भाइयों को बचाना ही परम् धर्म है ।''[१]

स्वामी विवेकानन्द भारत में आर्थिक उन्नति के लिए विदेशी आविष्कार और उसके प्रयोगों से सीख लेकर - विकास करने के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं - कि भारत को पाश्चातय जगत से आर्थिक उन्नति की सीख लेनी चाहिए । इसी बात को व्यक्त करते हुए महाबीर प्रसाद द्विवेदी अपने निबन्ध ' देश की बात में' लिखते हैं - '' विद्या व विज्ञान की वृद्धि के साथ-साथ नये-नये यन्त्र बनते जा रहे है, उनके उपयोग से श्रम की उत्पादकता की तरह पूँजी की भी उत्पादकता बढ़ती हैं । कलों की बराबरी हाथ नहीं कर सकते । जिस देश में कलों का अधिक प्रचार है, उस देश में पूंजी की उत्पादक शक्ति बहुत बढ़ जाती है ।''[२] इस तरह हम देखते हैं कि द्विवेदी जी

---

१. इन्दु कला - ४ खण्ड - २ किरण - ७ पृ० २४०
२. सरस्वती वर्ष १९१४ अंक - जुलाई

आर्थिक विकास के लिए आधुनिक व वैज्ञानिक प्रयोगों का समर्थन करते हैं।

देश की निर्धन जनता एवं उसकी दयनीय दशा तथा उसके सुधार के प्रति शिक्षित जनों को सजग करते हुए आचार्य द्विवेदी अपनी पुस्तक 'सम्पत्ति शास्त्र' की भूमिका में लिखते हैं -" हिन्दुस्तान सम्पत्तिहीन देश है। यहाँ सम्पति की बहुत कमी है। जिधर आप देखेगे उधर ही आँख को दरिद्र देवता का अभिनय किसी न किसी रूप में अवश्य ही दीख पड़ेगा परन्तु इस दुर्दमनीय दारिद्र्य को देखकर भी कितने आदमी ऐसे हैं, जिनको उसका कारण जानने की उत्कंठा होती है ? यथेष्ठ भोजन, वस्त्र न मिलने से करोड़ो आदमी जो अनेक प्रकार से कष्ट पा रहे हैं, उसका दूर किया जाना क्या किसी तरह सम्भव नहीं ? हर गाँव और हर शहर में जो अस्थि चर्मविशिष्ट मनुष्यों के समूह आते जाते दीख पड़ते हैं, उनकी अवस्था उन्नत करने का क्या कोई साधन नहीं है? बताइये तो सही कितने आदमी ऐसे है जिनके मन में इस तरह के प्रश्न उत्पन्न होते है।"[१]

भारत की आर्थिक दुर्वस्था को सुधारने का उपाय बतलाते हुए महावीर प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं - " अपनी आर्थिक अवस्था को सुधारना ही इस समय हम लोगों का प्रधान कर्तव्य है। अनेक रोगों से पीड़ित और अभिशप्त इस हिन्दुस्तान के लिए इस समय यही सबसे बड़ी औषधि है। यदि यह औषधि उपयोग में न लायी गयी तो हमारी और अधिक दुर्दशा होने में कोई भी सन्देह नहीं है। अतएव भारतवासियों को यदि दुनिया की अन्यान्य जातियों में अपना नाम बनाये रखने की जरा भी इच्छा हो तो उन्हें चाहिए कि वे सम्पत्ति - शास्त्र का अध्ययन करें और सोंचे कि कौन बाते ऐसी हैं जो हमारी उन्नति में बाधा डाल रही हैं।"[२] पूँजी और उसके उपयोग के सम्बन्ध में इसी भावना से प्रेरित होकर हरिहर नाथ लिखते हैं -" विदेशी पूँजी के रहते जितनी हानि है उससे कहीं अधिक हानि विदेशियों के हाथ में व्यवसाय होने से है। हमको केवल मजदूर न रहना चाहिए वरन व्यवसाय के प्रत्येक अंग का संचालन करके उसका पूरा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इस प्रकार हमको विदेशी व्यवसाय का नौकर न बनना चाहिए वरन् व्यवसाय के मुनाफे का भागी भी होना चाहिए।"[३]

---

१. सम्पत्ति शास्त्र - महावीर प्रसाद द्विवेदी - भूमिका से
२. वही
३. श्री सारदा संवत १९८० वि० अंक - वैशाख

द्विवेदी युग के निबन्धों में भारत की आर्थिक अवदशा एवं उसकी उन्नति से सम्बन्धित विचार प्रचुरता से मिलते हैं । जिनमे, 'स्वदेशी वस्त्र के व्यापार की उन्नति'[१] 'हिन्दुस्तान का व्यापार'[२] 'भारतीय आर्थिक और व्यापारिक स्थिति'[३] 'भारत की व्यापार नीति'[४] आदि प्रमुख हैं ।

द्विवेदी युग के निबन्धों में शिल्प शिक्षा के प्रचार तथा कला कौशल सीखने पर पर्याप्त महत्व दिया गया है, जिनमे 'हमारी शिल्प कला का ह्रास'[५] 'शिल्प कला तथा राष्ट्रीय धन'[६] 'भारत की अपनी शिल्प पद्धति'[७] 'ग्राम शिल्प का पुनस्थान'[८] आदि उल्लेखनीय हैं । भारत में उद्योग धन्धों की कमी यहॉ के लोगों को बहुत खटक रही थी । इसी बात को 'भारत में औद्योगिक शिक्षा'[९] 'उद्योग धन्धे की शिक्षा'[१०] निबन्ध के द्वारा व्यक्त किया गया है ।

इस तरह हम देखते हैं कि द्विवेदी युग के निबन्धों में विवेकानन्द की आर्थिक भावधारा का प्रभाव प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनो रूपों में व्यक्त हुआ है । द्विवेदी युग के समग्र निबन्धों और लेखों का व्यापक अध्ययन करने पर यह देखा जा सकता है कि इस युग के निबन्धकार रामकृष्ण- विवेकानन्द भावधारा से पूर्णतः प्रभवित हैं, एवं उन्होंने, उनके धार्मिक, राष्ट्रीय, सामाजिक तथा आर्थिक विचारों को ही अपनी लेखनी के द्वारा जन -जन तक प्रसारित करने का महती कार्य किया । उनका यह अपूर्व योगदान न केवल निबन्ध के क्षेत्र में अपितु समस्त हिन्दी साहित्य के उत्थान मे मील का पत्थर साबित हुआ ।

१.	विचार विमर्श - महावीर प्रसाद द्विवेदी			पृ० ३४४
२.	सरस्वती - महावरी प्रसाद द्विवेदी	वर्ष १९०७		अंक - अक्टूबर
३.	मर्यादा - रामकृष्ण शर्मा	वर्ष १९१७		अंक - मार्च
४.	वही - लक्ष्मी शंकर अवस्थी	वर्ष १९१३		अंक - अप्रैल
५.	इन्दु - परमेश्वर प्रसाद वर्मा	वर्ष १९१४		अंक - दिसम्बर
६.	मर्यादा - श्याम सुन्दर पाण्डेय	वर्ष १९१९		अंक - अप्रैल
७.	इन्दु संवत १९७० वि०	कला -४	खण्ड - २	किरण - ५
८.	साहित्य - छविनाथ पाण्डेय संवत १९७९ वि०	माह - कार्तिक		
९.	सरस्वती - महावीर प्रसाद द्विवेदी	वर्ष १९१३		अंक - फरवरी
१०	वही - कृष्णानन्द जोशी	वर्ष १९१५		अंक - जुलाई

(ख) का पर प्रभाव

लोक-मंगल और लोककल्याण ही साहित्य का मूल उद्देश्य है। व्यक्ति एवं समाज के मध्य पारस्परिक संम्बधों का विश्लेषण कर उनकी न्यूनताओं की ओर ध्यान दिलाते हुए उसमें सुधार करके उन्हें प्रगति और उन्नति की ओर प्रेरित करने में ही साहित्य की सार्थकता है । हिन्दी साहित्य में गद्य विधा का आरम्भ भारतेन्दुयुग से हो चुका था । द्विवेदी युग तक आते- आते इसका विकास होने लगा था । उपन्यास की दृष्टि से द्विवेदी युग अन्य गद्य - विधाओं की तुलना में समृद्ध कहा जा सकता है किन्तु इस क्षेत्र में लेखकों और पाठकों की प्रवृत्ति साहित्य के मूल उद्देश्यों से दूर, कुतूहल रहस्य और रोमांच के माध्यम से मनोरंजन करने में ही अधिक रही है । सामाजिक जीवन की यथार्थ समस्याओं को लेकर गम्भीर उपन्यासों की रचना इस युग में कम ही हुयी है । रहस्यमयी अद्भुत घटनाओं को श्रृंखलाबद्ध करके एक अपरिचित संसार में पाठकों को भटकाते रहना , लेखकों का प्रधान लक्ष्य प्रतीत होता है ।

द्विवेदी युग के (१९००-१९२०ई०) उपन्यासों पर व्यापक दृष्टि डालने पर पहला तथ्य यह सामने आता है कि इसी अवधि में हिन्दी उपन्यास को अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए मजबूत जमीन मिली । इसके पहले हिन्दी उपन्यास, हिन्दी साहित्य के उत्थान कर्ताओ के उत्साह पर निर्भर था । उसके पाठक न के बराबर थे । देवकी नन्दन खत्री ने हिन्दी उपन्यास को पाठकों का एक बड़ा वर्ग प्रदान कर ,उसे अपने पैरों पर खड़ा किया । बीसवीं शताब्दी का प्रथम दशक पूरी तरह से पाठकों के निर्माण का दशक है और इसके एक मात्र अभियंता देवकी नन्दन खत्री हैं । बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में खत्रीजी के अतिरिक्त गोपाल दास गहमरी और किशोरी लाल गोस्वामी ने हिन्दी उपन्यास के पाठकीय आधार को सुदृढ़ करने का प्रयत्न किया । इन्हीं के मार्ग पर चलने वाले ऐयारी , तिलिस्म प्रधान, अपराध प्रधान ,जासूसी और रूमानी कथाकारों ने पाठक वर्ग के विस्तार में योगदान किया । इस प्रकार द्विवेदी युग की समाप्ति तक हिन्दी जगत में एक ऐसा विशाल पाठक वर्ग निर्मित हो गया जो मुख्यतः मध्यमवर्गीय था । यही मध्य - वर्ग आगे चल कर उपन्यास का आश्रयदाता ही नही उसका प्रधान विषय वस्तु भी बना ।

द्विवेदी युगीन हिन्दी कथा सहित्य का लेखक और पाठक समाज तिलिस्म ऐयारी

और जासूसी के जाल में उलझा हुआ था। अद्भुत कौशल और अनोखी सूझबूझ के सम्मिलन से इन उपन्यासों की सृष्टि हुयी । 'चन्द्रकांता' और 'चन्द्रकांता संतति' पढ़ने के पश्चात हिन्दी का पाठक वर्ग उन्हीं जैसी पुस्तकों की खोज करने लगा । कुछ ही वर्षों में हिन्दी उपन्यास साहित्य तादृश उपन्यासों से भर गया । गोपाल दास गहमरी के उपन्यासों और जासूस - पत्र ने जासूसी उपन्यासों को विशेष प्रोत्साहन दिया । तिलिस्मी और ऐयारी उपन्यास तो प्रेम प्रधान हैं ही , जासूसी उपन्यास में भी प्रायः प्रेम का सन्निवेश हुआ है । विज्ञान और दर्शन के विषय में भी कुछ उपन्यासों की रचना हुई है । 'हवाई नाव' 'चन्द्रलोक की यात्रा', 'बेलून बिहारी' आदि में वैज्ञानिक सत्य के साथ जासूसी, जातकी,की स्वच्छन्द कल्पना का संयोग हुआ है ।

प्रवृत्ति भेद के आधार पर द्विवेदी युगीन उपन्यासों को पाँच वर्गों में रखा जा सकता है - तिलिस्मी ऐयारी उपन्यास ,जासूसी उपन्यास,अद्भुत घटना प्रधान उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास और सामाजिक उपन्यास । तिलिस्मी ऐयारी उपन्यासों की परम्परा देवकी नन्दन खत्री द्वारा भारतेन्दु युग में ही आरम्भ हो गयी थी और द्विवेदी युग में इसका विकास होता गया। खत्री जी के 'काजर की कोठरी'(१९०२), 'अनूठी बेगम'(१९०५), 'गुप्त गोदना' (१९०६), 'भूतनाथ' प्रथम छः भाग- (१९०६), आदि उपन्यास इसी युग में प्रकाशित हुए । खत्री जी के परम्परा का निर्वाह जौहर जी ने 'मयंक मोहनी या माया महल' (१९०१), 'कमल कुमारी' (१९०२), 'निराला नकाबपोश' (१९०२), 'भयानक खून' (१९०३) आदि तिलिस्मी उपन्यासों की रचना द्वारा किया । किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'पुतली महल' (१९०८), भी इसी वर्ग की रचनाएँ हैं । आगे चल कर देवकी नन्दन खत्री के सुपुत्र दुर्गा प्रसाद खत्री ने भूतनाथ के शेष भागों को लिखकर इस परम्परा को आगे बढ़ाया ।

जासूसी उपन्यासों का प्रर्वतन गोपालदास गहमरी ने किया था। गहमरी जी अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार आर्थर कानन डायल से प्रभावित थे– उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'ए स्टडी फार स्कारलेट' को उन्होने 'गोविन्दराम' (१९०५), शीर्षक से हिन्दी में रुपान्तरित भी किया । गहमरी जी के जासूसी उपन्यास द्विवेदी युग मे अत्यन्त लोकप्रिय हुए। 'सरकटी लाश' (१९००), 'चक्करदार चोरी' (१९०१), 'जासूस की भूल'(१९०१), 'जासूस पर जासूसी'(१९०४), 'जासूस चक्कर में'(१९०६), 'इन्द्रजालिक जासूस'(१९१०), 'गुप्त भेद'(१९१३), 'जासूस की ऐयारी'(१९१३)आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं ।

अद्भुत घटना प्रधान उपन्यास की रचना तिलिस्मी और जासूसी उपन्यासो से भिन्न तकनीक पर की जाती थी। इसमें इसी लोक के किसी रहस्यमय कोने का वर्णन किया जाता था। विट्ठलदास नागर का 'किस्मत का खेल'(१९०५), बाँके लाल चतुर्वेदी का 'खौफनाक खून'(१९१२), निहाल चन्द्र वर्मा का 'प्रेम का फल या मिस जौहरा'(१९१३), प्रेम विलास वर्मा का 'प्रेम माधुरी या अनंग कान्ता'(१९१५), दुर्गा प्रसाद खत्री का 'अद्भुत भूत'(१९१६), इस शैली के मुख्य उपन्यास हैं।

प्रस्तुत युग के ऐतिहासिक उपन्यास प्रायः मुस्लिम काल से सामग्री लेकर लिखे गये किन्तु उनमे इतिहास तत्व की कमी है। लेखकों ने इतिहास की ऐसी घटनाओं का चयन किया है जो पाठकों के कुतूहल एवं रहस्य रोमांच वृत्ति को पुष्टि कर सके। किशोरी लाल गोस्वामी, गंगा प्रसाद गुप्त, जयराम दास गुप्त और मथुरा प्रसाद शर्मा इस काल के उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'तारा वा क्षात्रकुल कमलिनी'(१९०२), 'सुल्ताना रजिया बेगम के रंग महल में हलाहल'(१९०४), 'मल्लिकादेवी वा बंग सरोजनी'(१९०५), और 'लखनऊ की कब्र व शाही महलसरा'(१९१७), आलोच्य युग के चर्चित ऐतिहासिक उपन्यास हैं। उपयुक्त विधाओं के उपन्यासों का अध्ययन करने पर पाया जाता है कि ये सभी उपन्यास केवल पाठकों के मनोरंजन को केन्द्र में रख कर लिखे गये हैं, इसका कोई सामाजिक प्रदेय नही है।

तिलिस्म ऐयारी और जासूसी प्रधान कथा साहित्य के इस युग में समाज की नींव से जुड़े कुछ ऐसे सामाजिक उपन्यासों का प्रणयन किया गया जिसमें वर्तमान सामाजिक समस्याओं के वर्णन के साथ - साथ उनके समाधान के मार्ग भी दिखलाये गये हैं। आलोच्य - कालीन सामाजिक उपन्यासों में सुधारवादी जीवन दृष्टि ही प्रधान है। किशोरीलाल गोस्वामी, लज्जाराम शर्मा और गंगा प्रसाद गुप्त सनातन धर्म के समर्थक थे। नवीन सुधारवादी आन्दोलनों के विरुद्ध होते हुए भी ये लेखक जीवन में नैतिकता की प्रतिष्ठा के लिए प्रयासरत दिखते हैं। किशोरीलाल गोस्वामी जी ने सती साध्वी देवियों के आर्दश प्रेम के साथ ही अवैध प्रेम, विधवाओं के व्यभिचार वेश्याओं के कुत्सित जीवन और देवदासियों की विलासिता का अपने उपन्यास के माध्यम से विरोध किया है।

द्विवेदी युग के सामाजिक उपन्यासकारों में लज्जाराम शर्मा (१८६३-१९३१),

किशोरीलाल गोस्वमी, अयोध्या सिंह उपाध्याय, ब्रजनन्दन सहाय, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह और मन्नन द्विवेदी उल्लेखनीय हैं । लज्जाराम के 'आदर्श -दम्पति' (१९०४), 'बिगड़े घर का सुधार अथवा सती सुखदेवी'(१९०७), और 'आर्दश हिन्दू'(१९१४), उपन्यासों का विशेष महत्व है । किशोरीलाल गोस्वामी के 'लीलावती का आर्दश सती'(१९०१), 'चपला वा नव्य समाज'(१९०३-१९०४), 'पुनर्जन्म वा सौतिया डाह'(१९०७), 'माधवी माधव वा मदन मोहनी'(१९०३-१९१०), और 'अंगूठी का नगीना'(१९१८), उपन्यासों मे सामाजिक संदर्भो की प्रमुखता से व्याख्या की गयी है। अयोध्या सिंह उपाध्याय ने 'अधखिला फूल' उपन्यास के माध्यम से अन्धविश्वास पर कुठाराघात किया। इनकी एक अन्य औपन्यासिक कृति 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' मे सामाजिक आदर्श का वर्णन प्रचुर मात्रा में किया गया है ।

मेहता लज्जाराम शर्मा के उपन्यास एक प्रकार से समस्यामूलक कहे जा सकते हैं । उनके उपन्यासों में हिन्दू समाज की समस्याओं को व्यापक महत्व दिया गया है, परन्तु उनकी दृष्टि सनातनी हिन्दू परम्परा तक ही सीमित थी । 'आदर्श हिन्दू' में लेखक अन्तर्जातीय विवाह और विधवा विवाह का विरोध करता है। लेखक विधवा विवाह को तो व्यभिचार के समकक्ष मानता है। 'आदर्श हिन्दू' में एक ऐसी पतिव्रता स्त्री का चित्रण किया गया है जो पति के दाहिने अँगूठे की नित्य पूजा करती है, पति जिस कार्य से प्रसन्न रहे वही कार्य करती है और उसकी इच्छा को अपनी इच्छा समझती है। मेहता जी जातिगत भेद - भाव और छूआ - छूत को कोई सामाजिक समस्या नही मानते। 'आर्दश हिन्दू' में उन्होंने उस वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया है जिसमें ब्राह्मण, 'ब्राह्मण' और शूद्र, 'शूद्र' बनें रहें । इस दृष्टि से मेहता लज्जाराम शर्मा का सामाजिक दृष्टिकोंण दुराग्रही और समय से पिछड़ा हुआ माना जा सकता है किन्तु इस उपन्यास में ईश्वर - परायणता ,परोपकार, नैतिकता ,चरित्र , सेवा, संयम व राष्ट्रीय भावना आदि से युक्त, ऐसे उज्ज्जवल पक्ष भी हैं जिनमें रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा के आदर्शो की झलक देखी जा सकती है ।

देश की वर्तमान दशा एवं सामाजिक मूल्यों के ह्रास के प्रति जो पीड़ा स्वामी विवेकानन्द मे थी वही पीड़ा 'आदर्श हिन्दू' में भी देखी जा सकती है । उपन्यास की भूमिका में ही उपन्यासकार नैतिक मूल्यों की गिरावट की बात लिखता है - ''अब थोड़ों को छोड़कर न कहीं वह

मंगलाचरण है, न वह वन्दना है और न वह क्षमा प्रार्थना। अब है, प्रायः देशोउन्नति की डीगे, परोपकार का आभास और आत्मश्लाघा की झलक।''[१]

समाज की अवनति एवं अवदशा के मध्य उसकी उन्नति के प्रति जो आशावादी दृष्टि स्वामी विवेकानन्द मे थ्थी वही आशावाद मेहता जी के उपन्यास में देखा जा सकता है - ''नहीं - नहीं! ऐसा न कहो! यह कहो कि जो अस्त होता है, उसका सूर्य भगवान की तरह उदय भी होता है।''[२]

रामकृष्ण देव के मानवतावादी चिन्तन एवं विवेकानन्द के नववेदान्त की भावना को अपने उपन्यास 'आदर्श हिन्दू' में मेहता जी ने इस प्रकार व्यक्त किया है - ''मोक्ष होने का केवल एक यही साधना नही है (पुत्र - प्राप्ति)। बड़े-बड़े साधन हैं और मैं मानता हूँ कि सबसे बढ़ कर साधन चार हैं। एक परोपकार दूसरा किसी को कष्ट न पहुँचाना तीसरा सच्चाव्यव हार और चौथा परमेश्वर की अनन्य भक्ति।''[३]

स्वामी रामकृष्ण देव धर्म के वाह्य - क्रियाकलापों की अपेक्षा ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण एवं भाव तन्मयता को ही ईश्वर लाभ पाने का श्रेष्ठ साधन बतलाते थे। वे कहते हैं कि वाह्य क्रिया - कलापों की अपेक्षा सच्चे हृदय से अपने मन को ईश्वर में लीन कर देना ही ईश्वर की सच्ची आराधना है। मेहता जी रामकृष्ण देव की इस भावधारा से प्रभावित होकर अपने उपन्यास 'आर्दश हिन्दू' मे जैसे वे उन्हीं की बात को दुहरा रहे हैं - ''हजार वर्ष तक माला फेरने से क्या ? समस्त जप-तप से, जन्म भर खाक रमाने, माला फेरते-फेरते मनका घिस डालने का परिणाम नही है। यदि एक मिनट भी इस तरह परमेश्वर के चरणो में अपना मन लीन होकर अपनी सुधि - बुधि जाती रहे तो होगया काम! सब जप और तप, तीर्थ और पूजा, सब ही इसके साधन है।''[४]

मेहता लज्जाराम शर्मा के एक अन्य उपन्यास 'आर्दश दम्पति' में भी रामकृष्ण

---

१. 'आर्दश हिन्दू' मेहता लज्जाराम शर्मा, भूमिका से,
२. वही पृष्ठ ८,
३. वही पृष्ठ १३
४. वही पृ० ९८

विवेकानन्द भावधारा का प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। इस उपन्यास में स्त्री के आर्दश और चरित्र का उदात्त वर्णन किया गया है। रामकृष्ण देव सम्पूर्ण नारी जाति के प्रति मातृभाव रखते थे। वे जीव की सेवा को मानव का परम कर्तव्य मानते थे, उनका यह भाव तथा उनकी धार्मिक दिव्यता का प्रभाव इस युग के उपन्यास में सहज ही देखा जा सकता है - "जो धर्म को प्राण से भी बढ़कर समझते हैं, जिन्हें धर्म रक्षा के लिए विष पीना भी अमृत से अधिक मीठा जान पड़ता है....... जो पुरुष पर स्त्री को माता के समान मानते हैं........ जो परोपकार के लिए अपना प्राण तक दे देना अपना प्यारा धर्म समझते है वे ही जानेगें....।"[१]

रामकृष्ण देव व विवेकानन्द नारी को दीन हीन एवं अबला के रूप में नहीं देखते। उनकी यह भावना 'आर्दश दम्पति' उपन्यास मे अभिव्यन्जित होती है -"वो अबला इस समय प्रबला बन कर महिषासुरमर्दिनी का रूप धारण कर चुकी थी।"[२]

किशोरी लाल गोस्वामी के उपन्यास 'गुलबहार' (यह उपन्यास 'सरस्वती' १९०२ के जुलाई अंक कहानी के रूप में प्रकाशित की गयी है परन्तु लेखक एवं 'वृहद उपन्यास कोष' के सम्पादक डा० गोपाल राय के द्वारा इसे उपन्यास मानने पर इसका विवेचन उपन्यास के रूप में ही किया जा रहा है) मे मीर कासिम की राष्ट्रभक्ति एवं उसकी वीरता का ओजस्वी वर्णन किया गया है तथा उसके बेटे बहार एवं उसकी बेटी गुल की राष्ट्र भक्ति एवं वीरता का वर्णन किया गया है। 'गुल बहार' में मीर कासिम, बहार एवं गुल की राष्ट्रीय भावना में विवेका नन्द की राष्ट्रीयता का भाव देखा जा सकता है।

मेहता लज्जा राम शर्मा के उपन्यास 'हिन्दू गृहस्थ' मे देश की अर्थिक उन्नति के लिए उद्योग एवं व्यापार के विकास एवं किसान मजदूर के उत्थान के लिए जो विचार विवेकानन्द रखते थे, उनके उन्हीं विचारों का अनुमोदन किया गया है। इस उपन्यास में गाँवो के औद्योगीकरण, नये ढ़ग से उन्नत खेती, किसानों को कर्ज की सुविधा प्रदान करने की व्यवस्था, देशी व्यापार तथा देशी कारीगरी की उन्नति, जुलाहों के लिए नये ढ़ग के लाइ-शटल से हैण्डलूम पर कपड़ा बुनने

---

१. आदर्श - दम्पति मेहता लज्जाराम शर्मा, पृष्ठ १६४
२. वही पृष्ठ १५

की शिक्षा, स्वदेशी भण्डार की स्थापना आदि का समर्थन किया गया है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय के उपन्यासों - 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' तथा 'अधखिला फूल' में रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' मे प्राचीन रूढ़ियों का विरोध जाति - प्रथा का कुपरिणाम एवं मानवीय संवेदनाओं का व्यापक वर्णन मिलता है। नायक देवनन्दन और नायिका देवबाला का विवाह हर दृष्टि से उचित एवं सभी तरह से मेल खाते हुए भी केवल इसलिए नही हो पाता कि नायक, नायिका से उपजाति में थोड़ा नीचे का है। इस सम्बन्ध में नायिका देवबाला का पिता रमाकान्त अपनी दुराग्रह इस तरह व्यक्त करता है - "देवनन्दन का व्याह हमारी लड़की के साथ नही हो सकता। यह मै जानता हूँ, देवनन्दन का बाप बड़ा धनी है, देवनन्दन भी देखने - सुनने, पढ़ने-लिखने, सब बातों में अच्छा है पर हाड़ में तो अच्छा नही है।"

उक्त कथन के द्वारा वर्तमान समाज की जातिगत विसंगतियों को देखा जा सकता है और इसी जातीय विंसगतियों के कारण नायिका देवबाला का विवाह एक ऐसे सजातीय किन्तु निठल्ले और अयोग्य व्यक्ति के साथ कर दिया जाता है, जिसके कारण उसे उम्र भर दुःख भोगते हुए जीवन व्यतीत करना पड़ता है। यहाँ लेखक स्वामी विवेकानन्द की तरह जाति व्यवस्था की संकुचित विचारधारा का अपने उपन्यास के कथानक के माध्यम से विरोध करता है।

जिसे तरह से स्वामी विवेकानन्द ने समुद्र यात्रा करके सड़ी गली पुरानी मान्यताओं का विरोध किया था उसी प्रकार उपन्यास में नायिका की माँ हेमलता औचित्यहीन पुरानी मान्यताओं का विरोध करती है। अपने पति रमाकान्त के इस कथन पर - " तुम्हारी समझ ही कितनी ! तिरिया ही न हो। बाप - दादे से जो बात होती आयी है उसको कोई कैसे छोड़ सकता हैं।" इसके जबाब में हेमलता कहती है –"बाप दादे जो कर गये हैं, वही करना चाहिए पर बाप दादे ने जो भूल की हो, कोई बुरा काम किया हो तो उसको न करना ही सब लोग अच्छा समझते हैं।"

इस तरह हम देखते हैं कि अयोध्या सिंह उपाध्याय इस कथन के माध्यम से विवेकानन्द के सदृश अन्धी परम्पराओं को अपनाने एवं गलत परम्पराओं के प्रति विरोध व्यक्त करते हुए समाज को नयी चेतना का सन्देश देते हैं । उपन्यासकार अपने कथानक में नया मोड़ देते हुए लम्पट एवं मक्कार पति के द्वारा दुःख भोग रही देवबाला का मिलन संन्यास ब्रत धारण किये देवनन्दन से कराते हैं जिन्होंने अपने जीवन का मूल उद्देश्य जन कल्याण - एवं लोकमंगल की भावना को बना लिया था । संन्यासी वेशधारी देवनन्दन द्वारा पीड़ित देवबाला प्रश्न करती है - तुम कौन हो ? इसके उत्तर में देवनन्दन कहता है -''हम कोई होवें, पर विपत में पड़े को उबारना ही हमारा धरम है, इस माटी के पुतले के लिए इससे अच्छा कोई दूसरा काम नही हो सकता।...... विपत पड़ने पर किसी को सहारा देना ही मानुष का काम है, जो दुःखियों के दुःख को नहीं जानता, पराई पीर से जिसका कलेजा नही कसकता, दुःख में पड़े को जो नहीं उबारता, भूखों कंगालों पर जो नहीं पसीजता वह मानुख नही पिशाच है।'' इस तरह हम देखते हैं कि रामकृष्ण देव की दीन दुखियों के प्रति सेवाभाव एवं मानवतावादी दृष्टि तथा विवेकानन्द के नव वेदान्त का प्रभाव नायक देवनन्दन में स्पष्टतया परिलक्षित होता है ।

आगे नायक द्वारा एक धनी व्यापारी की प्राण रक्षा करने पर बदले में जब व्यापारी धन देने लगता है तो देवनन्दन कहता है - ''रुपया लेकर मैं क्या करूँगा........ तुम इन रूपयों को अपने पास रखो, इनको किसी धरम के काम में लगाओ । भूखों कंगालां में इनको बाँटो, इसी से मेरे जी को सुख मिलेगा....... धरती पर इससे बढ़कर कोई दूसरा काम नही है ।''यहाँ यह द्रष्टव्य है कि रामकृष्ण देव द्वारा तीर्थ यात्रा प्रसंग में मथुरबाबू से दीन -दुखियों को अन्न , धन ,वस्त्र बाँटकर उनके द्ःख को बाँटने की बात कही गयी थी, और जब तक ऐसा नहीं हो गया वे आगे नहीं बढ़े। इससे उन्हें काफी सुख और सन्तोष की प्राप्ति हुयी । इसी तरह नायक द्वारा भी दीन - दुःखी की सेवा में सुख व्यक्त करने पर यहाँ रामकृष्ण देव का प्रभाव देखा जा सकता है ।

कथानक के अन्त में संन्यासी वेश धारी नायक देवनन्दन अपना मानवतावादी दृष्टिकोण इस कथन के द्वारा व्यक्त करता है—"भभूत लगाने से क्या होगा? गेरुआ पहनने से क्या होगा ? घर द्वार छोड़ने से क्या होगा ? साधू होने से ही क्या जो दूसरे का दुःख, मैं न दूर कर सकूँ, दुःखिया को सहारा मैं न दूं...... जिस काम को करने से दस का भला हो उसमें जी न लगाऊँ...... देश के बुरी रीत के दूर होने के लिए जतन करना ,लोगों के झूठे घमण्डों को समझा बुझाकर छुड़ाना जिससे एक को कौन कहे लाखों का भला होगा क्या मेरा काम नहीं है.....।"

यहाँ तक आते-आते नायक देवनन्दन रामकृष्ण देव के शिष्य युगनायक विवेकानन्द के रूप में मूर्तमान हो उठता है एवं अपने विचारों के द्वारा वह प्रकारान्तर से विवेकानन्द की ही भावधारा का प्रत्यक्षतः अनुमोदन करता है ।

अयोध्या सिंह उपाध्याय के दूसरे उपन्यास 'अधखिला फूल' में भी लोकहित एवं जनकल्याण की भावना विस्तृत रूप में देखी जा सकती है । कथानक का नायक देवस्वरूप अपने सत्कर्मों एवं सद्विचारों से कामिनी मोहन (धनी रईस) द्वारा बहुत सा धन प्राप्त होने पर अपने ठाट-बाट में ने खर्च करके दीन - दुखियों के उद्धार एवं उनके कल्याण के कार्यो मे सारा धन खर्च करता है । इन पैसों से उसने एक धर्मशाला खुलवाया जिसके दरवाजे पर लिखा था -

"आप आकर रहे यहाँ पर आज
भाग ऐसे कहाँ हमारे है ।"

इसमे यात्रियों के रहने और एवं भोजन की निःशुल्क सुविधा थी । इससे कुछ दूर बिना माँ - बाप के सैकड़ों लड़के- लड़कियों हेतु एक अनाथालय बनवाया गया था । उन अनाथों के माँ बाप, कथानक की नायिका देवहूती व नायक देवस्वरूप है । इस अनाथालय के द्वार पर लिखा था -

"है सहारा जिसे नही, उस पर
कौन आंसू नही बहावेगा।"

इसके अलावा उनके द्वारा एक पाठशाला भी खोली गयी जिसमें गाँव के सभी जातियों के लड़के पढ़ते थे । उसके द्वार पर लिखा था -

"जिसने कुछ भी नही पढ़ा लिखा,
खो दिया हाँथ का रतन उसने।"

इसके आगे गाँव के दीन दु:खी और बेसहारा को भोजन कराने केलिए नि:शुल्क भोजनालय की व्यवस्था की गयी थी। उसके द्वार पर लिखा था—

"मत कभी पेटजलो को भूलो,
भूख की पीर बुरी होती है।"

गाँव के रोगी व्यक्तियों की देख भाल के लिए नि:शुल्क चिकित्सालय की व्यवस्था भी की गयी थी । उसके द्वार पर लिखा था—

"हम उन्हें भूला समझते है बहुत,
रोगियो पर जो दया करते नहीं ।"

इस प्रकार हम देखते है कि उपन्यासकार, नायक के जन कल्याणकारी कार्यो के माध्यम से विवेकानन्द के मानवतावादी सन्देशों का प्रचार करवाते हैं ।

हिन्दी उपन्यास के कथा सम्राट प्रेमचन्द्र का आविर्भाव द्विवेदी युग के अन्तिम चरण में होता है । यद्यपि वे उर्दू में दो उपन्यासों की रचना पूर्व में कर चुके थे परन्तु हिन्दी में इनका प्रथम उपन्यास १९१८ ई० में प्रकाशित हुआ । द्विवेदी युग में प्रकाशित इनका एक मात्र उपन्यास 'सेवा सदन' ही है। इनके शेष उपन्यास इस काल खण्ड की समय सीमा के बाहर लिखे गये। 'सेवा सदन' समाज सुधार की भावना को केन्द्र में रख कर लिखा गया पूर्णतः सामाजिक उपन्यास है। इसमें तद्युगीन समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों को उद्घाटित करते हुए उसके समाधान का मार्ग भी दिखलाया गया है । रामकृष्ण - विवेकानन्द भावधारा का प्रभाव 'सेवा सदन' में अनेक स्थलो

पर देखा जा सकता है ।

'सेवा सदन' का कथानक सुमन नाम की एक ऐसी महिला को केन्द्र में रख कर लिखा गया है, जिसका सम्पन्न परिवार में पालन पोषण के बाद परिस्थितियों वश अपेक्षाकृत गरीब युवक से शादी कर दी जाती है । नैतिकता एवं विलासिता के उहापोह में डूबते उतराते घर के ठीक सामने रहने वाली वेश्या की वैभवपूर्ण जीवन शैली पर आकृष्ट होकर वह अपने वर्तमान से असन्तुष्ट रहने लगी। इसकारण पति से सुमन का आये दिन विवाद होने लगा और एक दिन बात अधिक बढ़ने पर परिस्थितियां सुमन को दाल मंडी के कोठे तक पहुँचा देती हैं । समर्पित समाजसेवी बाबू विठ्ठल दास तथा पद्मसिंह के सार्थक प्रयासों से सुमन को वहाँ से बाहर निकाला जाता है। अनके घटनाओं के बाद अन्ततः सुमन अपना जीवन समाज सेवा के कार्यों में समर्पित कर देती है ।

उपन्यास के चरित्र विट्ठल दास समर्पित समाज सेवी हैं । वे निजी स्वार्थों को भूल कर दीन - दुःखियों की सेवा में सदैव तत्पर रहते थे । उनकी समाज सेवा की यह भावना एवं दीन - दुःखी को उपर उठाने का सद्प्रयास स्वामी विवेकानन्द के जीवन एवं उनके आदर्शों से प्रभावित है। विट्ठल दास के चरित्र का वर्णन करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं - ''विट्ठल दास जाति सेवा की धुन में अपने सुख एवं स्वार्थ को भूल गये थे । कही अनाथालय के चन्दा जमा करते फिरते है। कही दीन विद्यार्थियों की छात्रवृत्ति का प्रबंध करने में दत्तचित्त है । जब जाति पर कोई भयंकर संकट आ पड़ता तो उनका देश प्रेम उमड़ पड़ता था । अकाल के समय सिर पर आँटे का गट्ठर लादे गाँव-गाँव घूमते थे । हैजे और प्लेग के दिनों में उनका अत्मसमर्पण और विलक्षण त्याग देख कर आश्चर्य होता है । अभी पिछले दिनों जब गंगा में बाढ़ आयी थी तो महीनों घर की सूरत नही देखी । अपनी सारी सम्पत्ति देश को अर्पण कर चुके थे, पर इसका तनिक भी अभिमान न था ।''[१] यहाँ हम देखते हैं कि विट्ठल दास रामकृष्ण देव एवं विवेकानन्द की मानवीय संवेदना एवं सेवाभाव से ओत - प्रोत हैं।

देश के गौरवपूर्ण अतीत,यहाँ की आदर्श मयी नारी और संस्कृतिक विराटता का

---

१. सेवा सदन - प्रेमचन्द पृ० ६५

जो भाव विवेकानन्द में था वही भाव व्यक्त करते हुए विट्ठल दास सुमन से कहते हैं -''सुमन तुम सच कहती हो बेशक हिन्दू जाति अधोगति को पहुँच गयी और अब तक उसकी मर्यादा की रक्षा की है । उन्हीं के सत्य और सुकीर्ती ने उसे बचाया है । केवल हिन्दुओं का लाज रखने के लिए लाखो स्त्रीयाँ आग में भस्म हो गयी हैं । यही वह विलक्षण भूमि है जहाँ स्त्रियाँ नाना प्रकार के कष्ट भोगकर अपमान और निरादर सह कर पुरुषों की अमानुषिक क्रूरता को चित्त में न लाकर हिन्दू जाति का मुख उज्ज्जवल करती थी।''[१] विवेकानन्द की सेवा और सन्तोष की भावना को व्यक्त करते हुए प्रेमचन्द सुमन के द्वारा कहलवाते हैं -- ''वह इन्द्रियों के सुख को ,अपने आदर को ,जीवन का मुख्य उद्देश्य समझती थी, उसे आज मालुम हुआ कि सुख, सन्तोष से प्राप्त होता है और आदर सेवा भाव से।''[२]

दासता एवं गुलामी की भावना का स्वामी विवेकानन्द मुखर विरोध करते थे । वे किसी भी स्तर पर एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य को अपने अधीन रखने के विरुद्ध थे । उनकी इस भावना को व्यक्त करते हुए कथानक के पात्र कुँवर कहते हैं– ''जो कुत्ते पालते हैं और अपने देशवासियों को नीच समझते हैं.........गुलामी के मानसिक ,आत्मिक, शरीरिक ,आदि विभाग करना भ्रान्तिकारक है । गुलामी केवल आत्मिक होती है और दशायें इसी के अन्तर्गत है।''[३]

देश के किसानों के प्रति स्वामी विवेकानन्द की तरह संवेदना व्यक्त करते हुए कुँवर आगे कहते है, ''वे हमारे दीन कृषक हैं जो अपने पसीने की कमाई खाते हैं,अपने जातीय भेष - भाषा और भाव का आदर करते हैं और किसी के सामने सिर नही झुकाते है ।''[४] यहाँ द्रष्ट्रव्य है कि स्वामी विवेकानन्द ने किसानों के द्वारा दुःख सहते हुए भी मौन रहकर लगातार काम करते रहने के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त किया था । स्वामी विवेकानन्द नारी उत्थान की बात सदैव किया करते थे एवं उनके प्रति आदर भाव रखने के लिए जन मानस को प्रेरित किया करते थे । नारी के प्रति उसी आदर भाव की इच्छा कथानक के पात्र गजानन्द के द्वारा इस तरह व्यक्त हुयी है-''ईश्वर वह दिन कब लावेगा कि हमारे जाति मे स्त्रियों का आदर होगा .... आदर या प्रेमविहीन महिला,महलों

१.	सेवा सदन - प्रेमचन्द	पृ०	६६
२.	वही	पृ०	६८
३.	वही	पृ०	१७८
४.	वही		

में भी सुख से नही रह सकती।''[१] इस प्रकार हम देखते हैं कि 'सेवा सदन' मे रामकृष्ण - विवेकानन्द की मानवता , राष्ट्रगौरव, देशगौरव, नारीउत्थान स्वाधीनता का महत्व एवं कृषकों के प्रति प्रेम - आदि भाव भरे पड़े हैं ।

द्विवेदी युगीन उपन्यासों का समग्र अध्ययन करने पर हम यह देखते हैं कि इस युग के उपन्यासों मे तिलिस्म एवं जासूसी की प्रवृत्ति की प्रधानता होने के बाद भी, अच्छे सामाजिक उपन्यासों का प्रणयन हुआ । अल्प संख्या में होने के बाद भी इनकी सार्थकता एवं सामाजिक उपादेयता को कम करके नहीं देखा जा सकता । इस युग के सामाजिक उपन्यासों में समाज एवं देश की विभिन्न समस्याओं के प्रति ध्यान आकृष्ट कराते हुए रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित होकर उनके समाधान का समुचित एवं प्राशंगिक मार्ग भी दर्शाते हैं । इस तरह द्विवेदी युग के सामाजिक उपन्यासों में रामकृष्ण - विवेकानन्द भावधारा के प्रभाव को सहज ही देखा जा सकता है ।

---

१. सेवा सदन - प्रेमचन्द पृ० २४५

(ग) का कहानी पर प्रभाव

हिन्दी साहित्य में कहानियों का प्रारम्भ द्विवेदी युग में ही हुआ। भारतेन्दु युग मे कहानियाँ नही लिखी गयीं। 'सरस्वती' (सन्१९००) के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी कहानियों का जन्म मान्य है। इस पत्रिका में शेक्सपियर के अनेकों नाटकों का अनुवाद कहानी रूप में प्रकाशित हुए। 'सिम्बलीन'(Cymbeline)[1], 'एथेन्स वासी टाइमन'(Tkimon of Athens)[2], 'पेरीक्लीज'(pericles)[3], 'कौतुकतमय मिलन'(Comedy of Errors)[4], जैसी रूपान्तरित कहानियाँ 'सरस्वती' के प्रारम्भिक अंकों में प्रकाशित हुई। इसके साथ ही साथ इसमें बहुत से संस्कृत नाटक भी कहानी रूप में प्रकाशित हुए जिनमें 'रत्नावली' तथा 'मालविकाग्निमित्र'की कहानियाँ उल्लेख्य हैं।

'सरस्वती' में हिन्दी की सर्वप्रथम आधुनिक कहानी का प्रकाशन 'इन्दुमती'[५] नाम से किया गया। यह पूर्णतया मौलिक कृति नही कही जा सकती क्यों कि इस पर शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक 'टेम्पेस्ट' (The tempest) की छाप बहुत स्पष्ट है परन्तु इसके लेखक किशोरीलाल गोस्वामी ने इसे पूर्णतया भारतीय वातावरण के अनुरूप ही प्रस्तुत किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'इन्दुमती' को वर्तमान शताब्दी की सर्व प्रथम मौलिक हिन्दी कहानी माना गया है। शुक्ल जी लिखते हैं –

''यदि मार्मिकता की दृष्टि से भाव प्रधान कहानियों को चुने तो तीन मिलती हैं 'इन्दुमती', 'ग्यारह वर्ष का समय', और 'दुलाईवाली' है। यदि इन्दुमती किसी बंगला कहानी की छाया नही है तो हिन्दी की यही पहली मौलिक कहानी ठहरती है। इसके उपरान्त 'ग्यारह वर्ष का समय' फिर दुलाईवाली का नंबर आता है।''[६]

१.	सरस्वती	वर्ष-१९००	अंक - जनवरी	
२.	वही		अंक - फरवरी	
३.	वही		अंक - मार्च, अप्रैल	
४.	वही		अंक - सितम्बर, अक्टूबर	
५.	वही		अंक - जनवरी	पृ० १७८
६.	हिन्दी साहित्य का इतिहास - राम चन्द्र शुक्ल			पृ० ६०३

'इन्दुमती' कहानी की नायिका इन्दुमती अपने पिता के साथ विन्ध्याचल के सघन वन में निवास करती है। उसने अपने छोटे से जीवन काल में केवल अपने पिता को देखा और प्यार किया था, सहसा एक दिन एक पेड़ के नीचे उसने देखा एक सुन्दर नवयुवक (अजय गढ़ का राजकुमार चन्द्रशेखर)जो पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहिम लोदी का काम तमाम कर भाग निकला था और भूखा प्यासा पेड़ के नीचे पड़ा था। प्रथम दर्शन में ही दोनो के हृदय में प्रेम का संचार हो उठता है । अनेक कठिनाईयों के बाद दोनो का विवाह सम्पन्न हो जाता है। इस तरह प्रेम को केन्द्र में रखकर हिन्दी की प्रथम कहानी की सृष्टि हुई।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय'[१] में दो मित्रों के भावपूर्ण आपसी संवाद एवं मित्र का उसकी स्त्री से संयोगपूर्ण मिलन एंव सामाजिक पीड़ा का कारुणिक चित्रण किया गया है। इस कहानी में मानवीय संवेदनाओ की उदात्त अभिव्यक्ति है । बंग महिला कृत 'दुलाई वाली' दो मित्रों के हास परिहास व हँसी मजाक का वर्णन है । वंशीधर का मित्र नवल किशोर नाना प्रकार के कार्यो द्वारा हँसने हँसाने का कार्य करता था । वंशीधर को रेल से साथ चलने का पत्र लिखकर समय पर वह स्वंय ही नही आता है जिससे वंशीधर उद्विग्न होता है। अंत में वंशीधर को पता चलता है कि रास्ते मे जो महिला मुँह ढ़के उसके पास बैठी थी वह और कोई नही नवलकिशोर ही था ।[२]

वृन्दालाल वर्मा कृत 'राखी बन्द भाई'[३] मे रुद्द सिंह को भीलों को भगाने पर सम्राट द्वारा ढेर सारा सोना व चाँदी मिलता है जिसके बटवारे को लेकर नागौर राज दिलीप सिंह से उनकी दुश्मनी हो जाती है । नागौर राज पर गयासुद्दीन के आक्रमण से उन पर विपत्ति आ पड़ती है जिससे बचने के लिए उनकी पुत्री पन्ना रुद्द सिंह के पास राखी भेजती है और रुद्द सिंह दुश्मनी भूल कर एक स्त्री (बहन) की याचना पर नागौर राज की सहायता करता है। इस सम्बन्ध में रुद्र सिह कहता है - ''एक स्त्री विपत में फँसी है वह निस्सहाय है । उसने एक वीर से अपना रक्षक बनने की प्रार्थना की है ।''[४]

१.	सरस्वती	वर्ष - १९०३	अंक - सितम्बर	पृ० ३०८
२.	वही	वर्ष - १९०७	अंक - जनवरी	पृ० १७८
३.	वही	वर्ष - १९०९	अंक - सितम्बर	पृ० ३९०
४.	वही	वर्ष - १९०९	अंक - सितम्बर	पृ० ३४३

यहाँ यह द्रष्टव्य है कि स्वामी विवेकानन्द दीन दुखी असहाय एवं नारी के सहायता के लिए सदैव प्रेरित करते थें, साथ ही साथ दुर्बलता और कायरता को त्याग कर वीर पुरुष बनने की बात करते थे। 'राखी बन्द भाई' कहानी में उनके इस भाव का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

गिरिजा दत्त बाजपेई कृत 'पति का पवित्र प्रेम'[१] में पूर्णतः प्रेम का ही वर्णन है। इसका कोई सामाजिक प्रदेय नही है, मात्र पाठकों का मनोरंजन ही इसका अभीष्ट है। इनकी एक अन्य कहानी 'पंडित और पंडितानी'[२] में बेमेल विवाह का वर्णन किया गया है। इसमें पंडित जी की उम्र ४५ वर्ष एवं पंडितानी की २५ वर्ष है। पंडित जी गंभीर रचना करना चाहते हैं और पंडितानी उनसे तोते के लिए जिद करती है। इस तरह से इस कहानी में विचार एवं उम्र से बेमेल विवाह का विरोध किया गया है। गोपाल राम की कहानी 'चौबे जी की ध्रुपद'[३] केवल मनोरंजन को ध्यान में रख कर लिखी गयी है।

हिन्दी कहानियों में कथ्यऔर शिल्प की दृष्टि से चरम उत्कर्ष चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' के 'उसने कहा था'[४] नामक कहानी में प्राप्त होता है। हिन्दी कहानियों में पूर्वदीप्तीपद्धति (Flash Back) का सर्वप्रथम प्रयोग इसी से प्रारम्भ होता है। इस कहानी में मानवतावाद की आत्मा का चरम स्पर्श है। अपने साथी सूबेदार सिंह एवं उसके पुत्र बोधासिंह के प्रति अतीव प्रेम व मानवता का प्रदर्शन करते हुए जमादार लहनासिंह युद्ध के समय मोर्चे पर उनकी रक्षा में अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देता है। यहाँ स्वामी विवेकानन्द के त्याग विशुद्ध प्रेम एवं मानवता के भाव का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित है। लहनासिंह के प्रेम एवं त्याग की भावना को इस कथन के द्वारा समझा जा सकता है - ''सुनिये तो सुबेदारीनी होरा को चिट्ठी लिखो तो मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था वह मैने कर दिया।''[५]

१.	सरस्वती	वर्ष - १९०३	अंक - जलवरी	पृ० १५
२.	वही	वर्ष - १९०३	अंक - दिसम्बर	पृ० ४१९
३.	वही	वर्ष - १९१४	अंक - अगस्त	पृ० ४४९
४.	वही	वर्ष - १९१५	अंक - जून	पृ० ३४१
५.	वही	वर्ष - १९१५	अंक - जून	पृ० ३४७

गुलेरी जी की एक अन्य कहानी 'घंटा घर'[१] में समाज की कुरीति व अंध - विश्वास पर तीक्ष्ण प्रहार किया गया है । अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए धर्म व पूण्य के नाम पर लोगों को भ्रमित करने पर चोट करते हुए गुलेरी जी कहानी में लिखते हैं -- ''पहले स्थल फिर जगह फिर दीवाल और फिर कौन सी दीवाल (उत्तर या दक्षिण) छूने से अधिक पूण्य होगा और अन्त में अपने व्यावसायिक लाभ के लिए वहाँ के लोगों ने कहा कि घंटाघर के घंटे की आवाज सुनने से ही पूण्य होगा ।''[२] यहाँ हम देखते हैं कि धर्म के वाह्य आडम्बर, कुरीति एवं अन्धविश्वासों के प्रति जो विरोध स्वामी विवेकानन्द के स्वर में मुखरित हुआ है कहानी के कथन से ही वही भाव अभिव्यंजित हो रहा है । तर्क और ज्ञान की कसौटी पर कसे बिना किसी भी मान्यता को मानने का स्वामी विवेकानन्द विरोध करते थे। 'घंटाघर' कहानी में उन्ही अंधी मान्यताओं का विरोध गुलेरीजी ने भी किया है। 'घंटाघर' पर अंधी आस्था रखने वाले लोगो पर व्यंग करते हुए वे लिखते हैं - ''यात्रा का चरम उद्देश्य बाहर की दीवाल को स्पर्श करना ही रह गया क्यों कि वह भी भाग्यवानों को ही मिलने लगा । ......और भी समय बीता घंटाघर सूर्य से पीछे रह गया। सूर्य क्षितिज पर आकर लोगों को उठाता और काम में लगाता घंटाघर कहता कि अभी सोये रहो।''[३]

गुलेरी जी की एक अन्य कहानी 'धर्म परायण रीछ' में दुष्ट व्याध की लगातार स्वार्थ के बाद भी रीछ का सेवा - भाव भी कम नही होता । इसमें रीछ भारतीय जनता एवं व्याध अंग्रेजी शासन का प्रतीक है । व्याध द्वारा यह कहने पर कि उसके पत्नी और बच्चे भूँखे है रीछ ने हाथ जोड़ कर कहा - ''नाथ! आज आपकी छुरिका त्रिवेणी में यह देह स्नान करके स्वर्ग को जाना चाहता है । यदि इस दुर्मांस से माता और भाई तृप्त हों और इस जड़ चर्म से उनकी जूतिया बने तो आप तत् सद्य करें........ व्याध ने बर्छी उठाकर रीछ के हृदयमे भोंक दी ।''[४] रीछ द्वारा सेवा उदारता व त्याग का महान प्रदर्शन व्यक्त किया गया है जो स्वामी रामकृष्ण देव एवं विवेकानन्द की भावधारा से मेल खाता है। 'सुखमय जीवन'[५] एवं 'बुद्धू का काँटा'[६] में प्रेम का सच्चा एवं सरल

१.	वैश्योपकारक	वर्ष - १९०४	संख्या - ८
२.	वही	वही	वही
३.	वही	वही	वही
४.	वही	वही	वही
५.	भारत मित्र	वर्ष - १९११	
६.	पाटलिपुत्र	वर्ष - १९१४	

वर्णन किया गया है । गुलेरी जी की अन्तिम किन्तु अधूरी कहानी 'हीरे का हीरा'[१] में नायक फौज का सिपाही है। चीन से लड़ाई में एक पैर कट जाने पर लकड़ी के पैर से ठक ठक की आवाज करते हुए घर आने कारुणिक चित्रण किया गया है । नायक के माध्यम से लेखक ने कहानी में स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रप्रेम एवं देश के प्रति समर्पण भाव को व्यक्त किया है ।

ज्वाला दत्त शर्मा की कहानी 'अनाथ बालिका'[२] मे डाक्टर (राजाबाबू) की मानवता एवं सेवा भाव का व्यापक वर्णन किया गया है। अनाथ बालिका (छोटी) की मृत्यु शय्या पर पड़ी रुग्ण माँ अपनी बालिका का हाथ डाक्टर को पालन पोषण एवं परवरिश के लिए पकड़वाती हुयी कहती है - ''राजाबाबू! तुम दीनबन्धु हो इसलिए ईश्वरवत पूज्य हो ।''[३] यहाँ स्वामी विवेकानन्द का जीव की सेवा करना ही ईश्वर की सेवा है तथा जीव ही शिव है - भाव कहानी के कथन के माध्यम से व्यक्त होता है । डाक्टर का भतीजा सतीश भी दीन - दुखी की सहायता एवं परोपकार की भावना से युक्त है। उसके व्यवहार के सम्बन्ध में कहानी कार लिखते हैं - ''परोपकार के लिए दत्त चित्त रहना उसका स्वभाव सा हो गया है । — अनेक गरीब विद्यार्थियों की उसने आर्थिक सहायता की है। किसी लड़के के रोगग्रस्त होने पर सहोदर वत उसने उसकी सुश्रुषा भी की है।''[४]

कहानीकार ने एक अन्य कहानी 'भाव परिर्वतन'[५] के माध्यम से यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि निःस्वार्थ सेवा भाव से कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है तथा क्रूर तम व्यक्ति का भी हृदय परिर्वतन हो सकता है। कहानी में राजाराम नाम का पात्र एक कूर और निष्ठुर जमींदार है जो किसानों और मजदूरों पर अनेक जुल्म और अत्याचार करता है । उसे प्लेग का रोग होने पर सभी ने उससे मुँह मोड़ लिया । उसकी इस दयनीय अवस्था में मदन मोहन नाम का गरीब छात्र निःस्वार्थ भाव से उसकी सेवा सुश्रुषा करता है। प्लेग के संक्रामक रोग होने के कारण डाक्टरों द्वारा रोगी से दूर रहने की सलाह पर भी मदनमोहन अपने प्राणो की परवाह न करते हुए राजाराम के प्लेग के गाठों की मवाद तक साफ करता था ।

१.	गुलेरी रचनावली - १	सं० डॉ मनोहर लाल		
२.	सरस्वती	वर्ष - १९१६	अंक - फरवरी	पृ० १०७
३.	वही	वही	वही	पृ० १०८
४.	वही	वही	वही	पृ० ११०
५.	वही	वर्ष - १९१६	अंक - मई	पृ० ३१३

यहाँ स्मरणीय है कि जब रामकृष्ण देव गले के असाध्यकैंसर रोग से ग्रस्त थे और उनके गले के घाव से निकलने वाले संक्रामक रोगाणुओं के द्वारा रोग ग्रस्त होने की संभावना के डर से डाक्टरों ने स्वामी विवेकानन्द को उनसे दूर रहने के लिए कहा तब स्वामी विवेकानन्द ने इन बातों का तीव्र प्रतिकार करते हुए अदम्य सेवा भाव से अपने गुरू की सुश्रुषा की । विवेकानन्द के इसी सेवा भाव से अनुप्राणित मदन मोहन की सेवा से क्रूर जमींदार का हृदय परिर्वतित हो जाता है । राजाराम जैसा स्वार्थी और निकृष्ट व्यक्ति भी दीन - दुखियों की सेवा की इच्छा करने लगा । वह कहता है – "यदि इस बिमारी से छुटकारा मिला तो दीन दुखियो की सेवा करने का मैं भी सौभाग्य प्राप्त करूँगा ।"[१]

राजाराम के इस हृदय परिर्वतन पर लेखक उसके मन में उपजे मानवीय गुणों का वर्णन करते हुए लिखता है -- "अब उसका हृदय पर - पीड़न से कोसों भागने लगा । दीनों की सहायता करना किसानों की रक्षा करना विधवाओं का पोषण करना और रोगियों की परिचर्या करना उसके मुख्य उद्देश्य बनें ।"[२]

विवेकानन्द के रुग्ण होने पर डाक्टरों द्वारा स्वास्थ्य लाभ के लिए दार्जिलिंग भेजे जाने पर अचानक बंगाल में प्लेग फैलने का समाचार सुन कर वे अपना प्रवास स्थगित कर प्राण - प्रण से रोगीयों की सेवा में लग जाते हैं, स्वामी विवेकानन्द की सेवा भाव का प्रत्यक्ष प्रभाव इस कहानी में देखा जा सकता है ।

ज्वाला दत्त की एक अन्य कहानी 'विरक्त विज्ञानानन्द'[३] मे भी मानव प्रेम, दीन दुखी की सहायता, भूखों को भोजन देना व अशिक्षितों में शिक्षा का प्रसार करना आदि भावनाएँ होने के कारण इसमें स्वामी विवेकानन्द की मानवता तथा जीव सेवा का प्रभाव परिलक्षित होता है । कहानी के नायक विज्ञानानन्द गाँव मे रह कर इनके उत्थान के लिए सेवा कार्य करते थे। सेवा भाव की व्याख्या करते हुए विज्ञानानन्द कहते हैं - "मनुष्य समाज की सेवा करना भी ईश सेवा करना ही है । मनुष्य प्रेम और ईश्वर प्रेम में कुछ भी भेद नही है ।"[४] स्वामी विज्ञानानन्द का यह कथन स्वामी विवेकानन्द की भावधारा से अनुप्राणित है ।

१.	सरस्वती	वर्ष - १९१६	अंक - मई	पृ० ३१६
२.	सरस्वती	वर्ष - १९१६	अंक - मई	पृ० ३१६
३.	वही	वही	अंक - फरवरी	पृ० ८५
४.	वही	वही	वही	पृ० ८७

कहानी के नायक विज्ञानानन्द के चरित्र का विश्लेषण करते हुए लेखक लिखते हैं -''वे अन्न धन से भूखों की सहायता करते और रोगियों की परिचर्या करते और भूले भटकों को सदुपदेश से सुमार्ग पर ले आते। इसलिए स्वामी जी सर्वप्रिय हो गये थे।''[१]यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ बातों को छोड़ कर कहानीकार ने कहानी के नायक स्वामी विज्ञानानन्द के चरित्र का संयोजन स्वामी विवेकानन्द के चरित्र से प्रभावित होकर दिया है।

हिन्दी साहित्य में कहानी विधा का चरमोत्कर्ष प्रेमचन्द के हिन्दी प्रांगण में पदार्पण करने से होता है। 'सरस्वती' मे प्रकाशित इनकी कहानी ईश्वरीय न्याय''[२] में जमीदार भृगुदत्त व उनके मुंशी सत्यनारायण का वर्णन है। जमींदार की मृत्यु के बाद उनकी सारी सम्पत्ति की देख भाल का गुरुतर दायित्व उनकी पत्नी द्वारा सत्य नारायण को सौप दी जाती है। मानवीय दुर्गुण के कारण सत्यनारायण के मन में लालच आ जाता हैऔर वह जमींदार के एक बड़े भू-भाग को हस्तगत करने के लिए कुटिल चाले चलने लगता है। विवाद बढ़ने पर बात न्यायालय तक पहुँच जाती है। साक्ष्य सत्यनारायण के पक्ष में होने पर न्यायालय द्वारा उसे जमीन का मालिक घोषित किया जाता है और यहीं कहानी में मार्मिक मोड़ आता है। न्यायाधीश द्वारा जमीन सत्यनारायण को सौपे जाने के बाद जमींदारनी उनसे कहती हैं - अब तो जमीन का आपके पक्ष में डिग्री हो गया किन्तु अब आप इतना कह दीजीए की जमीन किसकी है। इतनी बड़ी कुटिलता इतना बड़ा छल करके जमीन प्राप्त करने के बाद भी सत्य नारायण अपनी आत्मा की आवाज को मार कर केवल इतना ही नही कह सका कि हाँ जमीन मेरी है। उसकी सुषुप्त आत्मा जाग उठती है और वह कह उठता है कि जमीन आपकी है। असत्य पर सत्य की विजय होती है। कहानी के माध्यम से प्रेमचन्द ने मानव मन की दुर्बलता एवं कमजोरियों का सशक्त ढ़ग से उद्घाटन करते हुए पाठक को संन्देश दिया है कि अपनी सत्यनिष्ठा एवं ईमानदारी, तुच्छ भौतिकपदार्थो के समक्ष डिगने न दें। यहाँ हम देखते हैं कि रामकृष्ण देव एवं स्वामी विवेकानन्द में सत्यनिष्ठा के प्रति अपूर्व आग्रह था।

प्रेमचन्द की एक अन्य कहानी 'पंच परमेश्वर'[१] में न्याय, सत्य निष्ठा एवं दीन के

१.	सरस्वती	वर्ष-१९१६	अंक-फरवरी	पृ० ८८
२.	सरस्वती	वर्ष-१९१७	अंक-जनवरी	पृ० २८
३.	वही	वर्ष-१९१६	अंक-जून	पृ० ३८५

प्रति करुणा का भाव सशक्त रूप में व्यक्त किया गया है । जुम्मन शेख और अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता है । जुम्मन अपनी बूढ़ी मौसी का धन, जमीन लेने के बाद उसका अनादर करने लगता है। न उसे भोजन मिलता है और न ही वस्त्र। दीन दुखी बुढ़िया अपनी व्यथा व्यक्त करते हुए न्याय प्राप्त करने के लिए पंचो को बुलाती है। जुम्मन के प्रभाव के कारण कोई भी पंच उसके विरोध में बोलने का साहस न रखता था। पंचायत मे बुढ़िया अलगू चौधरी को ही अपना पंच चुन लेती है। पंच का दायित्व पाने के वाद अलगू मित्रता से बढ़ कर न्याय का पक्ष लेता है और वह कहता है - ''अगर जुम्मन को खर्च देना मंजूर न हो तो हिबहनामा रद समझा जाये..... दोस्ती, दोस्ती की जगह है मगर धर्म का पालन करना मुख्य है ।''[१]

कुछ समय व्यतीत होने पर अलगू चौधरी ने अपना एक बैल समझू सेठ को बेचा। समझू द्वारा बैल से अत्यधिक कार्य लेने पर बैल मर गया । फलतः समझू ने बैल का मूल्य देने से यह कहकर इन्कार कर दिया कि बैल रोगी था । विवाद बढ़ने पर पंचायत बुलाई गयी । अलगू और जुम्मन की पुरानी दुश्मनी को देखकर समझू ने जुम्मन को पंच चुना । पंच का गुरुतर दायित्व पाते ही जुम्मन का हृदय परिवर्तित हो गया। वह अपनी पूर्व शत्रुता को भूलते हुये न्याय व धर्म का पक्ष लेता है और फैसला अलगू के हक में देता है । कहानी के माध्यम से प्रेमचन्द मानवीय मूल्यों एवं सत्यनिष्ठा की उदात्त विवेचना की है जिसमें विवेकानन्द का प्रभाव देखा जा सकता है ।

'सज्जनता का दण्ड'[२] में प्रेमचन्द ने शिव सिंह की सज्जनता, सत्यनिष्ठा एवं ईमानदारी का प्रेरणास्पद वर्णन किया है । शिवसिंह की ईमानदारी से भ्रष्ट लोग त्रस्त थे। इस पर पत्नी ने टोका तो वे बोले - ''संसार जो चाहे कहे पर परमात्मा तो देखता है ।'' यहाँ हम शिवसिंह की ईश्वरपरायणता तथा सत्य के प्रति दृढ़ आस्थाभाव में रामकृष्ण देव एवं विवेकानन्द की भाव धारा का प्रभाव देखते हैं ।

'बलिदान'[३] नामक एक अन्य कहानी में प्रेमचन्द ने एक गरीब किसान की दीनता व असहायता तथा जमींदार के शोषण एवं अत्याचार का जीवन्त चित्रण किया है । मंगल

१.	सरस्वती	वर्ष-१९१६	अंक-जून	पृ० ३८९
२.	सरस्वती	वर्ष-१९१६	अंक-मार्च	पृ० १४०
३.	वही	वर्ष-१९१८	अंक-मई	पृ० २४२

सिंह (जमींदार) के शोषण से गिरधारी(कृषक) अन्ततः इतना टूट जाता है कि कुँए में कूदकर आत्म हत्या कर लेता है । कहानी के माध्यम से प्रेमचन्द मानवीय पीड़ा का कारुणिक वर्णन करते हुए प्रकारान्तर से दया एवं सेवा की प्रेरणा देते हैं ।

'पुत्र प्रेम' [१] शीर्षक कहानी में पुत्र के रुग्ण होने पर पिता धन के मोह के कारण पुत्र का समुचित इलाज नहीं कराता है । रोग असाध्य होने के कारण वह इलाज कराना तथा धन व्यय करना अनुचित समझता है । पुत्र की मृत्यु के पश्चात वह अपने इन विचारों पर लज्जित होकर पश्चाताप करता है । कहानी के माध्यम से प्रेमचन्द ने मानवता की रक्षा को भौतिकता की रक्षा से श्रेष्ठ सिद्ध किया है ।

विशम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' ने इस युग में अनेक सशक्त कहानियों का प्रणयन करके कहानी विधा को एक नयी ऊँचाई प्रदान की । 'रक्षा बंधन' [२] कहानी में माँ -बहन से विछड़े पुत्र तथा भाई की कारुणिक कहानी है, जिनका संयोग से अन्त में मिलन हो जाता है । 'बन्ध्या' [३] नामक एक कहानी में 'कौशिक' जी ने स्त्री के संतानहीन होने की पीड़ा का सजीव चित्रण किया है।

'ताई' [४] कौशिक जी की मानवीय संवेदना, प्रेम एवं अपनत्व से परिपूर्ण एक सशक्त कहानी है जिसमें स्वकेन्द्रित जीवन दृष्टि पर चोट करते हुए समष्टि के प्रति प्रेम भाव का प्रकटन किया गया है। श्यामजी दास की पत्नी रामेश्वरी देवी पुत्र न होने से दुःखी हैं । श्याम जी अपने छोटे भाई के पुत्र मनोहर से अतिशय प्रेम करते हैं जिससे उनकी पत्नी चिढ़ती हैं । एक दिन मनोहर पतंग की लालच में आंगन के मुंडेर पर लटक जाता है तथा ताई (रामेश्वरी देवी) की ओर बचाने के लिए कारुणिक दृष्टि से देखकर चिल्लाता है । ताई चाहती तो उसे बचा लेती किन्तु प्रेम एवं निष्ठुरता में अन्तर्द्वन्द्व के कारण बचाने में विलम्ब होने से मनोहर नीचे गिर जाता है । अपनी इस अमानवीयता पर ताई को गहरा आघात लगता है। इस घटना से उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है । अब वह मनोहर को पराया पुत्र न समझ कर अपने हृदय का टुकड़ा समझने लगी । कहानी के

१.	सरस्वती	वर्ष - १९२०	अंक - जून	पृ० ३२२
२.	सरस्वती	वर्ष - १९१६	अंक - अक्टूबर	पृ० २१५
३.	वही	वर्ष - १९१७	अंक - फरवरी	पृ० ६२
४.	वही	वर्ष - १९२०	अंक - जुलाई	पृ० ३१

माध्यम से लेखक, स्वामी विवेकानन्द के समष्टिवाद एवं विश्वप्रेम का अनुमोदन करता दिखता है।

'विधवा' [१] कहानी के माध्यम से विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक ने दो मित्रों के प्रेम आदर्श एवं त्याग का सजीव वर्णन किया है। डाक्टर रघुवीर आदर्शवादी है जिसके हृदय में समाज सेवा के प्रति उच्च विचार है। मित्र इन्द्रजीत की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी चन्द्रकला द्वारा डा. रघुबीर से विवाह करने के आग्रह पर वह मना कर देता है और चन्द्रकला को समाज सेवा का परामर्श देते हुये जीवन ब्यतीत करने के लिए कहता है - ''संसार में परोपकार से बढ़कर कोई मार्ग नही है। उसी से हृदय को सच्ची शांति मिल सकती है। मेरा विचार एक अनाथालय खोलने का है।'' [२]

कहानी के माध्यम से कौशिक जी ने रामकृष्ण देव एवं विवेकानन्द के मानववाद का अनुकरण किया है, जो चन्द्रकला के इस कथन में प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त हुआ है - ''बड़ी सुन्दर बात है निस्संदेह इस प्रकार मैं अपना जीवन और भी अधिक शांतिपूर्वक विता सकँगी। मैं तुम्हारे अनाथालय में आमरण, अनाथों की सेवा करूँगी।'' [३]

'शांति' [४] नामक कहानी के माध्यम से कौशिक जी ने यह बतलाने की कोशिश की है कि अपने समाजिक दायित्यों एवं कर्तब्यों से विमुख होकर शांति की प्राप्ति नहीं की जा सकती। राय रामचन्द्रदत्त धन एवं मान सम्मान से परिपूर्ण होने के बाद भी अशांत होकर शांति की तलाश में इधर उधर भटक रहे हैं। एक दिन एक भिखारी से मुलाकात होने पर भिखारी उनसे कहता है -- ''यदि शांति चाहते हो तो तुम्हारे सहस्रों भाई निर्धन हैं उन्हें धनवान बनाने की चेष्टा करो। उनको उद्योग धंधे सिखलाओ, विद्यालय पाठशालाएँ खुलवाओ, अनाथों के लिए अनाथालय, विधवाओं के लिए विधवा आश्रम खुलवाओ। गरीब किसानों को उनके खेती के व्यवसाय में सहायता दो। तुम्हें शांति मिलेगी।'' [५] कौशिक जी ने भिखारी के इस कथन के माध्यम से विवेकानन्द की

१.	सरस्वती	वर्ष - १९२०	अंक - मार्च	पृ० १६५
२.	सरस्वती	वर्ष - १९२०	अंक - मार्च	पृ० १७०
३.	वही	वर्ष - १९२०	अंक - मार्च	पृ० १७०
४.	वही	वर्ष - १९२०	अंक - फरवरी	पृ० ९८
५.	वही	वर्ष - १९२०	अंक - फरवरी	पृ० १०२

समाजिक भावधारा का निचोड़ कहलवा दिया है। स्वामी जी उद्योग धन्धों के विकास शिक्षा के प्रसार एवं अनाथ असहाय के प्रति जो चिन्तन रखते थे कहानी के माध्यम से लेखक ने उसी चिन्तन को व्यक्त किया है।

भिखारी की इन बातों का रामचन्द्रदेव पर गहरा प्रभाव पड़ा और उनकी जीवन दृष्टि बदल गयी। अब उनका धन व समय अनाथालय व पाठशाला खोलने, में शिक्षा के प्रसार, किसानों की आर्थिक सहायता आदि कार्यों में व्यय होने लगा। इन कार्यों को करके अब वे परम शांति का अनुभव करने लगे।

'भ्रम'[१] कहानी के माध्यम से कौशिक जी ने वाह्य एवं स्थूल प्रेम की तुलना में आन्तरिक एवं सूक्ष्म प्रेम की महत्ता प्रतिपादित की है। पढ़े लिखे नौजवान का विवाह कुरूप महिला से होने पर वह उससे घृणा करता था। रोगग्रस्त होने पर महिला के त्याग एवं सेवाभाव से उसका ह्दय परिवर्तन हो जाता है तब वह समझ पाता है कि प्रेम वाह्य सौन्दर्य में नही अपितु त्याग एवं सेवाभाव में है। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की कहानियों का अवलोकन करने के पश्चात हम पाते है कि उनमें रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा का गहरा प्रभाव है।

बदरीनाथ भट्ट ने अपनी कहानी 'हिन्दी का काम कौन सम्भालेगा' [२] के माध्यम से देश में ब्याप्त अभाव व बेकारी को दूर करने के लिए कर्म करने की शिक्षा दी है, जो विवेकानन्द के कर्मवाद से प्रभावित है। 'गूंगी' [३] कहानी के माध्यम से पदुम लाल पुन्ना लाल बख्शी एक अनाथ असहाय गूंगी बालिका का कारुणिक चित्रण करके असहायों के प्रति दया एवं सहयोग करने का भाव पैदा करते है जो रामकृष्णदेव एवं विवेकानन्द की भावधारा से अनुप्राणित है।

द्विवेदी - युगीन समग्र कहानियों का अवलोकन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि द्विवेदी युग कहानी विधा का प्रारम्भिक युग होने के कारण शुरुआती कहानियों में न तो कोई सामाजिक संदेश है और न ही रचना विधान की गरिमा। पाठकों का मनोरंजन मात्र ही

१.	सरस्वती	वर्ष - १९१९	अंक - दिसम्बर	पृ० १६५
२.	सरस्वती	वर्ष - १९१६	अंक - अप्रैल	पृ० २३६
३.	वही	वर्ष - १९१७	अंक - अप्रैल	पृ० १९६

नयी दिशा देने का प्रयत्न करते हैं, जो रामकृष्ण - विवेकानन्द की भावधारा से ओत - प्रोत है। यद्यपि जयशंकर प्रसाद की पहली कहानी पुस्तक 'छाया (१९१२) आलोच्य युग में ही प्रकाशित हुयी किन्तु इन कहानियों में ऐतिहासिक एवं प्रेमपरक कथानकों की प्रमुखता होने के कारण वर्ण्य विषय मे इनका स्थान नहीं आता।

अन्ततःहम कह सकते हैंकि द्विवेदीयुगीन कहानीकारों ने रामकृष्ण एवं विवेकानन्द के मानवतावाद, जीवसेवा, अनाथ एवं दीन - दुःखी के उद्धार, नारी उत्थान, शिक्षा का प्रसार, कृषक मजदूरों का कल्याण, निस्वार्थ सेवा भाव, अंधविश्वास एवं कुरीतियों का विरोध आदि भावनाओं को अपनी कहानी का वर्ण्य विषय बना कर समाज को प्रगति के पथ पर ले जाने का सार्थक प्रयत्न किया।

(घ) का नाटक पर प्रभाव

द्विवेदी युग को नाटक के विकास की दृष्टि से अन्धकार युग कहा जा सकता है। जहाँ भारतेन्दु ने सुरुचिपूर्ण साहित्यिक नाटकों के लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था और उनके सहयोगी साहित्यकार नाटक-रचना को साहित्यिक प्रतिभा की कसौटी मानते थे, वहाँ भारतेन्दु के बाद लगभग पच्चीस वर्षो की कालावधि में हिन्दी नाटक साहित्य -ह्रासोन्मुख रहा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद जयशंकर प्रसाद के द्वारा पुनः नाटक का विकास आरम्भ किया जाता हैं।

द्विवेदी युग के नाटककारों की असफलता के अनेक कारण थे। उस समय भाषा का स्वरूप निश्चित हो रहा था। लेखकों को अनायास ही यशस्वी बन जाने की चाह थी। कहानी, उपन्यास, निबन्ध आलोचना आदि अपेक्षाकृत कम कष्टसाध्य थे। अतः अधिकांश लेखकों का उस ओर झुक जाना सर्वथा स्वाभाविक था। नाटक अधिक दुस्साध्य था। उस समय महत्वाकांक्षी या यशोभिलाषी नाटकार के लिये यह अनिवार्य था कि वह उपयोगिता तथा कथा की दृष्टि से सुन्दर नाटक लिखें और विभिन्न स्थानों में उसका सफल अभिनय भी किया जाय। अभिनय की आवश्यकता इसलिये थी कि तत्कालीन हिन्दी पाठक समाज ने नाटक को सर्वांश में ही दृश्य काव्य मान रखा था। साधारण कोटि के नाटकों को पढ़ने में उन्हें कोई आनन्द नहीं मिल सकता था। उन्होंने नाटक कम्पनियों द्वारा अभिनीत नाटकों को देखने में ही अधिक मनोरंजन समझा। इन कठिनाइयों के कारण श्लाघ्य नाटककार होना अति कष्टसाध्य था और उदीयमान लेखक इतनी कठोर साधना के लिये प्रस्तुत न थे।

इस युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की भाँति कोई भी पथ प्रदर्शक सिद्ध नाटककार नहीं हुआ। युग नायक द्विवेदी जी का प्रभाव उस युग के केवल भाव पक्ष पर ही नहीं अभाव पक्ष पर भी पड़ा है। उन्होंने, कविता, कहानी, जीवनचरित, निबन्ध, आलोचना आदि विषयों की ओर ध्यान दिया और फलस्वरूप उनके द्वारा शिक्षित, प्रेरित या प्रोत्साहित कवियो तथा लेखकों ने उन विषयों की सुन्दर रचनाएँ की, परन्तु नाटक के क्षेत्र में केवल नाट्यशास्त्र नामक नन्ही सी पुस्तिका लिखने के उपरान्त उन्होंने उसकी ओर फिर कोई ध्यान नहीं दिया। युग के साहित्य नेता की इस उदासीनता के कारण उनके अनुगामी साहित्यकारों ने नाटक रचना को विशेष महत्व नहीं दिया।

संख्या की दृष्टि से आलोच्य काल में लिखें गये नाटकों की संख्या कम नही है, किन्तु महत्व की दृष्टि से वे नगण्य हैं। इस युग के नाटकों में पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रभाव ज्यादा हैं । पौराणिक पात्रों में 'कृष्ण चरित' एवं 'राम-चरित' सम्बन्धी अनेक नाटकों का प्रणयन किया गया 'कृष्ण-चरित' सम्बन्धी नाटकों में राधाचरण गोस्वामी कृत'श्रीदामा' (१९०४), शिवनन्दन सहाय कृत 'सुदामा' (१९०७), बनवारी लाल कृत- 'कृष्ण कथा' व 'कंस वध ' (१९०९) , ब्रजनन्दन सहाय कृत 'उद्धव' (१९०९) और नारायण मिश्र कृत, 'कंसवध'(१९१०) उल्लेखनीय हैं ।

रामचरित सम्बन्धी नाटकों में राम नारायण मिश्र कृत 'जनक बाड़ा ' (१९०६), गंगा प्रसाद मिश्र कृत, 'रामाभिषेक' (१९१०) गिरधर लाल कृत 'राम-वनयात्रा' (१९१०) नारायण सहाय कृत 'रामलीला'(१९११) और राम गुलाम लाल कृत 'धनुष यज्ञ लीला' (१९१२) महत्वपूर्ण हैं । अन्य पौराणिक पात्रों एवं घटनाओं को लेकर लिखे गये नाटकों में महावीर सिंह का 'नलदमयन्ती (१९०५), गौरचरण गोस्वामी का 'अभिमन्यु-वध' (१९०६) सुदर्शनाचार्य का'अनर्ध नल चरित' (१९०६) बाँके बिहारी का 'सावित्री नाटिका' (१९०८) बालकृष्ण भट्ट का 'वेणुसंहार'(१९०९), लक्ष्मी प्रसाद का 'उर्वशी' (१९१०), जयशंकर प्रसाद का 'करुणालय', हरिदास मणिक का 'पाण्डव-प्रहार' (१९१७), बदरीनाथ भट्ट का कुरुवन दहन (१९१५) तथा माखन लाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन-युद्ध' (१९१८) उल्लेखनीय हैं ।

उपर्युक्त नाटकों में पौराणिक आख्यानों एवं चरित्रों के माध्यम से जनता को उपदेश देने की प्रवृत्ति ही प्रधान है एवं इनमें सामाजिक मूल्यों एवं समस्याओं की कोई चर्चा नहीं की गयी है, जिससे इन नाटकों का समाज तथा साहित्य में कोई महत्व नहीं है । समस्त पौराणिक नाटक में बदरी नाथ भट्ट के 'कुरुवन दहन' (१९१५) को थोड़ी सी ख्याति प्राप्त हुयी है। इसमें दुर्योधन की मृत्यु महाभारत के आधार पर दिखाई गयी है । इस नाटक की मूल कथा का प्रारम्भ महाभारत के उद्योग पर्व से होता है । कंचुकी भीम को यह सूचित करता हैं कि दुर्योधन की सभा में कृष्ण का सन्धि प्रस्ताव लेकर जाना निष्फल हो गया है । वहाँ से लेकर कौरवों के पूर्ण पराजय तथा दुर्योधन के अन्तिम क्षण की कथा का वर्णन इस नाटक में किया गया है। नाटक का मूल कथ्य सत्य की असत्य पर विजय हैं ।

द्विवेदी युग का सर्वाधिक सफल एवं महत्वपूर्ण नाटक, माखन लाल चतुर्वेदी कृत 'कृष्णार्जुन-युद्ध' (१९१८) है। इसमें एक आश्रित निरपराधी जीव की प्राण रक्षा के लिये कृष्ण व अर्जुन के मध्य युद्ध का वर्णन किया गया हैं। ऋषि गालव गंगा स्नान के बाद सूर्य को जल देने के लिये अंजुलि में जैसे ही जल लेते है, वायु मार्ग से जा रहे गन्धर्व के पान का पीक भूलवश उस जल में गिर जाता है। ऋषि गालव क्रुद्ध होकर कृष्ण के पास पहुँचते हैं और कहते हैं - " जो राजा प्रजा के दुखों का स्मरण नहीं रखता वह राज्य को नाश की ओर दौड़ाता है।"[१] इस सूक्त वाक्य के आधार पर वे कृष्ण को सारी कथा सुनाते हैं, जिसे सुनकर वे क्रुद्ध होकर गन्धर्व को एक दिन के अन्दर मृत्युदण्ड देने की घोषणा कर देते हैं। गन्धर्व यह बात सुनकर, अत्यन्त भयभीत होकर नारद के पास जाता है और अपनी भूल के लिये दुःख प्रकट करता है, जिससे नारद उसे बचाने का संकल्प ले लेते है।

विभिन्न घटनाओं के बाद अंततः कृष्ण से गन्धर्व को बचाने के लिये अर्जुन उनसे युद्ध करते हैं तथा शंकर, पार्वती, ब्रह्मा, सरस्वती आदि देवगण अर्जुन का साथ देते हैं। नाटक के माध्यम से कमजोर व दीन दुःखी की सहायता का सन्देश दिया गया है जो रामकृष्ण एवं विवेकानन्द की सेवा व सहायता की भावना से अनुप्राणित है। इसके साथ इस नाटक में वर्तमान राजनीतिक समस्याओं का भी सुन्दर चित्रण किया गया है। तत्कालीन भारत की राजनैतिक परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुये कूटनीतिक चालबाजी का वर्णन करते हुये नाटक का पात्र 'यम' 'इन्द्र' से कहता हैं, " देवराज' मैं, सब महत्वाकांक्षी मदाधों को आपस में लड़वाता हूँ। आपसी डाह से युद्ध की अग्नि सुलग उठती है और उनका नाश हो जाता है- जैसा कि अभी महाभारत के युद्ध में हुआ"[२] इस कथन के द्वारा लेखक देश में व्याप्त ईर्ष्या व द्वेष का वर्णन करता हैं। यहाँ यह द्रटव्य है कि स्वामी विवेकानन्द देश की अवनति व दुर्दशा का कारण ईर्ष्या व आपसी द्वेषभाव को भी मानते हुये इसे दूर कने के लिये देशवासियों को प्रेरित करते थे। लेखक पर वह प्रभाव देखा जा सकता है।

'दीन-दुःखी' व 'पीड़ित-शोषित' की सहायता करना, रामकृषदेव स्वामी

---

१. माखन लाल चतुर्वेदी रचनावली, सं० श्री कान्त वर्मा, भाग १ पृ० २३७
२. वही पृ० २४६

विवेकानन्द मानव का प्रथम कर्तव्य बतलाते हुयें इनकी सेवा एवं सहयोग के लिये जन मानस को प्रेरित करते रहते थे। 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक में लेखक ने 'इन्द्र', 'नारद', 'पार्वती' व 'सरस्वती' के माध्यम से यही भाव व्यक्त किया हैं । नाटक में नारद, इन्द्र से कहते हैं -, " जो दुःखी के दुःख को न बाँटे,ऐसे हृदय को धिक्कार, आश्रित की रक्षा न करे ऐसे नीचों को धिक्कार, अत्याचारों को दृढ़ होकर हटा न सके तो क्यो न इन्द्र से होये, उसको गिन कर लाख बार धिक्कार।"[१] दीन दुःखी की सेवा एवं मानवता से अभिप्रेरित होकर नाटक के पात्र इन्द्र कहते है-"दुःखी का दुःख देखकर न पसीजे वह भी कोई हृदय है ? आश्रितों की रक्षा न कर सके वह भी कोई जीवन है।?"[२]

अनाथों की पीड़ा की अनुभूति, एवं विधवाओं के आँसू देखकर जो भाव विह्वलता रामकृष्ण देव एवं स्वामी विवेकानन्द में पायी जाती है वही भाव विह्वलता माखनलाल चतुर्वेदी ने 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक के पात्र 'पार्वती' के माध्यम से व्यक्त कर अपने ऊपर रामकृष्ण एवं विवेकानन्द की भावधारा के प्रभाव को प्रकट किया है -" अनाथों की पुकार विधवाओं के आँसू घायलों का कराहना और भू प्रदेशों की दुर्दशा मुझे विह्वल करती है ।"[३] रामकृष्णदेव एवं विवेकानन्द ने कभी भी किसी धर्म, जाति एवं वर्ग आदि का विरोध नही किया और न ही अपने धर्म आदि की सर्वोत्कृष्टता के प्रति गर्वोक्तिपूर्ण दुराग्रह ही रखा । सभी के प्रति निष्पक्ष रूप से समानता के भाव के कारण ही इस सत्य के भाव की अभिव्यक्ति नाटक में 'सरस्वती' के माध्यम से इस तरह हुई है - " पक्षपात, स्वार्थ, जातीयता, गर्व आदि के कारण बड़े-बड़े विद्वान भी केवल एकांगी बातें सिद्ध करने में अपनी शक्ति खर्च किया करते हैं और सत्य पर कुठार चलाते हैं।"[४]

रामकृष्णदेव एवं विवेकानन्द के धर्म तथा चरित्र के महत्व को दर्शाते हुए नाटककार सरस्वती के माध्यम से कहता है-" बिना धार्मिक उन्नति के चरित्रबल नही प्राप्त हो सकता और चरित्रबल के अभाव में बड़े से बड़ा विद्वान भी इन विकारों की बलि हो जाता है।"[५]

स्वामी विवेकानन्द दीनों एवं निर्बलों में अन्तर्निहित असीम सामर्थ्य एवं अदम्य

---

१. माखन लाल चतुर्वेदी रचनावली, सं० श्री कान्त वर्मा, भाग १ पृ० २५०
२. वही पृ० २४९
३. वही पृ० २७३
४. वही पृ० २७५
५. वही पृ० २७५

शक्ति को पहचानते थे । वे कहते थे -" सत्तू खाकर जो शान्तभाव से रात-दिन अपने काम में लगे हैं, उन्हें यदि भर पेट भोजन मिला तो ये पूरी दुनिया को उलट देंगे ।" स्वामी विवेकानन्द का यह भाव नाटक में नारद के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त हुआ है- " बड़ी सी बड़ी शक्ति की स्वेच्छारिता को रोकने की समार्थ्य निर्बलों में भी उत्पन्न हो सकती है।"[१]

इस तरह हम देखते हैं कि द्विवेदी युग के सर्वोत्कृष्ट एवं लब्धप्रतिष्ठ नाटक 'कृष्णार्जुन-युद्ध' में रामकृष्ण देव एवं विवेकानन्द की राष्ट्रीय, धार्मिक एवं सामाजिक भाव धारा का व्यापक प्रभाव पड़ा है ।

द्विवेदी युगीन ऐतिहासिक नाटको में गंगाप्रसाद गुप्त का 'वीर -जयमल' (१९०३), वृन्दाबन लाल वर्मा का 'सेनापति ऊदल' (१९०९), बद्रीनाथ भट्ट का 'चन्द्रगुप्त'(१९१५), कृष्ण प्रकाश सिंह का 'पन्ना' (१९१५), जयशंकर प्रसाद का 'राजश्री'(१९१५) आदि उल्लेखनीय हैं । इन नाटकों में 'राजश्री' को छोड़कर न तो ऐतिहासिक वातावरण का निर्माण ही हुआ है और न ही इतिहास तत्व की रक्षा ही । इन नाटकों के द्वारा ऐतिहासिक चरित्र के माध्यम से जनता में राष्ट्र प्रेम, देशभक्ति, न्यायप्रियता एवं साहस, पराक्रम जैसे मानवीय गुणों का जनमानस में प्रसार करने का प्रयत्न किया गया है। ऐतिहासिक पात्रों द्वारा व्यक्त मानवीय गुणों में रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा के प्रभाव को देखा जा सकता है ।

इस युग के सामाजिक उपादानों पर आधृत नाटको में प्रताप नारायण मिश्र कृत 'भारत दुर्दशा' (१९०२), भगवती प्रसाद कृत 'वृद्ध विवाह' (१९०५), जीवानन्द शर्मा कृत 'भारत-विजय' (१९०६), कृष्णानन्द जोशी कृत 'उन्नति कहाँ से होगी'(१९१५), बदरी नाथ भट् कृत 'चुंगी की उम्मीदवारी' (१९१४) और मिश्र बन्धु कृत 'नेत्रोन्मीलन (१९१५) उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में सामयिक , सामाजिक राजनीतिक जीवन की विकृतियों को उभारने की चेष्टा की गयी है । इन नाटकों का लक्ष्य समाज सुधार करना है ।

प्रतापनारायण मिश्र के नाटक 'भारत दुर्दशा' में तत्कालीन समाज में अंग्रेजी दासता

---

१. माखन लाल चतुर्वेदी रचनावली, सं० श्री कान्त वर्मा, भाग १ पृ० २८०

के कारण व्याप्त विसंगतियों का वर्णन किया है । इस नाटक में प्रतीक शैली के द्वारा परतंत्र भारत की समस्याओं का जीवन्त चित्रण किया गया है, जो विवेकानन्द के राष्ट्रीय चिन्तन से मेल खाता है ।

बद्रीनाथ भट्ट के नाटक 'चुंगी की उम्मीदवारी' (सन १९१४) में समाज की विसंगतियों पर प्रहसन के माध्यम से व्यंग किया गया है । इस प्रहसन में नगर- पालिका के निर्वाचन का चित्र यथार्थवादी पद्धति पर, हास्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है । मेम्बरी के अनेक प्रत्याशी चुनाव में किसी भी तरह चुने जाने के के लिए अधिक से अधिक वोटों को प्राप्त करने की कोशिश करते हैं । इसके लिए वे प्रत्येक वोटर के पास जाते हैं । हर प्रत्याशी वोट को प्राप्त करने के लिए विविध पद्धति अपनाता है । इस निर्वाचन पद्धति में प्रत्याशी अपनी मर्यादा तक की तिलांजलि दे देता है । मतदाता प्रत्याशियों से खीझकर यह निश्चय करता है कि, मत किसी को भी न दिया जाय । वोट डालने की निश्चित तिथि पर अनेक प्रत्याशी मतदाता को अपनी ओर खींचते हैं । इस चक्कर में दो पक्षों में मार - पीट हो जाती है । यहीं इस प्रहसन का अन्त हो जाता है । इस प्रहसन के माध्यम से मानव में निहित स्वार्थ, लालच, एवं स्वकेन्द्रित सुख की भावना को उद्घाटित करते हुए परोक्ष रूप में जनमानस को इससे बचने की प्रेरणा दी गयी है । यहाँ द्रष्टव्य है कि रामकृष्ण देव एवं विवेकानन्द दूसरों की उपेक्षा करके स्व उत्थान की संकुचित भावना का विरोध करते थे ।

कृष्णानन्द जोशी के नाटक 'उन्नति कहाँ से होगी' (सन १९१५) में ग्रामीण स्त्रियों की अज्ञानता का वर्णन किया गया है । ग्रामीण लोग मिलकर ग्राम सुधार के लिए 'जाति सुधारिणी समिति' का निर्माण करते हैं; जिसका उद्देश्य स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार एवं बाल - विवाह का विरोध करना है । इस नाटक में विवेकानन्द के नारी उत्थान की भावना, उनमें शिक्षा का प्रसार तथा बाल- विवाह का विरोध जैसी भावना के प्रभाव को स्पष्ट देखा जा सकता है ।

मिश्रबन्धु कृत नाटक 'नेत्रोन्मीलन' (सन १९१५) पूर्णतः सामाजिक नाटक है । इसमें सामाजिक समस्याओं पर गम्भीरता से विचार किया गया है । इसके पात्र हिन्दू तथा मुसलमान दोनों हैं । प्रजा में अदालतों का क्या रोब और भय है, उसके अधिकारी वर्ग किस प्रकार के हैं,

वकीलों का पेशा कैसा होता है, वादी प्रतिवादी किस प्रकार उनके चंगुल में फँस जाते हैं और अन्त में उनकी क्या दशा होती है, आदि विषयों पर इस नाटक मे अच्छा प्रकाश डाला गया है। झगड़े और मार - पीट से अपव्यय, वकीलों और गवाहों की सिफारिश, अधिकारियों की रिश्वत खोरी से परेशान होकर, विजेता और पराजित दोनो पक्ष जब अपव्यय के कारण निर्धन हो जाते हैं , तब उनकी आँखें खुलती हैं। इस नाटक के माध्यम से प्रछन्न रूप से प्रेम, सामानता एवं भाईचारे का संदेश दिया गया है, जो रामकृष्ण देव एवं विवेकानन्द, भाव-धारा का उत्स है।

बेचन शर्मा 'उग्र' के नाटक 'महात्मा ईशा' (१९१८) में भारत की गौरवपूर्ण सांस्कृतिक परम्परा पर प्रकाश डालते हुए उसके महत्व दर्शाया गया है। 'महात्मा ईशा' एक ऐतिहासिक सिद्ध पुरुष हैं और उनकी अहिंसा, विश्व प्रेम, शांति , अतिमानवता, जन-कल्याण आदि भव्य भावनाओं पर भारतीय संस्कृति एवं यहाँ के महापुरुषों का प्रभाव, नाटक में दर्शाया गया है। भारत की विशिष्टता का वर्णन करते हुए ईशा कहते हैं - "क्या पृथ्वी के अन्य किसी भाग में ऐसे मनुष्य मिल सकते हैं ? कदापि नहीं! यहाँ का एक -एक प्राणी देवता है , एक -एक स्थान स्वर्ग है।"[१]

नाटक के एक अन्य पात्र ' सन्तोष' पाश्चात्य देशो की तुलना में भारत की विशिष्टता का वर्णन करते हुए कहते हैं - "ईश, यह आर्य भूमि सज्जनता, उदारता, और मित्रता की जननी है। यहाँ के लोग अतिथियों को देवता से भी श्रेष्ठतर मानते हैं। अभी तुम्हारे पश्चिम देश के दूषित वायु का संचार इधर-उधर नहीं हुआ।"[२] ईशा एवं सन्तोष के कथन के आलोक में स्वामी विवेकानन्द के देश -प्रेम, राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक गौरव, पाश्चात्य देशों की तुलना में भारतीय चिन्तन एवं विचारों की विशिष्टता का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

द्विवेदी-युग नाटक की दृष्टि से अन्धकार युग होने के बाद भी इस काल में जो भी पौराणिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक नाटकों का प्रणयन किया गया उन पर रामकृष्णदेव एवं विवेकानन्द की मानवता, समानता, दीन-दुखी की सेवा, नारी उत्थान, राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक गौरव आदि का प्रभाव प्रत्यक्षतः दृष्टिगोचर होता है।

---

१. महात्मा ईशा बेचन शर्मा 'उग्र' पृ० ४
२. वही पृ० ६

षष्टम् अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

सामान्यतः मनुष्यों में दो तरह के व्यवहार देखे जाते हैं। एक तो पूर्णतः संसार में रच-पच कर सांसारिक सुखोपभोग की प्राप्ति करने की चेष्टा करता है और दूसरा समाज से दूर, गुफाओं और कन्दराओं में बैठकर आत्मोत्थान की साधना करता है । जीवन के इन दो धाराओं के बीच कुछ ऐसे सत्पुरुष भी दृष्टिगोचर होते हैं, जो अपने विशिष्ट जीवन-शैली एवं विचारों से, एक नयी तीसरी धारा प्रवाहित करते हैं; जिसमें जनकल्याण में ही स्वकल्याण की भावना निहित होती है।

रामकृष्ण देव एवं विवेकानन्द ऐसे ही सत्पुरुष हैं जो धर्म की ऊँचाइयों पर अवस्थित होने के बाद भी मानव मूल्यों की अवहेलना नहीं करते । जीवन के उस पार के गूढ़ रहस्यों को तत्व से जान लेने के बाद, ये महापुरुष अपनी प्रबल संवेदनाओं के कारण, वर्तमान जीवन की उपेक्षा नहीं करते। मानवमात्र की पीड़ा को इन्होंने अपनी पीड़ा बनाकर जीवन पर्यन्त उसे दूर करने का सतत् प्रयत्न किया ।

रामकृष्ण देव ने विभिन्न धर्मों की साधना करने के पश्चात् यह जान लिया कि सभी धर्म तत्वतः एक ही हैं। उसके वाह्य क्रिया - कलाप धर्म के मूल तक पहुँचने के भिन्न-भिन्न रास्ते हैं। समाज में धर्म को जहाँ, विभिन्न पन्थों, मतों एवं सम्प्रदायों में विभाजित कर द्वन्द्व का विषय बना दिया गया था, एसे बिखराव के युग में रामकृष्ण देव अपने विचारों के द्वारा सभी धर्मों का समन्वय करते दीखते हैं । रामकृष्ण देव ईश्वर को दूरस्थ किसी लोक का वासी मानने की अपेक्षा प्रत्येक जीव में ही उनका दर्शन करते हैं। इनके अनुसार प्रत्येक जीव ही शिव है। जीव की सेवा ही ईश्वर की पूजा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रामकृष्ण देव जीव की सेवा को ही ईश्वर प्राप्ति का साधन बतलाते हैं।

स्वामी विवेकानन्द अपने गुरू की जीव सेवा की भावना से अनुप्राणित होकर जीवनपर्यन्त मानव के कल्याण में निरत रहे। ये धर्म एवं वेदान्त का, प्रत्येक जीव के कल्याण से

जोड़कर 'नववेदान्त' के रूप में उसकी नवीन व्याख्या करते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने मानव कल्याण की भावना के साथ– साथ राष्ट्र गौरव और राष्ट्र-उत्थान की भावना को भी पर्याप्त महत्व दिया। इनका मत है कि राजनीतिक चेतना एवं स्वतन्त्रता के बिना मानव का हित नहीं हो सकता। मानव मात्र के प्रति किसी भी तरह की परतंत्रता और बन्धन का ये विरोध करते हैं। अपनी मातृभूमि के प्रति इनके मन में अतीव प्रेम है।

विदेश प्रवास के समय वे अपने देश का स्मरण कर रोने लगते थे। मूलतः सन्यासी होने के कारण इन्होंने राजनैतिक आन्दोलन में प्रत्यक्ष रूप से भाग तो नहीं लिया परन्तु तद्युगीन सभी राजनेता, जो राजनीति को प्रभावित कर रहे थे, इनके कार्यों और विचारों से पूर्णतः प्रभावित थे। लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, रवीन्द्र नाथ टैगोर, सुभाषचन्द्र बोस आदि अग्रगण्य नेताओं ने स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रीय विचारों से प्रभावित होने का, समय-समय पर वर्णन किया है।

स्वामी विवेकानन्द ने तद्युगीन समाज में व्याप्त कुरीति, कुप्रथा, अन्धविश्वास एवं जड़ता का विरोध किया। समुद्र यात्रा करके स्वामी जी ने इसके प्रति व्याप्त अन्धविश्वास का विरोध करते हैं। मानव जाति के प्रति, जाति व वर्ण के आधार पर ये किसी भी तरह के भेद - भाव का विरोध करते हैं। जाति का आधार ये जन्मगत् न मानकर कर्मगत् मानते हैं। इनके अनुसार ब्राह्मण सर्वोत्कृष्ट जाति है और सभी को ब्राह्मण बनने का अधिकार है। नारी जाति के प्रति रामकृष्ण देव एवं विवेकानन्द के मन में आदर का भाव था। रामकृष्ण देव समस्त नारी जाति में मातृभाव का दर्शन करते हैं। स्वामी विवेकानन्द नारियों को उनके आदर्श का बार-बार स्मरण कराते हुए कहते हैं कि मत भूलो, तुम सीता, सातित्री और दमयन्ती के देश की नारी हो।

स्वामी विवेकानन्द राष्ट्र के विकास के लिए आर्थिक प्रगति की महत्ता को भली-भाँति समझते थे। उनका मत है कि रोटी के लिए आर्तनाद करने वाले लोगों को धर्म का उपदेश देना, उनका अपमान करना है। भूँखे को रोटी देना सबसे बड़ा धर्म है। देश के लिए अन्न पैदा करने वाले किसानों की दयनीय अवस्था के प्रति भी वे लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हैं। स्वामी विवेकानन्द धर्म और अर्थ के समन्वय की बात करते हैं। अर्थ प्रधान पाश्चात्य देशों को वे धर्म की तथा भारत जैसे धर्म प्रधान देश को आर्थिक उन्नति करने की प्रेरणा देते हैं। इस तरह हम देखते हैं

कि रामकृष्ण देव एवं विवेकानन्द अपने धार्मिक, राष्ट्रीय, सामाजिक एवं आर्थिक विचारों के द्वारा तद्युगीन समाज को नयी दिशा दे रहे थे।

साहित्य समाज का दर्पण होता है, इसलिए इन सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव स्वाभाविक रूप से तद्युगीन साहित्य पर भी पड़ा, जिसका अवलोकन द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में करने पर, रामकृष्ण देव एवं स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव सहज रूप से देखा और समझा जा सकता है।

द्विवेदी-युगीन हिन्दी साहित्य को श्रृंगारिकता से राष्ट्रीयता, जड़ता से प्रगति, रूढ़ि से स्वच्छन्दता के द्वार पर ला खड़ा करने का श्रेय रामकृष्ण देव एवं स्वामी विवेकानन्द को दिया जा सकता है। द्विवेदी युग से पूर्व कविता के क्षेत्र में मुख्यतः श्रृंगार, समस्यापूर्ति, आदि प्रवृत्तियों का ही जोर था। उन्नीसवीं शताब्दी का अन्त होते-होते हवा बदलने लगी। परिवर्तित जन-रुचि को श्रृंगार का पृष्टपेषण बेस्वाद प्रतीत होने लगी। महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा 'शंकर', मैथिली शरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, रामचरित उपाध्याय, रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' और रामनरेश त्रिपाठी आदि कवियों ने धार्मिक तथा राष्ट्रीय चेतना से युक्त अनेक कविताओं के माध्यम से ईश्वर - भक्ति, समर्पण एवं ईश्वर के लिये व्याकुलता जैसी भावना को सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है। विवेकानन्द के दर्शन एवं नववेदान्त को भी द्विवेदी-युगीन कविताओं में देखा जा सकता है। राम नरेश त्रिपाठी की कविता– 'अन्वेषण' में विवेकानन्द का नववेदान्त सुन्दर ढंग से व्यक्त किया गया है–

"मैं ढूढ़ता तुझे था, जब कुंज और वन में,
तू खोजता मुझे था, जब दीन के वतन में।
तू आह बन किसी की, मुझको पुकारता था,
मैं था तुझे बुलाता, संगीत में भजन में।।"

त्रिपाठी जी की इस भावना को 'राम कहाँ मिलेंगे' कविता में भी देखा जा सकता है–

"ना मन्दिर में ना मस्जिद मे,
ना गिरजे के आस-पास में। ......
खोज ले कोई राम मिलेंगे,
दीन-जनों की भूँख प्यास में।।"

द्विवेदी युग के कवियों ने विवेकानन्द की राष्ट्रीय भावधारा से अनुप्राणित होकर देश-भक्ति, राष्ट्रप्रेम, अतीत गौरव, स्वतन्त्रता की इच्छा आदि विषयों पर अनेक कवितायें लिखी। मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' में अपने राष्ट्रीय चिन्तन को सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है। महाबीर प्रसाद द्विवेदी, नाथूराम शर्मा, 'शंकर', श्रीधर पाठक आदि ने राष्ट्रीय भावना से युक्त होकर अनेक कविताओं का प्रणयन किया।

स्वामी विवकानन्द की समाज सुधार की भावना व इसमें व्याप्त कुरीतियों को दूर करने की प्रेरणा को इस युग के कवियों ने अपनी कविता के माध्यम से व्यक्त किया है। जातिप्रथा व वर्णभेद, छुआ-छूत, बाल - विवाह का निषेध तथा शिक्षा का प्रसार, नारी उत्थान, मानवतावाद एवं सेवाभाव के सम्बन्ध में जो विचार स्वामी विवेकानन्द व उनके गुरू रामकृष्ण देव का था, उन्हीं विचारों को महाबीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, नाथूराम शर्मा, राम नरेश त्रिपाठी, अयोध्या सिंह उपाध्याय आदि कवियों की कविताओं में सहज ही देखा जा सकता है।

स्वामी विवेकानन्द के आर्थिक चिन्तन को भी द्विवेदी युग के कवियों ने अपनी कविता का वर्ण्य विषय बनाया है। मैथिली शरण गुप्त की 'भारत-भारती' व अन्य कवियों की कविताओं में स्वामी जी का आर्थिक चिन्तन व्यक्त हुआ है ।

द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य की गद्य विधा में भी रामकृष्णदेव एवं स्वामी विवेकानन्द का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रूपों में व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस युग के निबन्धकारों ने रामकृष्ण देव एवं स्वामी विवेकानन्द पर प्रत्यक्ष रूप से अनके लेख लिखे। महाबीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका में रामकृष्ण देव के जीवन की विशिष्टता दर्शाते हुये 'महात्मा रामकृष्ण' नाम से लेख लिखा। माधव मिश्र ने 'माधव मिश्र निबन्धमाला' में— 'परमहंस श्री रामकृष्णदेव जी का जीवन चरित' नाम से निबन्ध लिखकर उनके जीवन की विशिष्टता पर प्रकाश डाला है। युग के सशक्त गद्यकार प्रेमचन्द ने अपने निबन्ध संग्रह—'कलम, तलवार और त्याग' में 'स्वामी विवेकानन्द' नाम से लेख लिखकर विवेकानन्द के विचारों को सुन्दर ढंग से व्यक्त किया हैं। अध्यापक पूर्ण सिंह ने अपने निबन्ध 'पवित्रता' में 'रामकृष्ण देव' के जीवन की पवित्रता का वर्णन किया है। इस युग के निबन्धों में उक्त दोनों महापुरुषों के प्रत्यक्ष प्रभाव के साथ-साथ इनके

विचारों का वर्णन सहज ही सर्वत्र देखा जा सकता है।

इस युग के उपन्यासों में विवेकानन्द की राष्ट्रीय एवं सामाजिक भावधारा का प्रभाव व्यापक रूप से पड़ा। मेहता लज्जा राम शर्मा के उपन्यास— 'आदर्श हिन्दू', 'आदर्श दम्पति' एवं 'आदर्श गृहस्थ' में विवेकानन्द के सामाजिक भावना का प्रकटन जगह-जगह पर किया गया हैं। अयोध्या सिंह उपाध्याय के उपन्यास 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' व 'अधखिला फूल' में जाति व्यवस्था की संकीर्णता, मानवता की सेवा, परोपकार, शिक्षा का महत्व, नारी उत्थान आदि विषयों का वर्णन किया गया है, जो रामकृष्ण देव एवं स्वामी विवेकानन्द की भावधारा से प्रभावित है। प्रेमचन्द के उपन्यास 'सेवा-सदन' में सामाजिक कुरीतियों एवं नारी के प्रति सामाजिक चिन्तन को प्रमुखता से व्यक्त किया गया है। उपन्यास के पात्र विवेकानन्द से प्रभावित है; जो समाज के कल्याण के लिये रात-दिन तत्परता से लगे रहते हुये अपने सुख - दुःख की चिन्ता को भूल गये हैं।

द्विवेदी युग के कहानीकार— चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', ज्वालादत्त शर्मा, प्रेमचन्त्त शर्मा, प्रेमचन्द, विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक', पदुम लाल पुन्ना लाल बख़्शी आदि ने रामकृष्ण देव एवं स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रीय एवं सामाजिक चिन्तन को अपनी कहानी के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने 'उसने कहा था' के माध्यम से मानवीय संवेदना का चरम उद्‌घाटन किया है। कहाँनी का नायक लहना सिंह दूसरे के लिये अपना प्राण उत्सर्ग कर देता है। प्रेमचन्द की कहानियों 'ईश्वरीय न्याय', 'पंच परमेश्वर', 'बलिदान', आदि में मानवता का उदात्त वर्णन किया गया है। कौशिक की कहानी 'ताई' व 'विधवा' में मानव मन की कमजोरी व उसे दूर करने के उपायों पर प्रकाश डाला गया है। 'शान्ति' नामक कहानी में कौशिक जी 'शान्ति' पाने के लिये निर्धनों की सेवा तथा सहायता, विधवाओं व अनाथों का सहारा बनने आदि ऐसे कार्यो को करने का उल्लेख करते हैं, जो विवेकानन्द की भावधारा से पूर्णतः प्रभावित हैं।

नाटक के विकास की दृष्टि से द्विवेदी युग को अन्धकार युग कहा जाता है, परन्तु इस युग में सामाजिक भावभूमि पर जो भी नाटक लिखे गये, उन पर रामकृष्ण देव एवं स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इस युग के सबसे उल्लेखनीय नाटक 'कृष्णार्जुन युद्ध' (माखनलाल चतुर्वेदी) में न्याय, सेवा एवं दीन - दुःखी की सहायता की भावना से उक्त

महापुरुषों की सामाजिक भावधारा को व्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है। 'भारत-दुर्दशा', 'नेत्रोन्मीलन', 'चुंगी की उम्मीदवारी', 'उन्नति कहाँ से होगी' आदि नाटकों में स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रीय एवं सामाजिक चिन्तन के प्रभाव को सहज ही देखा जा सकता है।

इस तरह हम देखते हैं कि द्विवेदी युग के काव्य एवं गद्य पर रामकृष्णदेव एवं स्वामी विवेकानन्द के धार्मिक, राष्ट्रीय, सामाजिक एवं आर्थिक भावधारा का व्यापक प्रभाव पड़ा। इस युग के कवियों व लेखकों ने प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रुप से इन दोनों महापुरुषों की भावधारा को अपने साहित्य के माध्यम से व्यक्त करने का सार्थक प्रयत्न किया है।

---

१. युगनायक विवेकानन्द - ३
२. विवेक ज्योति, वर्ष - ३१,अंक - ३

परिशिष्ट

परिशिष्ट

क   रामकृष्णादेव व स्वामी विवेकानन्द साहित्य

- रामकृष्ण लीलामृत (दो भाग) - प्रथम संस्करण
- विवेकानन्द साहित्य (दस भाग) - तृतीय संस्करण १९९३
  प्रकाशक—स्वामी मुमुक्षानन्द, अध्यक्ष - अद्वैत आश्रम, पिथौरागढ़, हिमालय
- युगनायक-विवेकानन्द (तीन भाग) - तृतीय संस्करण
  लेखक-स्वामी ब्रह्मस्थानन्द अध्यक्ष रामकृष्ण मठ, धन्तौली, नागपुर
- विवेकानन्द- चरित - प्रथम संस्करण
  लेखक- सत्येन्द्र नाथ मजूमदार
- स्वामी विवेकानन्द ग्रन्थमाला (भाग-६) प्रथम संस्करण
- शिक्षा, संस्कृति व समाज प्रथम संस्करण
- योद्धा सन्यासी विवेकानन्द प्रथम संस्करण
  लेखक हंसराज रहबर
- श्रीरामकृष्ण : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश चतुर्थ संस्करण
  लेखक- स्वामी अपूर्वानंद
  प्रकाशक- स्वामी व्योमरुपानन्द
  अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, घतोली, नागपुर
- स्वामी विवेकानन्दः संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश द्वादश संस्करण
  लेखक- स्वामी अपूर्वानन्द
  प्रकाशक- स्वामी ब्रह्मस्थानन्द
  अध्यध, रामकृष्णमठ, धंतोली, नागपुर

(ख) द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य

- हिन्दी साहित्य का इतिहास -डा० नागेन्द्र — द्वितीय संस्करण
- महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग- डा० उदय भानु सिंह — प्रथम संस्करण
- महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण- डा० राम विलास शर्मा — प्रथम संस्करण
- द्विवेदी काव्यमाला - महावीर प्रसाद द्विवेदी - — प्रथम संस्करण
- सम्पति शास्त्र - महावीर प्रसाद द्विवेदी - — प्रथम संस्करण
- लेखांजलि — महावीर प्रसाद द्विवेदी - — प्रथम संस्करण
- शंकर सर्वस्व — नाथूराम शर्मा 'शंकर' — प्रथम संस्करण
- द्विवेदी युगीन काव्य - पूनम चन्द्र तिवारी — प्रथम संस्करण
- भारत-भारती- मैथिलीशरण गुप्त — छत्तीसवाँ संस्करण
- जय भारत - मैथिलीशरण गुप्त — प्रथम संस्करण
- जयद्रथ वध - मैथिलीशरण गुप्त — प्रथम संस्करण
- मानसी - रामनरेश त्रिपाठी — प्रथम संस्करण
- पथिक- रामनरेश त्रिपाठी — प्रथम संस्करण
- मिलन- रामनरेश त्रिपाठी — प्रथम संस्करण
- वायस विजय - नाथूराम शर्मा 'शंकर' — प्रथम संस्करण
- भारत-गीत- श्रीधर पाठक — द्वितीय संस्करण
- भारत दुर्दशा- श्रीधर पाठक — प्रथम संस्करण
- चुभते - चौपदे- अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' — प्रथम संस्करण
- ठेठ हिन्दी का ठाठ- अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' — प्रथम संस्करण
- अधखिला फूल- अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' — प्रथम संस्करण
- स्वदेशी कुण्डल- राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' — प्रथम संस्करण
- 'देवदूत' - रामचरित उपाध्याय — प्रथम संस्करण
- देवसभा- रामचरित उपाध्याय — प्रथम संस्करण
- कृषक-क्रन्दन- गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' — द्वितीय संस्करण
- आर्द्रा - सियाराम शरण गुप्त — प्रथम संस्करण
- करुणा-कादम्बिनी - गया पंसाद शुक्ल 'सनेही' — द्वितीय संस्करण
- मौर्य्य विजय - सियाराम शरण गुप्त — प्रथम संस्करण
- आत्मोत्सर्ग - सियाराम शरण गुप्त — प्रथम संस्करण
- नोआखाली - सियाराम शरण गुप्त — प्रथम संस्करण
- जगत् सच्चाई सार - श्रीधर पाठक — प्रथम संस्करण
- प्रिय - प्रवास - अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' — द्वितीय संस्करण
- साकेत - मैथिलीशरण गुप्त — चतुर्थ संस्करण

- माखन लाल चतुर्वेदी रचनावली (दस भाग) — प्रथम संस्करण
  सम्पादक - श्री कान्त वर्मा
- सरदार पूर्ण सिंह 'अध्यापक' के निबन्ध — प्रथम संस्करण
  सम्पादक - प्रभात शास्त्री
- माधव मिश्र निबन्ध माला - माधव मिश्र — प्रथम संस्करण
- गुलेरी रचनावली (दो भाग) — प्रथम संस्करण
  सम्पादक - डा० मनोहर लाल
- द्विवेदी युगीन निबन्ध साहित्य - गंगा बख्श सिंह — प्रथम संस्करण
- कथा चक्र - पदुम लाल पुन्ना लाल बख्शी — प्रथम संस्करण
- हिन्दी उपन्यास का इतिहास - डा० गोपाल राय — प्रथम संस्करण
- हिन्दी नाटक - बच्चन सिंह — द्वितीय संस्करण
- हिन्दी नाटक उद्भव और विकास - दशरथ ओझा — द्वितीय संस्करण
- कलम, तलवार और त्याग - प्रेम चन्द — प्रथम संस्करण
- संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह 'दिनकर' — पंचम संस्करण

(ग) पत्र – पत्रिका

- विवेक - ज्योति — रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (म० प्र०)
  सम्पादक - स्वामी विदेहात्मा नन्द
- सरस्वती — इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद (उ० प्र०)
  सम्पादक - महावीर प्रसाद द्विवेदी
- प्रभा — खण्डवा (म० प्र०)
  सम्पादक - कालूराम गंगराडे
- समालोचक — जयपुर (राजस्थान)
  सम्पादक - चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'
- इन्दु — काशी (उ० प्र०)
  सम्पादक - अम्बिका दत्त ब्यास
- मर्यादा — प्रयाग (उ० प्र०)
  सम्पादक - कृष्णकान्त मालवीय